भूमिका

"वेदानां सामवेदोऽस्मि" कहकर योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सामवेद की गरिमा को प्रकट किया है। साथ ही इस उक्ति के रहस्य का एक प्रश्न पाठकों तथा स्वाध्यायशील के मन में पैदा कर दी है। यों तो वेद के चारों [illegible] अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक होने के कारण लौकिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों के प्रकाशक रहे हैं, फिर सामवेद में ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण गीता ज्ञान को प्रकट करने वाले ने यह कहा कि 'वेदों में मैं सामवेद हूँ।'

यहाँ ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि ऋषियों ने 'वेद' सम्बोधन किसी पुस्तक विशेष के लिए नहीं किया है, उसका अर्थ है दिव्य साक्षात्कार से संप्राप्त ज्ञान। इस आधार पर 'वेद' कोई पुस्तक नहीं, ज्ञान की एक विशिष्ट धारा है। तो सामवेद को भी वेदों का एक अंग न कहकर ज्ञान की अभिव्यक्ति के [illegible] की एक विशिष्ट विधा ही कहा जा सकता है। इस दृष्टि से 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' का अर्थ यह निकलता है कि वेद की [illegible] को [illegible] ने 'मुझे [illegible]' जैसा भी समझा जा सकता है।

यहाँ ज्ञान के साथ भावना के संयोग का महत्त्व समझना चाहिए। यह सत्य है कि ज्ञान दृष्टि से ईश्वर साक्षात्कार किया जा सकता है, किन्तु भावना के बिना ज्ञान दृष्टि भी अपूर्ण ही रहती है। यह सत्य है कि 'भावे हि विद्यते देवः तस्मात् भावो हि कारणम्' अर्थात् भावना ही देवों का निवास है, अतः उसके साक्षात्कार का मूल आधार भावना ही है; किन्तु भावना एक उफान है, उसे [illegible] से नियन्त्रित न किया जाए, तो [illegible] हो सकता है। इसीलिए ज्ञान एवं भावना का युग्म ही ईश साक्षात्कार का सुनिश्चित आधार बनता है।

संत तुलसीदास ने इसीलिए श्रद्धा एवं विश्वास के रूप में भवानी-शंकर की वंदना करते हुए कहा है कि इनके योग के बिना सिद्ध पुरुष भी अपने अन्तःकरण में विराजमान ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर पाते—

भवानीशंकरौ वन्दे
श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति
सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥
— मानस

ज्ञान की परिपक्वता से विश्वास उपजता है तथा भावना की परिपक्वता श्रद्धा है। ज्ञान और भावना के संयोग से ईश्वर से साक्षात्कार संभव है, यह तथ्य निर्विवाद है। [illegible] हो सकता है—यह मानने वाले अनगिने लोग हैं, पर [illegible] अनुभव करते हैं कि [illegible] ईश्वर के इसी प्रकार का अनुभवजन्य है कि परिपक्व ज्ञान और उच्चस्तरीय भावना का संयोग इसका आधार ही है।

वेद है ज्ञान, साम है गान। गान का सीधा-सीधा सम्बन्ध भाव-संवेदना से है। अनुभूति की अभिव्यक्ति में शब्दों की सामर्थ्य छोटी पड़ जाती है। वेद अनुभूतिजन्य ज्ञान है, उसे व्यक्त करने में भी शब्द सीमित अपर्याप्त हैं। ऋषि ने अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया, किन्तु जब देखा कि पूर्ण प्रयास के बाद भी अभिव्यक्ति अनुभूति के स्तर की नहीं बन सकी, तो उसको ईमानदारी से कह दिया 'नेति-नेति'- ऐसा नहीं, पूरी नहीं हो सकी।

अभिव्यक्ति की तीन धाराएँ हैं—गद्य, पद्य एवं गान। ज्ञान की किसी भी धारा को इन्हीं माध्यमों से व्यक्त किया जाता रहा है। कोई भी [illegible] हो, अभिव्यक्ति के माध्यम तो यही हैं।

[illegible]

[illegible]

भाव विज्ञान एवं गान विद्या

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आयाम निर्धारित किया। इस क्रम में लगभग एक शताब्दी के कालखण्ड संतों को लेकर कई शहरों में स्थान-स्थान पर शांति-यज्ञों का आयोजन किया, जिसमें अनेक कर्मठों ने शांति-पाठ, मन्त्रों और यज्ञ-क्रियाओं की पद्धति-परम्परा का प्रयोग उसी उत्साह-तत्परता के साथ किया। प्रयोग के पहले इन यज्ञों की सफलता पर आशंकाएं थीं, जैसे आयोजन किये गये थे, बाद में इनके पहले जन की सुखद अनुभूति हुई। इन सभी प्रयोगों में वैज्ञानिक विधि का पूरा-पूरा पालन किया गया। परीक्षणों का अधिकतम भी भावनात्मक सजग तत्परता से किया गया।

उक्त प्रयोग व्यक्तियों द्वारा किये गये प्रयोगों की तुलना में चाहे कितने छोटे रहे हों, किन्तु उनके सब के मानस-पटलों की भावना से, प्रभावित हो रही थी। प्रकृति की इस व्यवस्था का लाभ आज भी हम किसी भी विधिवत करके उठाया जा सकता है।

मन्त्रों को उच्चारने और संचालन करने में मानव का महत्व हमेशा रहा है और आज भी है। वेद ने भी इसीलिए उसका उपयोग विधिवत्ता के साथ किया है। अभिव्यक्ति के तीन माध्यमों (१) गद्य (२) पद्य और (३) गायन में, मानव की ध्वनि-शिक्षा में उसके अपने ऐश्वर्य को विशेष महत्व दिया गया। ज्ञान की अभिव्यक्ति की उक्त तीन विधाओं के कारण वेद को तीन भागों- मूलतः "वेद त्रयी" कहा गया। यह विभाजन इन तीन विधाओं के आधार पर है, न कि मूलस्वरूप संकलनों के आधार पर। मूलस्वरूप, संकलन विषयानुसार, कहीं ही इस भांति में पाये गये हैं, किन्तु वे इन्हीं तीन माध्यमों के अन्तर्गत आ जाते हैं।

भाषा कोई भी हो, उसमें अभिव्यक्ति के तीन ही विभाग हैं-गद्य, पद्य और गान। यथार्थ में कहा जाय, तो यह सभी अध्यायों वैदिक परम्परा का अनुसरण ही है। यजुर्वेद में जो पद्यबद्ध मंत्र ऋग्वेद या अथर्ववेद से लिये गये हैं, वे पद के समान नहीं बोले जाते, बल्कि गद्य की तरह बोले जाते हैं। अर्थात् वे ही मंत्र ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पद्य के अनुसार छन्दों में बोले जाते हैं और वे ही यजुर्वेद में बोलने के समय गद्य के समान बोले जाते हैं। पाठ की इस परिपाटी का निर्वाह अविच्छिन्न रूप से होता आया है।

यही ही यह चतुर्थी, वेद मंत्रों की भाषा में कोई संशय नहीं। वेदत्रयी में भाषा की रचना प्रमुख है और वेद चतुष्टयी में उल्लिखित विषय की प्रधानता है। इनको इस रूप में भी समझ सकते हैं—वेदत्रयी अर्थात्—पद्य मंत्र, गद्य मंत्र एवं गान के मंत्र। वेद चतुष्टयी-अर्थात् ज्ञान-विज्ञान के मंत्र, यज्ञ कर्म के मंत्र, गान के मंत्र और ब्रह्मज्ञान के मंत्र।

इन सभी मन्त्र-ग्रन्थों के उपयुक्त शिष्य प्रयोगों को सम्पन्न करने वाले गान के मंत्रों को सर्वोत्कृष्ट कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। यहाँ इनके प्रयोग अनेक शुभ पर्व के प्रारम्भ में करने का स्पष्ट निर्देश है। यह भी सही है, कब, क्यों और गायन में से मान का "सामान" का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसका अनुभव हम अपने सामान्य जीवन क्रम में भी होता रहता है। गायन से, प्रेरित हृदय को शांति और संतोष मिलता है। इससे मनुष्य की मूलभूत शक्ति का विकास और अतिरिक्त स्फूर्ति जगती है। गान करते, गायन की अमूल्य निधि देकर परमात्मा ने मनुष्य की पीड़ा को कम किया है। भावनाशील मनुष्यों में प्रेम और सहनशीलता को बढ़ाता है।

शास्त्रकारों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है—"कामधुक् सौमनस्यानि" (विष्णु० ५.१७)। इस साधना के द्वारा योगी अपने को तल्लीन करते हैं। सुनने की हुई एकाग्रता की विलक्षणता से लेकर जीवन के किसी भी क्षेत्र में अभीष्ट सफलताएं सरलताएं अर्जित की जा सकती हैं। इसलिए, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि इससे मनुष्य की चित्त शान्ति बढ़ती और आत्मिक आनन्द की अनुभूति होती है। वेद के प्रणेता ऋषि-महर्षियों ने इस तथ्य की अनुभूति बहुत पहले ही कर ली थी, तभी तो उन्होंने अपने लोक जीवन में कहा "अति सर्वत्र

सुमन्तम् मिहते" । (ऋ० ९.८५.११) अर्थात्—अनेक मनीषी विश्व के मङ्गलकारी भगवान् की ओर सम्मोहन ध्यान लगाते हैं और उन्हीं के द्वारा उन्हें प्राप्त करते हैं।"

एक अन्य मंत्र में बताया है कि इन्द्र आदि के लिए सोमिक भावनाओं के विकास में साम का योगदान असाधारण है— "प्रसाविस त्वा सुते [illegible] [illegible] ... ।" (ऋ० ८.१.२४) अर्थात् " हे सोम ! तुम सबको सात्त्विक उल्लास की इच्छा से [illegible] आते हो । मैं तुम्हें इन्द्र का उपदेश देता हूं तुम उसे प्राप्त करने के लिए संगीत के साथ उसे पहुंचाओगे, तो वह तुम्हारी [illegible] [illegible] में प्रकट होकर अपना [illegible] प्रदान करेगा ।"

संगीत के सूक्ष्म-अद्भुत प्रभावों के अनुसन्धान में उन महर्षियों को ऐसी चमत्कारी उपलब्धियाँ मिलीं और आनन्द का इतना विशाल क्षेत्र उपलब्ध हुआ, जिसे वर्णन करने के लिए एक पृथक् वेद की रचना करनी पड़ी । सामवेद में भगवान् की संगीत शक्ति के ऐसे सूक्ष्म आश्चर्यजनक और [illegible] हुए हैं, जिनका अवगाहन कर मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों को इच्छा से प्रकट, पुष्ट व विकसित कर सकता है, भावनाओं को दिशा दे सकता है । आज के पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ भी उसके समर्थन में मुखर हो उठी हैं । उनके कथन से, जो निष्कर्ष निकले हैं, उनसे यही प्रतीत होता है कि वह सामवेद सुने और आत्मिक आनन्द को जीवित रखता है जो मनुष्य स्वभाव की समता से जोड़े थे । उन्होंने आत्मा की तुलना प्रेम से की है । दोनों ही समान उपासना विधियाँ हैं । इन दोनों का प्रकृति और जीवन दोनों पर चमत्कारी प्रभाव पड़ता है । संगीत आत्मा की उन्नति का सबसे अच्छा साधन है, इसलिए संगीत सदा धर्म के साथ चलना चाहिए । यह यहूदी धर्म की मान्यता भी, जो ग्रीक मैक पेंटर ने अपने संगीत को भी उपयोगी-उपदेश और सम्भावना बताया है । इस सम्बन्ध में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो "संगीत सौन्दर्य का सबसे सूक्ष्म रूप और उसका सम्पूर्ण है, तो उसे संगीत ही होना चाहिए ।"

अलग-अलग प्रकार की उपलब्धियाँ, प्रत्येक अपनी-अपनी तरह की विशेष अनुभूतियाँ हैं, अन्यथा सामान्य में सतोगुण, रज व तमोगुण तीनों को भगवान् अपनी शक्ति रूप परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं । यही कारण था— ऋषियों ने विशिष्ट मंत्रों का संकलन कर साम की पद्धति निर्धारित की । आधुनिक विद्वान् भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि समस्त राग, ताल, लय, छन्द, गति, मन्त्र, स्वर-चिकित्सा, राग, नृत्य, मुद्रा, भाव आदि सामवेद से ही निकले हैं ।

संगीत रत्नाकर में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए नाद को २२ श्रुतियों में विभक्त किया गया है । ये श्रुतियाँ क्रम से मनुष्य को अलग-अलग विशिष्ट शक्ति देती हैं । इनका प्रभाव तत्काल मानस और चेतना पर होता है । इन बाईस श्रुतियों के नाम हैं (१) तीव्रा (२) कुमुद्वती (३) मन्दा (४) छन्दोवती (५) दयावती (६) रंजनी (७) रक्तिका (८) रौद्री (९) क्रोधा (१०) वज्रिका (११) प्रसारिणी (१२) प्रीति (१३) मार्जनी (१४) क्षिति (१५) रक्ता (१६) संदीपनी (१७) आलापिनी (१८) मदन्ती (१९) रोहिणी (२०) रम्या (२१) उग्रा और (२२) क्षोभिणी— ये बाईस श्रुति शक्तियाँ ही सात स्वरों के रूप में प्रकट हैं । यह विभाजन इस प्रकार है—

षड्ज— (४) तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती ।

ऋषभ— (३) दयावती, रंजनी, रक्तिका ।

गान्धार—(२) रौद्री, क्रोधा ।

मध्यम— (४) वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी ।

पंचम—(४) क्षिति, रक्ता, संदीपनी, आलापिनी ।

धैवत—(३) मदन्ती, रोहिणी, रम्या ।

निषाद—(२) उग्रा, क्षोभिणी ।

इन बाईस श्रुतियों को साधन के द्वारा उत्पन्न होने वाले भौतिक एवं चेतनात्मक प्रभाव को जानना चाहिए । ओषधियाँ जिस प्रकार मूल द्रव्यों के रासायनिक सम्मिश्रण से उत्पन्न होने वाले औषधीय प्रभाव के कारण विभिन्न रोगों पर अपना प्रभाव डालती हैं । उसी प्रकार इन बाईस शब्दशक्तियों का

उनके सम्मिश्रण का वस्तुओं तथा प्राणियों पर प्रभाव पड़ता है। इस सारी शोध का मूल स्रोत सामवेद ही है। वैदिक काल में इस सम्बन्ध विज्ञान के द्वारा, मेघ गायन, फल फूलों के और रसानुभूतियों के आधार पर अपने समकाल में चली हुई रागिनियों को बनाते थे और सम्पर्क में आने वाले प्राणि-मात्र की स्फुरणा-चेतना बढ़ाते थे। वातावरण प्रकृति को प्रभावित करके वे अभ्यन्तरीय शक्तियों को बदलकर, अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में चमत्कारी सफलता प्राप्त करते थे।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के शोध-निष्कर्ष

ऋषियों द्वारा निर्धारित सूत्रों को आधुनिक प्रयोगों में लाकर उनसे देखकर आधुनिक वैज्ञानिक तुरन्त आश्चर्य में पड़ जाते हैं। निष्कर्ष की एक घटना अलमोड़ा के समीपवर्ती ग्राम डाकम होम और उसके पास में पहले एक सात वर्षीय बालक उस महिला का पिता, जो सभी वाद्यों की किसी भयंकर बीमारी से पीड़ित होकर शय्या पर पड़ी मौत की राह देख रही थी। पति-पत्नी उसके पास गये। पति ने वायलिन बजाया, पत्नी ने पियानो पर संगति दी। धीरे-धीरे मधुर स्वर लहरियाँ उस कमरे में गूँजने लगीं। रोगिणी को ऐसा लगा जैसे बहुत पीड़ित आत्मा पर कोई हल्की-हल्की मालिश कर रहा है। फूल-मुस्कान की तरह से उस स्वर लहरियों का आनन्द लेती रही और थोड़ी ही देर में सो गई। जागने पर उसने अपने मन में विलक्षण शान्ति और विश्राम की अनुभूति की। उन्हें रोग में बड़ा आराम मिला। इससे प्रभावित होकर पति-पत्नी ने कई सप्ताह तक ऐसे ही प्रयोग उस महिला को सुनाये। रोग घटता गया, जैसे उसे अमृत पीने का अनुभव हुआ। वह नियमित रूप से उन्हें सुना करती। जब उसने समाप्त होने, तो उसका शरीर के रोगी सम्भवतः शरीर से निकल गये हैं और वह स्वस्थ अनुभव कर रही है। कुछ दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गई। तब से लोग इस घटना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रोगियों के लिए संगीत चिकित्सा की एक विधि को खोज दी। 'आर्ट ऑफ़ हीलिंग' नामक पुस्तक में यह प्रयोग आज सारे अमेरिका और योरोप में व्याप्त हुआ है।

इंग्लैण्ड के डॉ० फ्रेड और अमेरिका के प्रसिद्ध डॉक्टर ने अपने सम्पूर्ण शोध का निष्कर्ष यह बताया कि संगीत से मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की चेतना उत्पन्न होती है, जिसके कारण शरीरगत रस-स्निग्धता की वृद्धि हुई होती है। मल-मूत्र, पसीना, कफ आदि सभी तथा मेद, मांस के प्रकार निकलते हैं, जो इन विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। संगीत का विलक्षण प्रभाव शरीर में रोगों की सम्भावनायें ही समाप्त हो जाती हैं। डॉ० जोसेफ एक्स जारविस के अनुसार क्षुधा, मिर्गी, उन्माद, मधुमेह, रक्तचाप जैसे रोगों को किसी भी हालत में संगीत का अच्छा प्रभाव पड़ता है। जर्मनी के मनोवैज्ञानिक चिकित्सक डॉ० नाखर के अनुसार मनोविकारों के निवारण में संगीत को सफल उपचार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

संगीत-शास्त्र का प्रभाव मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, वरन् पशु-पक्षी भी उससे लाभ से प्रभावित होते और प्रभावित होते हैं। संगीत सुनकर बालकों, अधिक काम और उत्तम आनन्द लेने के लिए उसे प्रयुक्त किया जाता है कि उनकी उत्पादन और उन्नत क्षमता होता है। मनुष्य जातियों की क्या-क्या धारणायें होती हैं कि उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ उनके लिए लाभदायक ही सिद्ध होती हैं।

पशु मनोविज्ञानी डॉ० जार्ज किंग ने छोटे जीव-जन्तुओं की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का लम्बे समय तक अध्ययन किया है। घर में पलने वाले जानवरों की आवाज

सुनाकर गायों को [illegible] खेतों में शान्तिपूर्वक चरते हुए उन्होंने कितनी ही बार देखा है। ध्वनिलय उत्पन्न कर गाने वाले पशुओं को चांडाल-चौकड़ी मचाकर आपस में सुनकर किस प्रकार मुग्ध होकर शान्त हो जाती है, यह देखने में आता है। दुधारू पशुओं को दुहते समय यदि संगीत की ध्वनि होती रहे तो वे अपेक्षाकृत अधिक दूध देते हैं।

कीट कुछ संगीत को ध्यानपूर्वक सुनते और फलतः अच्छा करते पाये जाते हैं। एक विशेषज्ञ डॉक्टर [illegible] ने अमेरिका के [illegible] देश में निवासी तथा [illegible] को संगीत के प्रति सहज ही आकर्षित होने वाली प्रवृत्ति का पता [illegible]। उन्होंने इस [illegible] में [illegible] बजाने से उत्पन्न ध्वनि वाले रेडियो-[illegible] का प्रयोग किया और इसमें से निकली [illegible] परन्तु ऐसी स्थिति का [illegible]। [illegible] के विद्वानों और [illegible] ने [illegible] को अधिक मात्रा में उत्पन्न करने के लिए संगीत को अच्छा उपाय सिद्ध किया है। [illegible] पर भी [illegible] के भले-बुरे प्रभावों का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया और पाया कि छोटे-छोटे कीड़े भी संगीत से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

कटक और दिल्ली के कृषि-अनुसंधान केन्द्रों में भी ऐसे प्रयोग और परीक्षण हुए हैं और यह देखा गया है कि संगीत के प्रभाव से जीव-जन्तुओं की भाँति पौधे भी पृथक नहीं हैं। [illegible] के [illegible] में इस तरह के परीक्षण सम्पन्न हुए हैं। विदेशों में हुए अनुसंधानों से भी यह पता चलता है कि राग और रागिनियों का प्रभाव [illegible], [illegible] आदि पर भी पड़ता है। कृषि विज्ञान [illegible] ने [illegible] एक [illegible] के एक भाग को दो हिस्सों में बाँटकर यह परीक्षण किया। एक किस्म के पौधों को [illegible], दूसरे को खाद, पानी, धूप की सुविधाएँ तो समान रूप से दी गईं, किन्तु उन्हें [illegible] से वंचित रखकर, दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया। जिन पौधों को संगीत सुनने को मिला, उनके [illegible] पौधे, [illegible] अधिक [illegible] फलतः पुष्ट हुए। उनके फूल अधिक दिन तक रहे और बीज निर्माण कुछ जल्दी में हुआ। [illegible] ने बताया कि वृक्षों में [illegible] नहीं [illegible] भी [illegible] की स्थिति में रहता है। संगीत की [illegible] नहीं [illegible] करने तथा विकास में सहायता करती है।

संगीत का दूसरा व्यापक प्रभाव [illegible] प्रकृति पर क्या होता है? इस प्रश्न का सही उत्तर योगियों ने पाया है, जिन्होंने साधना की गहराई में उतरकर यह अनुभव किया है कि यह सृष्टि स्वरमय-संगीतमय है। अलौकिक संगीत का एक दिव्य प्रवाह सम्पूर्ण सृष्टि में सतत प्रवाहित होता रहता है। इसे अनाहत या अनहद नाद के रूप में वर्णित करने का प्रयास भी किया जाता रहा है। ओंकार की ध्वनि 'प्रणव' भी इसी दिव्य संगीत को कहा गया है। इसीलिए शास्त्रों में स्थान-स्थान पर प्रणव की महिमा गायी गई है। गीता में 'प्रणवः सर्ववेदेषु' (गीता ७.८) तथा महाभारत में भी 'ओंकारः सर्ववेदानाम्' (अनुशासन पर्व [illegible]) कहा गया है।

इन उक्तियों से सामवेद का महत्त्व घटता नहीं, बढ़ता ही है। ओंकार का गान और उद्गीथ समानार्थक हैं। उद्गीथ को साम का अविच्छिन्न अंग माना गया है, छान्दोग्योपनिषद् (१.१.२) का कथन है—

"वाच ऋग्रसः, ऋचः साम रसः, साम्नः उद्गीथो रसः।"

अर्थात्, 'वाणी का रस ऋचा है, ऋचा का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है।' आगे और भी कहा गया है 'सामवेद एव पुष्पम्' (छान्दो० ३.३.१) 'वेदों में सामवेद ही पुष्प है।' पुष्प [illegible] फलते हैं, किन्तु यह पुष्प की सार्थकता का [illegible] माना जाता है। भगवान के [illegible] के मन को [illegible] करते हुए दिव्य संगीत-कला के साथ संयुक्त करने में ऋषियों ने सफलता प्राप्त की थी। साम को [illegible] जिसे पूर्ण कहा जा सकता है।

सामवेद का अर्थ और स्वरूप

अपनी अनेकानेक विशेषताओं के कारण इसके अनुशीलन का सार्वजनिक आकर्षण है। प्रत्येक इसके अर्थ व स्वरूप पर भी विचार करें—सामवेद का अर्थ सिर्फ मंत्र समूह है अथवा गान भी। इसके समर्थन में छान्दोग्योपनिषद् (1.3.4) का कथन है—

या ऋक् तत् साम॥ अर्थात् 'जो ऋचा है वही साम है', यह ठीक भी है। ऋचा गेय पद हैं, गान उन्हीं का हो सकता है। आगे एक स्थान पर कथन है—ऋचि अध्यूढं साम॥ (छान्दो० उप० 1.6.1) "साम ऋचा पर आश्रित होते हैं"। साम ऋचा को छोड़कर और किसी आधार से नहीं रह सकता। ऋग्वेद और सामवेद के मूल को पति-पत्नी के मूल की भांति माना गया है। ऐसा कहा भी गया है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्। ताविह संभवाव, प्रजामाजनयावहै। (अथर्व० 14.2.71; ऐत० ब्रा० 8.27; बृ० उप० 6.4.20)।

"मैं पति "अम" हूं और तू पत्नी "ऋचा" है, "साम" मैं हूं, ऋक् तू है, "द्यौ" मैं हूं और "पृथिवी" तू है, हम दोनों यहाँ मिलकर प्रजनन करें, प्रजा उत्पन्न करें।" इसमें साम शब्द की व्युत्पत्ति दी है: सा + अम = साम। 'सा' का मतलब है ऋचा और 'अम' का मतलब है आलाप अतः साम का अर्थ है—"ऋचाओं के आधार पर किया गया गान।"

सामवेद और [illegible] में पारस्परिक [illegible] है और इसका गान होता है। "ऋचा पत्नी थी और सामवेद इसी युक्त का विवाह हुआ है। पति-पत्नी के समान साम और ऋचा का सम्बन्ध है। [illegible] ने इसका गूढ़ और सम्बन्ध बताया है—

"[illegible]।"

(छा० उ० [illegible])

"वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम॥"

([illegible])

"वाणी और प्राण क्रमशः ऋक् और साम हैं। वाणी ऋचा है और प्राण साम है।" वाणी और प्राण का जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध ऋचा और साम का है।

ऋचा का मतलब है—छन्दोयुक्त मंत्र। इन मंत्रों का पाठ, [illegible] आदि स्वरों में आलाप होता है। जैमिनि सूत्र में कहा है—गीतिषु सामाख्या॥ (जै० सू० 2.1.36)।

ऋग् मंत्रों के गान की संज्ञा साम है। न केवल ऋक् पाठ को ही साम माना जा सकता है और न सिर्फ गाने को ही; बल्कि इन दोनों के मिश्रण को ही 'साम' कहा गया है। छान्दोग्य-उपनिषद् में शालावत्य व दाल्भ्य संवाद में वर्णित है— का साम्नो गतिरिति? स्वर इति होवाच॥ (छान्दो० उप० 1.8.4) "साम की गति क्या है? स्वर-आलाप ही साम की गति है।" स्वर अथवा आलाप के बिना साम नहीं होता। बृहदारण्यक-उपनिषद् के शब्दों में—तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद, भवति हास्य स्वम्॥ (1.3.25)। "साम का स्वरूप स्वर है।"

अतः निश्चित है कि साम शब्द से हमें उन गानों को समझना चाहिए, जो भिन्न-भिन्न स्वरों में ऋचाओं पर गाये जाते हैं। साम शब्द की बड़ी सुन्दर निरुक्ति बृहदारण्यक उपनिषद् में दी गई है—सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम् (बृ० उप० 1.3.22)। 'सा' शब्द का अर्थ है—ऋक् और अम् शब्द का अर्थ है—गान्धार आदि स्वर। अतः साम शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ—ऋक् के साथ सम्बद्ध स्वर-प्रधान गायन।

'तया सह सम्बद्धः अमो नाम स्वरः यत्र वर्तते तत्साम'।

जिन ऋचाओं के ऊपर ये साम गाये जाते हैं, उनको वैदिक लोग "साम योनि" नाम से पुकारते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि जिसे साम-संहिता कहा जाता है, वह इन्हीं साम योग्य ऋचाओं का संग्रह है। यही सामवेद के रूप में सुप्रसिद्ध/प्रतिष्ठित है।

सामवेद के दो प्रमुख भाग हैं—आर्चिक तथा गान। आर्चिक का शाब्दिक अर्थ है ऋक् समूह, जिसके दो भाग हैं—पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में ६ प्रपाठक या अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं, जिन्हें 'दशति' भी कहा गया है। 'दशति' शब्द से प्रतीत होता है कि इनमें ऋचाओं की संख्या दस होनी चाहिए, परन्तु किसी खण्ड में यह संख्या दस से कम, कहीं दस से अधिक है। इन खण्डों में मंत्रों का संकलन छन्द तथा देवता की एकता पर स्थित है।

प्रथम प्रपाठक या अध्याय को आग्नेय काण्ड (या पर्व) कहते हैं। इसमें अग्नि विषयक ऋक् मंत्रों का सम्यक् संकलन किया गया है। दूसरे से लेकर चौथे अध्याय तक इन्द्र की स्तुति होने से यह ऐन्द्र पर्व कहलाता है। पञ्चम अध्याय पावमान पर्व है। इसमें सोम विषयक ऋचाएँ संकलित हैं। जो पूरी तरह से ऋग्वेद के नवम मण्डल से ली गई हैं। छठे अध्याय को आरण्य पर्व कहा गया है। इसमें देवताओं तथा छन्दों की भिन्नता होने के बावजूद गान विषयक एकता विद्यमान है। पहले से लेकर पाँचवें अध्याय तक की ऋचाओं को ग्राम गान कहते हैं, लेकिन छठे अध्याय की ऋचाएँ अरण्य में गेय होने के कारण 'आरण्य गान' कही जाती हैं। अन्त में परिशिष्ट रूप में 'महानाम्नी' नामक ऋचाएँ दी गई हैं। इस तरह पूर्वार्चिक के मंत्रों की संख्या ६५० है।

उत्तरार्चिक में प्रपाठकों की संख्या नौ है। पहले पाँच प्रपाठक में दो-दो भाग हैं। जो प्रपाठकार्ध कहे जाते हैं, जिन्हें अध्याय भी माना गया है। अंतिम चार प्रपाठकों में तीन-तीन अर्ध हैं। यह गणना प्रपाठकीय शाखा के अनुसार है। कौथुम शाखा में इस अर्ध को अध्याय तथा दशतियों को खण्ड कहने का चलन है। नौवें प्रपाठक में तीन अर्ध हैं, किन्तु प्रथम एवम् द्वितीय अर्धों को मिलाकर एक ही अध्याय माना गया है। इस प्रकार प्रथम पाँच प्रपाठकों के दस अध्याय, ६, ७ एवम् ८ प्रपाठकों के तीन-तीन अर्धांशों के अध्याय तथा नौवें के दो अध्याय इस प्रकार कुल २२ अध्याय हैं। उत्तरार्चिक के मंत्रों की कुल संख्या बारह सौ पच्चीस (१२२५) है। अतः दोनों आर्चिकों की सम्मिलित मंत्र संख्या अठारह सौ पचहत्तर (१८७५) है।

ऊपर बताया जा चुका है कि साम ऋचाएँ ऋग्वेद से ली गई हैं लेकिन फिर भी कुछ ऋचाएँ ऐसी बची हैं, अर्थात् शाकल्य ऋग्वेद संहिता में ये ऋचाएँ बिल्कुल नहीं मिलतीं। यह भी ध्यान देने की बात है कि पूर्वार्चिक के २६७ मंत्र (लगभग तीन हिस्से से कुछ ज्यादा ऋचाएँ) उत्तरार्चिक में फिर से लिए गये हैं। अतः ऋग्वेद की सम्पूर्ण १५०४ ऋचाएँ ही सामवेद में प्राप्त हैं। सामान्यतया ७५ मंत्र अधिक माने जाते हैं परन्तु वास्तविक संख्या इससे अधिक है। ९९ ऋचाएँ एकदम नयी हैं। इनका संकलन संभवतः ऋग्वेद की अन्य शाखाओं की संहिताओं से किया गया होगा। इस तरह ऋग्वेद की ऋचाएँ १५०४ + पुनरुक्त २६७ = १७७१, नवीन ९९ + पुनरुक्त ५ = १०४ साम संहिता की सम्पूर्ण ऋचाएँ - १८७५।

ऋक् और साम के अन्तर्सम्बन्ध

ऋग्वेद तथा सामवेद के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट किये बिना बात अधूरी रह जायेगी। वैदिक विद्वानों की यह मान्यता है कि सामवेद में संकलित ऋचाएँ ऋग्वेद से ही साम के निमित्त संगृहीत की गई हैं, परन्तु कुछ ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं, जो इस मान्यता पर पुनर्विचार किये जाने के लिए प्रेरित करते हैं।

(१) कहीं-कहीं सामवेद की ऋचाओं में

ऋग्वेद की ऋचाओं में केवल आर्चिक रूप ही देखने को मिलता है। ऋग्वेद का 'आने पृक्षा हि वे [illegible] देव [illegible]' (१.१६.१३) साम० ३५ में—'आने पृक्षा हि वे [illegible] को देव [illegible]।' [illegible] रूप में पठित है। इस आर्चिक रूप के [illegible] अनेकों उदाहरण सामवेद में [illegible] मिलते हैं। यदि इन ऋचाओं को बिना गान [illegible] तो क्यों उनमें [illegible] में लिखित होना था, पर ऐसा नहीं है।

(३) इन ऋचाओं को यदि गायन के लिए सामवेद में लिया गया है, तो फिर उन्हीं ही [illegible] का ऋग्वेद से संकलन करना चाहिए था, जिनमें [illegible] गान या साम के लिए अपेक्षित होते। इसके उल्टे [illegible] [illegible] हैं कि साम संहिता में लगभग [illegible] ऐसे मंत्र हैं जिन पर कोई गान नहीं है। [illegible] गान हेतु अनपेक्षित मंत्रों के संकलन की संगति क्या रही?

(४) यदि साम मंत्रों को ऋग्वेद से लिया गया है, तो इसका रूप तो वही, स्वर [illegible] भी [illegible] होना चाहिए था। ऋक् मंत्रों में उदात्त-अनुदात्त तथा स्वरित स्वर पाये जाते हैं। जबकि सामवेद में [illegible] निर्दिष्ट [illegible] अंकों द्वारा [illegible] गया है। ये [illegible] विधान के अनुसार [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] हैं। इन्हें [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] को अंगुष्ठ का स्पर्श करते हुए दिखाया जाता है। [illegible] के [illegible] में ऋक् मंत्रों के [illegible] से सर्वथा [illegible] है।

(५) यदि सामवेद, ऋग्वेद के बाद की [illegible] है, जैसा कि आधुनिक विद्वानों की मान्यता है, तो ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर साम का उल्लेख नहीं मिलना चाहिए; क्योंकि ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर साम का उल्लेख देखा जा सकता है। यथा—अंगिरसां सामभिः स्तूयमानः (१.१०७.२) [illegible] [illegible] साम गायसि (१०.१०.३) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (८.१४.४) आदि मंत्रों में न केवल [illegible] साम का [illegible] [illegible] साम का उल्लेख भी है। ऐतरेय ब्राह्मण (३.२३) का भी स्पष्ट कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में ऋक् और साम दोनों का अस्तित्व था [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] ही नहीं [illegible] [illegible] के लिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के साथ [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] आधार पर माना जाय?

(६) जब साम का [illegible] [illegible] ऋषियों के नाम पर किया गया मिलता है, तो क्या वे ऋषि इन सामों के कर्ता नहीं हैं? इसका उत्तर है कि [illegible] साम में [illegible] [illegible] ऋषि को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] में इस तथ्य के [illegible] [illegible] [illegible] देखने को मिलते हैं—"[illegible] [illegible] [illegible]" ([illegible] [illegible]) [illegible] पर साम का नाम '[illegible]' [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] के [illegible] [illegible] ने इस साम से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (१.८.१३-१४) [illegible] को [illegible] [illegible] ([illegible] ०.८.८.३) [illegible] पर [illegible] साम के [illegible] का [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible] [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] होने से ही सामों का [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] नहीं।

इन बिन्दुओं पर [illegible] [illegible] करने पर यह मानना पड़ता है कि साम संहिता के मंत्र ऋग्वेद से [illegible] [illegible] नहीं [illegible] होंगे। वे [illegible] ही [illegible] हैं, जितने कि ऋग्वेद के [illegible] [illegible] ही [illegible] दो [illegible] भी। वेदों के [illegible] विद्वान् पं० [illegible] [illegible] ने [illegible] '[illegible]' [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] "[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]" में [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] होगा कि [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] है।

सामवेद का शाखा विस्तार

वायु पुराण, भागवत पुराण, विष्णु पुराण के अनुसार भगवान् वेदव्यास ने अपने शिष्य जैमिनि को साम की शिक्षा दी। वे ही साम के आद्य आचार्य के रूप में माने जाते हैं। इस अध्ययन परम्परा में जैमिनि से उनके पुत्र सुमन्तु, सुमन्तु से उनके पुत्र सुन्वान्, सुन्वान् से उनके सुत सुकर्मा दीक्षित हुए। इस संहिता के व्यापक विस्तार का श्रेय इन्हीं सामवेदाचार्य सुकर्मा को है। इनके दो शिष्य हुए (१) हिरण्यनाभ कौसल्य तथा (२) पौष्यञ्जि, जिनसे क्रमशः प्राच्य तथा उदीच्य दो धाराओं का विकास हुआ। प्रश्न उपनिषद् (६.१) में हिरण्यनाभ को कोसल देश का राजकुमार बतलाया गया है। भागवत (१२.६.८०) में सामगाथाओं की दो परम्पराओं का उल्लेख किया है, प्राच्य सामगा एवं उदीच्य सामगा। इस नाम निर्देश का कारण भौगोलिक विभाग है।

भागवत में भी सुकर्मा के दो शिष्यों का निर्देश आता है। (१) हिरण्यनाभ या हिरण्यनाभी कौसल्य (२) पौष्यञ्जि जो आवन्त्य देश के निवासी होने से आवन्त्य कहे गये हैं। इनमें से अन्तिम आचार्य के शिष्य उदीच्य सामगाः कहलाते हैं। हिरण्यनाभ कौसल्य की परम्परा वाले सामग प्राच्य सामगाः के नाम से प्रसिद्ध हुए। हिरण्यनाभ का शिष्य कोसल अर्थात् अवन्तिदेशस्थ राजा का पुत्र कृत था, जिसने साम संहिता का चौबीस प्रकार से अपने शिष्यों द्वारा प्रवर्तन किया। तत्सम्बन्धी प्रसंग मत्स्य पुराण (४९.७५-७६), हरिवंश (२०.४१-४४), विष्णु (४.१९.५०), वायु (९९.१९०), ब्रह्माण्ड पुराण (३.६३.१९३) तथा भागवत (९.२१.२८) में समान शब्दों में दिया गया है। वायु तथा ब्रह्माण्ड में कृत के चौबीस शिष्यों के नाम भी दिये गये हैं। कृत के अनुयायी होने के कारण ये साम आचार्य 'कार्त' नाम से प्रख्यात हुए—

चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै साम संहिताः।
स्मृतास्ते प्राच्य सामानः कार्ता नामेह सामगाः॥
—वायु पु० ९९.१९१

इनके राणायनि, मांगलि, कुमार, कुसीद तथा कुथि नामक पाँच शिष्यों के नाम भविष्य पुराण (३.२६.७७) में दिये गये हैं। जिन्होंने पाँच-पाँच साम संहिताओं का अध्ययन प्रचलित कराया। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार इन शिष्यों के नाम तथा संहिता के प्रवर्तन विषयक ज्ञान नहीं हैं। सम्भव लगता है कि पौष्यञ्जि के चार शिष्य थे—लौगाक्षि, कुथुमि, कुसीदी तथा लांगलि। इनकी विस्तृत शिष्य परम्परा का वर्णन विस्तार इन पुराणों में विशेष रूप से किया गया है। इस प्रकार से कहते हुए कुछ चिन्तन दिखाई पड़े, पर इतना तो निश्चित है ही कि सामवेद की प्रधान शाखाओं के प्रवर्तक होने से सुकर्मा के ये दोनों शिष्य हिरण्यनाभ तथा पौष्यञ्जि प्रधान आचार्य थे।

पुराणों में जो विवरण मिलता है, उससे सामवेद की एक सहस्र शाखाएँ होने की जानकारी मिलती है। इसी की पुष्टि व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता पतञ्जलि के 'सहस्रवर्त्मा सामवेदः' वचन से भली-भाँति होती है। सामवेद गान प्रधान है। अतः संगीत की विपुलता तथा सूक्ष्मता को ध्यान में रखकर विचार करने पर यह संख्या अतिशय नहीं प्रतीत होती। लेकिन पुराणों में कहीं भी इन शाखाओं की पूरी नामावली देखने को नहीं मिलती। यही कारण है कि कुछ आलोचकों ने 'वर्त्म' शब्द को शाखावाची न मानकर केवल सामगायनों की विभिन्न पद्धतियों को सूचित करने वाला माना है। जो कुछ भी हो, आज की प्रसिद्ध परम्परागत शाखाएँ कितनी रही हों, परन्तु दैव दुर्योग से इनमें से अधिकांश का लोप हुआ

रूप में ही बचा कि इनके नाम भी विस्मृति के गर्त में विलीन हो गये।

आजकल प्रपंच हृदय, दिव्यावदान, चरणव्यूह तथा जैमिनि गृह्य सूत्र को देखने पर १३ शाखाओं का पता चलता है। सामतर्पण के अवसर पर इन आचार्यों के नाम तर्पण का विधान मिलता है। इस वेद की तीन आचार्यों की शाखाएँ मिलती हैं—(१) कौथुमीय (२) राणायनीय (३) जैमिनीय।

एक बात ध्यान देने लायक है कि पुराणों में वर्णित तथा [illegible] के वर्णन होने पर भी इन दिनों उत्तर व पूर्वी भारत में साम शाखाओं का प्रचार देखने में नहीं आता है, लेकिन दक्षिण व पश्चिम भारत में आज भी इन शाखाओं का थोड़ा-बहुत प्रचलन देखने को मिल जाता है। संख्या तथा प्रचार की दृष्टि से कौथुम शाखा विशेष महत्त्व की है। इसका प्रचलन गुजरात के ब्राह्मणों में विशेषकर नागर ब्राह्मणों में देखने को मिलता है। राणायनीय शाखा महाराष्ट्र में, जैमिनीय शाखा कर्नाटक तथा सुदूर दक्षिण के तिन्नेवेली [illegible] जैसे जिले में देखने को अवश्य मिलती है, परन्तु इसके अनुयायी कौथुमों की अपेक्षा बहुत कम हैं।

(१) कौथुम शाखा—[illegible] ने [illegible] भारत के अनेक स्थानों पर इसका नाम निर्देश किया है। इसी से इसके गौरव व महत्त्व का पता चलता है। इसी की संहिता सर्वाधिक लोकप्रिय है। [illegible] इसी शाखा की है।

(२) राणायनीय शाखा— इसकी संहिता कौथुमों जैसी ही है। मंत्र संख्या की दृष्टि से दोनों में समान है। केवल उच्चारण में कहीं-कहीं भिन्नता देखने को मिलती है। कौथुमीय लोग जहाँ 'हाउ' तथा 'राई' कहते हैं, वहाँ राणायनीय लोग 'हावु' तथा 'रायी' का प्रयोग करते हैं। इसकी एक अवान्तर शाखा 'सात्यमुग्रि' है, जिसकी एक उच्चारण विशेषता भाषा विज्ञान की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। आपिशली शिक्षा में 'छन्दोगानां सात्यमुग्रिराणायनीया ह्रस्वानि पठन्ति' [illegible] तथा महाभाष्यकार ने स्पष्ट निर्देश किया है कि सात्यमुग्रि लोग एकार तथा ओकार का ह्रस्व उच्चारण किया करते थे।

आधुनिक भाषाओं के जानकारों को यह बताने की जरूरत नहीं है कि प्राकृत भाषा तथा आधुनिक भारतीय अनेक भाषाओं में ए तथा ओ का ह्रस्व उच्चारण भी किया जाता है। यह विशेषता कितनी प्राचीन है, इसे भाषा विज्ञानी समझ सकते हैं।

(३) जैमिनीय शाखा— इस मुख्य शाखा के ग्रन्थ [illegible] के बाद प्रकाश में आये हैं। संहिता, ब्राह्मण, श्रौत तथा गृह्य सूत्र-इनकी [illegible] मिलती है [illegible] हैं। जैमिनीय संहिता में मंत्रों की संख्या १६८७ है। अर्थात् इसमें कौथुम शाखा से १८२ मंत्र कम हैं। दोनों में कई तरह के पाठ भेद भी हैं। उत्तरार्चिक में कई ऐसे मंत्र भाग हैं, जो कौथुमीय संहिता में नहीं मिलते हैं। परन्तु जैमिनीयों के सामगान कौथुमों की तुलना में एक हजार अधिक हैं। कौथुम गान सिर्फ २७२२ हैं, जबकि जैमिनीय गान ३६८१ हैं।

[illegible] तथा पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि सामवेद-उन्नत बड़ी तथा सामगानों की संख्या आज के उपलब्ध गानों से बहुत अधिक थी। [illegible] में सामगानों के [illegible] गणना [illegible] गई है— [illegible] । इसके अनुसार [illegible] (८.३.३.२५) अर्थात् ८००० × ३४ = २,७२,०००। इस तरह साम मंत्रों के पद एक लाख चौवालीस हजार थे। ऐसे गानों की संख्या तो आठ हजार तथा गानों की संख्या भी [illegible] थी। [illegible] स्थलों पर बार-बार उल्लेख होने से इसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता।

साम गान के स्वर

ऋग्वेदीय मंत्रों का आश्रय लेकर ऋषियों ने गान ग्रन्थों की रचना की है। ये गान चार प्रकार के हैं— (१) ग्राम गेय गान—जिसे प्रकृति गान तथा वेय गान भी कहते हैं। (२) आरण्यक गान (३) ऊह गान (४) ऊह्य गान या रहस्य गान। इन गानों में वेय गान पूर्वार्चिक के प्रथम तीन अध्याय के मंत्रों के ऊपर होता है। अरण्य गान आरण्य पर्व के विशिष्ट मंत्रों पर, ऊह और ऊह्य उत्तरार्चिक में संकलित मंत्रों पर प्रस्तुत होता है। भिन्न शाखाओं में इन गानों की संख्या भिन्न है। सबसे अधिक गान जैमिनीय शाखा में मिलते हैं।

	कौथुमीय गान	जैमिनीय गान
वेय गान	११९७	१२३२
आरण्य गान	२९४	२९१
ऊह गान	१०२६	१८०२
ऊह्य गान	२०५	३५६
कुल योग	२७२२	३६८१

भारतीय संगीत शास्त्र का मूल इन्हीं साम गानों पर आधारित है। भारतीय संगीत जितना सूक्ष्म व्यापक तथा वैज्ञानिक है, वह अन्य कहीं भी मिलता नहीं है। लेकिन मूर्खों की उपेक्षा के कारण उसकी इतनी बड़ी दुर्दशा आजकल उपस्थित है कि उसके मौलिक सिद्धांतों को समझना एक समस्या हो गई है। साम गान की पद्धति का ज्ञान उसी तरह दुर्लभ है। एक दो ही साम के जानने वाले बचे हैं, अतः साम गान को ठीक रूप में गाने वालों की संख्या तो अंगुलियों में गिनने लायक है। यदि गायक के गले में लोच हो और वह उचित मूर्च्छना, आरोह, अवरोह का विचार कर साम गान करे, तो संगीत न जानने पर भी श्रोता की विलक्षण अनुभूति हुए बिना नहीं रहती।

नारद शिक्षा के अनुसार साम के स्वर मंडल इतने हैं—७ स्वर, ३ ग्राम, २१ मूर्च्छना, ४९ तान। इन साम स्वरों की तुलना वेणु स्वर से इस प्रकार है—

साम	वेणु
१ प्रथम	मध्यम
२ द्वितीय	गान्धार
३ तृतीय	ऋषभ
४ चतुर्थ	षड्ज
५ पंचम	निषाद
६ षष्ठ	धैवत
७ सप्तम	पंचम

साम गानों में ये ही सात स्वर के अनेक प्रकार, लयों के स्वरूप को पुष्टि करने के लिए किये जाते हैं। ऋग्वेदीय मंत्रों के ऊपर दिये गये अंकों की व्यवस्था दूसरी प्रकार की होती है। ऋग्वेदीय मंत्रों के सामगानों के रूप में ढालने पर अनेक गानानुकूल शाब्दिक परिवर्तन किये जाते हैं। इन्हें साम विकार कहते हैं। जिनकी संख्या ६ है—

(१) विकार— शब्द का परिवर्तन 'अग्ने' के स्थान पर ओग्नायि।

(२) विश्लेषण— एक-एक पद का पृथक्करण, यथा—वीतये के स्थान पर वोयितोया २ यि।

(३) विकर्षण— एक स्वर का दीर्घकाल तक विभिन्न उच्चारण जैसे— ये का या ३ यि।

(४) अभ्यास— किसी पद का बार-बार उच्चारण, यथा तोयायि का दो बार उच्चारण।

(५) विराम— गायन में सुविधा के लिए किसी पद के बीच में रुक जाना यथा-गृणानो हव्यदातये में 'ह' पर विराम हो लेना।

(६) स्तोभ— औ, होवा, आदि गानानुकूल पद।

साम के विभाग

साम गायन की पद्धति बहुत कठिन है। उसकी ठीक-ठीक जानकारी हो सके, इसके लिए बहुत सूक्ष्म अध्ययन अपेक्षित है। साधारण ज्ञान के लिए यह जान लेना काफी है कि साम गान के पाँच भाग होते हैं —

(१) प्रस्ताव— यह मंत्र का आरम्भिक भाग है, जो 'हुं' से आरम्भ होता है। इसे प्रस्तोता नामक ऋत्विज् गाता है।

(२) उद्गीथ— इसे साम का प्रधान ऋत्विज् उद्गाता गाता है। इसके आरम्भ में ओम् लगाया जाता है।

(३) प्रतिहार— इसका मतलब है, दो को जोड़ने वाला। इसे प्रतिहर्ता नामक ऋत्विज् गाता है। इसी के अन्तिम-भाग से दूसरे मंत्र जोड़े जाते हैं।

(४) उपद्रव— जिसे उद्गाता गाता है।

(५) निधन— जिसमें मंत्र के दो पदांश या ओम् रहता है। इसका गायन तीनों ऋत्विज्, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता एक साथ मिलकर करते हैं। उदाहरण के लिए सामवेद का प्रथम मंत्र लें—

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ (सामवेद १)

इसके द्वारा जिस साम का गायन किया जायेगा, उसके पाँचों अंग इस प्रकार होंगे—

(१) हुं ओग्नाइ (प्रस्ताव)

(२) ओम् आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये (उद्गीथ)

(३) नि होता सत्सि बर्हिषि ओम् (प्रतिहार)। इसी प्रतिहार के दो भेद होंगे, जो दो प्रकार से गाये जायेंगे।

(४) निहोता सत्सि बर्हिषि (उपद्रव)

(५) बर्हिषे ओम् (निधन)

साम वेद के ब्राह्मण एवं सूत्र ग्रन्थ

(१) ताण्ड्य ब्राह्मण (प्रौढ़ अथवा पंचविंश ब्राह्मण) (२) षड्विंश ब्राह्मण (३) साम विधान ब्राह्मण (४) आर्षेय ब्राह्मण (५) देवताध्याय ब्राह्मण (६) उपनिषद् ब्राह्मण (संहितोपनिषद् ब्राह्मण अथवा मंत्र ब्राह्मण) (७) वंश ब्राह्मण आदि सामवेद के ब्राह्मण हैं। षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मण का २६ वाँ भाग है, इसलिए पहला भाग पंचविंश ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरा भाग षड्विंश ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् मिलकर सारा महाब्राह्मण होता है। षड्विंश ब्राह्मण में अद्भुत शान्तियों का संग्रह होने के कारण इसे अद्भुत ब्राह्मण भी कहते हैं। सामवेद के दूसरे ब्राह्मण का नाम अनुब्राह्मण भी है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में "केनोपनिषद्" है।

इस जैमिनीय शाखा का दूसरा नाम तलवकार शाखा भी है, इसलिए केनोपनिषद् को तलवकारोपनिषद् भी कहते हैं।

(१) मशक कल्प सूत्र (२) क्षुद्र सूत्र (३) लाट्यायन सूत्र (४) गोभिलीय गृह्य सूत्र और राणायनीय शाखा के (१) द्राह्यायण श्रौत सूत्र (२) खादिर गृह्य सूत्र (३) पुष्प सूत्र। ये सामवेद के सूत्र ग्रंथ "अनुब्राह्मण" के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत प्रयास के संदर्भ में

वेद का अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक हैं। विशुद्ध ज्ञान (प्योर नॉलेज) के रूप में होते हैं। उनके प्रायोगिक (एप्लाइड) रूप अनेक स्तरों पर हैं आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक आदि

ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उजागर करते हैं। किसी एक पक्ष के लिए पूर्वाग्रह रखकर कवियों की उक्तियों के साथ न तो न्याय किया जा सकता है और न ही पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। इसी से कवियों की विशेष दृष्टि का अनुसरण करते हुए ही समझा जाना चाहिए।

सृष्टि के घटकों को विभिन्न दृष्टि से देखा-समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, आधिभौतिक अर्थों में सूर्य आग का जलता हुआ गोला मात्र है, जिसमें हाइड्रोजन हीलियम की रासायनिक अभिक्रियाएँ चलती रहती हैं; पर जिन्हें व्यापक बोध है, वे जानते हैं, कि वह सृष्टि का [illegible] है। इसकी [illegible] शक्ति के रूप में [illegible] के [illegible] के रूप में [illegible] किये जाते हैं। आध्यात्मिक अर्थों में सूर्य [illegible] हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की व्यवस्था में वे [illegible] हो [illegible] हैं। इस तथ्य को और अधिक [illegible] अर्थों में समझना हो, तो मनुष्य के उदाहरण से समझा जा सकता है। मानव अस्तित्व के भी तीन रूप हैं- आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक। रक्त, मांस, चर्म से बना शरीर मनुष्य का आधिभौतिक परिचय है। यही अनुभूतियों व अभिव्यक्तियों का माध्यम है, पर यही सब कुछ नहीं। इसमें एक चेतना भी रहती है, जो आधिभौतिक चेतना की संचालक व नियामक है, शुभाशुभ कर्मों की प्रेरक है। आध्यात्मिक बोध का अनुभव आत्मा की व्यापकता में होता है, जो कर्म-बंधन से उन्मुक्त शुद्ध और चिरन्तन [illegible] है। तीनों ही स्वरूप अपने आपमें भी सीमा और व्यापकता में सत्य हैं, तीनों की अनुभूति किये जाने पर ही ज्ञान की समग्रता संभव है।

समग्र ज्ञान-धाराओं का यही वैशिष्ट्य है। इसमें ज्ञान की समग्रता, बोध की व्यापकता अभिप्रेत है। यही कारण है कि इसमें कोई व्यवधान नहीं रखा गया है। इस प्रकार की उन सूत्रों जिज्ञासुओं के लिए उपयुक्त ढंग से [illegible] अनुभव किया जाना चाहिए, जिससे हृदय और मन वेदमंत्रों में निहित भावों को जानने के लिए आतुर हैं, पर वेद भाषा की अनभिज्ञता के कारण विवश हैं। इस प्रयास का लाभ उठाकर वे ऋचाओं की दिव्यता के दर्शनों से पुलकित होंगे।

सामान्य अर्थों में भाष्य के अलावा व्याकरण, इतिहास, व्युत्पत्ति आदि रहते हैं। इनके विस्तृत [illegible] में बुद्धि एवं [illegible] रहती है। क्योंकि वेद मंत्रों का अर्थ जानने के लिए उन्हें व्याकरण आदि की ओर जाना पड़ेगा। यदि ऐसा न करेंगे, तो वेद मंत्र के लिए पुस्तकें-पुस्तकें [illegible] होंगी। इसीलिए इस भाष्य [illegible] में [illegible] व [illegible] की आधार भूमि तैयार की गई है। [illegible] इस प्रकार भूमि पर बैठकर मंत्र के भावार्थ पर चिन्तन करके उनकी गहराई को अनुभव कर सकते और टिप्पणियों से युक्त हो सकते हैं। जहाँ आवश्यक समझा गया है, वहाँ पाद-टिप्पणियाँ दी गई हैं। वे टिप्पणियाँ [illegible] अनुभूतियाँ हैं। जिनके आधार पर वैज्ञानिक मनोभूमि के मनस्वी भी वेदज्ञान को पाने का सुयोग पा सकते हैं।

सामान्य क्रम में वेदों पर जो भाष्य किए गये हैं, उनका आधार ऐतिहासिक, आधिभौतिक अथवा आध्यात्मिक रहा है। इसमें इन सभी के साथ वैज्ञानिकता का भी समावेश है। अनुभव [illegible] वैज्ञानिक दृष्टि की भी अपेक्षा रखते हैं। अतः उनके मूल वेद [illegible] नहीं [illegible] गया। [illegible] पर भी [illegible] टिप्पणियों के माध्यम से जिज्ञासुओं की इस दिशा में अपेक्षा को पूरा किया गया है।

इस संदर्भ में कुछेक उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा—

[illegible] 'एक [illegible] द्युलोक में पृथ्वी एवं [illegible] [illegible] हैं। [illegible] 'इस [illegible] में वैज्ञानिक टिप्पणी दी गई है—

[illegible] + आक्सीजन + ऊर्जा (अग्नि) से जल उत्पन्न होता है। ऊर्जा (अग्नि) ही जल को मेघ तथा प्रकृति का पोषक बनाती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि $2H_2 + O_2 = 2H_2O$ हाइड्रोजन की दो मात्रा तथा आक्सीजन की एक मात्रा = जल। [illegible] विज्ञान का [illegible] होता है, परन्तु [illegible] आवश्यकता है [illegible] एक [illegible] के लिए [illegible] नहीं है। [illegible] में बताया है—

हे [illegible], [illegible], [illegible], पानी को नीचे न गिरने देने वाले अग्नि-देव। [illegible] के लिए [illegible] करने की [illegible] हो।"

इस [illegible] में 'पानी को नीचे न गिरने देना' यह विशेषता अग्नि से किस प्रकार है, यह [illegible] हो सकता है। इस पर टिप्पणी की गई है, [illegible] को अग्नि की [illegible] नहीं है। [illegible] नहीं होती। इस टिप्पणी से [illegible] की अपनी विशेषता [illegible] के लिए [illegible] जाती है। इस प्रकार की [illegible] की [illegible] पर भी गई है, जो उसकी मौलिक विशेषता का निदर्शन है।

विसंगतियों से बचाव

[illegible] कार्यों को करते समय उनके [illegible] के लिए [illegible] का प्रयोग आज भी किया जाता है। [illegible] के साथ [illegible] को [illegible] है। [illegible] का प्रयोग [illegible] शुभ कार्यों के साथ किया जाता रहा है।

विवाह आदि [illegible] के समय [illegible] [illegible] का [illegible] जाते हैं। [illegible] में [illegible] होता है, किन्तु [illegible] के साथ [illegible] की संगति होना आवश्यक नहीं। इसी प्रकार [illegible] के साथ [illegible] जाते हैं, पर [illegible] के साथ जोड़ नहीं जा सकते।

[illegible] में अपने [illegible] के साथ [illegible] का [illegible] किया है। इन [illegible] के साथ [illegible] के अर्थों की संगति बिठाने का प्रयास करने का [illegible] की परिपाटी को अधिक [illegible] सकता है। वेद-मन्त्रों का [illegible] उपयोग [illegible] के लिए ही होता दिखता रहा, इसलिए [illegible] की [illegible] आवश्यकता भी [illegible] किन्तु [illegible] रूप से किसी [illegible] के [illegible] है। [illegible] मन्त्रों को [illegible] के साथ भी [illegible] के [illegible] है, किन्तु उनके अर्थों को उनकी [illegible] में [illegible] करने का प्रयास किसी भी प्रकार [illegible] जा सकता। [illegible] में ऐसे [illegible] द्वारा हुए भी हैं। इसी [illegible] को [illegible] का [illegible] करने का अवसर भी मिल जाता है।

आज भी [illegible] की [illegible] में [illegible] के [illegible] का [illegible] है। [illegible] में [illegible] आदि के [illegible] का प्रयोग है। [illegible], [illegible], अर्थ [illegible] कैसी [illegible] के [illegible] है [illegible] करना ही अच्छा है कि हम [illegible] के [illegible], [illegible] को अपनी [illegible] कर लें।

किन्तु चूँकि व्यापक मंत्र व्यापक क्रिया के साथ जोड़ा जाता है, इसलिए उस गूढ़ पद का अर्थ उस छोटी सी क्रिया तक सीमित करने का प्रयास किया जायेगा, तो न्याय कैसे होगा ? इस भाष्य(?) में ध्यान रखा गया है कि मंत्रों के कर्मकाण्ड का उल्लेख भी बना रहे और उनके व्यापक अर्थों के साथ भी न्याय हो सके।

मंत्र द्रष्टाओं का स्तर

कर्मकाण्ड तथा मंत्रों के व्यापक अर्थों के बीच तालमेल समझने के लिए आवश्यक है कि मंत्रों को देखने वाले, मंत्र द्रष्टाओं की गूढ़ दृष्टि का अनुगमन करते हुए समझने का प्रयास किया जाय। जैसे सोमलता कूटी जा रही है, उसे निचोड़ा और छाना जा रहा है। ऋषि देखता है, "इस सोमलता के रस में एक दिव्य पोषक तत्त्व सन्निहित है, जिसके माध्यम इन्द्र रस को ग्रहण किया जाता है।"

उसी तत्त्व को देखने वाले ऋषि उसको दिव्य दृष्टि देखते हैं कि वही पोषक तत्त्व पृथ्वी अन्तरिक्ष में भी संचरित हो रहा है, वही तत्त्व प्राणियों के प्राण में भी प्रवाहित हो रहा है, वह वनस्पतियों और सत्त्व के सहारे प्राणियों में भी प्रवाहित है, वही उत्पन्न करने की व्यवस्था और द्युलोक में भी दिखाई देता है, वह कहता है—

"सोम बुद्धि, द्युलोक, पृथ्वीलोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र तथा विष्णु को उत्पन्न करने वाला सोम शुद्ध किया जा रहा है।" (साम॰ ५४०)

"लोगों (?) ... (आदित्य, अर्जुन तथा वनि—मरुत्) ने महान सर्वत्र गमनशील सोम की स्तुति अर्पित कर रहे हैं...।"

इस प्रकार छोटी-छोटी क्रियाओं के साथ जोड़े गये मंत्रों के भाव बहुधा व्यापक ही होते हैं। उन्हें उसी दृष्टि से लिया जाना चाहिए। प्रस्तुत प्रकाशन में ऐसा ही कुछ किया गया है।

अग्नि, इन्द्र और सोम

अग्नि—'लौकिक' अग्नि अर्थ का सर्व सुलभ रूप है, किन्तु वह अनेक रूप अग्नि पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आदित्य, वायु, पदार्थ, पृथ्वी, सूर्य एवं अन्तरिक्ष में विभिन्न रूपों में व्याप्त है। ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि इन सभी स्थानों- सभी रूपों में अग्नि को सक्रिय देखती है, इसलिए उनके स्वभाव और गुणों का बखान करने में उसकी भाषा संकोच क्यों करे ? उसे न समझने वाले उनके कथन को विचित्र कहें, तो कहें। केवल 'भाषा की-लेखी' तक सीमित रहने वाले 'अग्नि की देखी' को समझने का विनम्र प्रयास करें, तो वह दिव्य ज्ञान अपने को प्रकट करने लगता है।

अग्नि के व्यापक प्रयोग भी कर्मकाण्ड से जुड़े हैं। यज्ञ में वह हव्य-वाहक बन जाता है। शरीर में वह अन्न-औषधि आदि तत्त्वों को वहाँ ऊर्जा प्रकृति रूप में रूपान्तरित करती है। उस भाव में ऋषि उसे अनेक विशेषणों से सम्बोधित करते हुए उसके गुण-धर्मों की चर्चा करते हैं। सामवेद का—साम वेद का प्रथम साम ही 'अग्नि को देवताओं तक हवि पहुँचाने वाला कहता है' — अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ (साम॰ १) तीसरे 'साम' में 'अग्नि' के व्यापक प्रभाव को ऋषि ने व्यक्त किया है—"अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥" अर्थात् सबके द्वारा देवों को आवाहित करने (बुलाने) में समर्थ, यज्ञ को श्रेष्ठ रीति से सम्पन्न करने वाले इस अग्नि देव को, हम देवों के दूत रूप में स्वीकार करते हैं। (सामवेद ३)

'अग्नि' को एक स्थान पर सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड का आधार माना गया है—'स्थायी... मूर्धा

विश्वमय बनाता है (ऋ० १०.८८.१०) [illegible] 'अग्नि' को पृथ्वीलोक के सर्वोच्च स्थान का (पूर्व रूप में) अभिषिक्त पृथ्वी का जीवन प्रकाशित करके उसका पालन करने वाला तथा कल्याणप्रद स्वभाव का विवेचन करते हुए "वाचाल मन" का [illegible] [illegible] किया गया है— "अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति॥" (ऋ० ८.४४.१६) यहाँ 'अग्नि' वायु तथा सूर्य रूप भी है, जिनके द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड में जीवन, गति एवं ऊर्जा आदि का संचार सम्भव हुआ है। यास्काचार्य के शब्दों में— "[illegible]" (ऋ० [illegible]) इसी प्रकार से अन्य अनेक [illegible] सूक्तों तथा मन्त्रों का [illegible] [illegible] ऋषियों के द्वारा बहुत रूपों में किया गया है, जिसका एक संकलन ऋग्वेद में 'अग्नेय [illegible]' के रूप में जाना जाता है।

इन्द्र—इन्द्र को देवों के [illegible] के रूप में माना गया है। [illegible] में शक्ति + और — [illegible] की [illegible] करने की [illegible] न हो, तो [illegible] (उच्च-[illegible]) में [illegible] हो जाएं। सूर्य में यदि प्रकाश और [illegible] करने की क्षमता न हो तो, सौर मण्डल का [illegible] कैसे हो? अथवा [illegible] में यदि [illegible], [illegible], [illegible] को अपने साथ जोड़े रखने की क्षमता न हो, तो जीवन कैसे हो? [illegible] के [illegible] के नाम ही [illegible]-[illegible] [illegible] कहलाने लगते हैं।

ऋग्वेद ने इन्द्र को इन सभी भावनाओं में देखा और समझा है। इन्द्र [illegible] [illegible] में [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] है, जिसके आधार पर [illegible] से लेकर [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]— [illegible] [illegible] 'इन्द्र' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, उसके इस [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] है—"[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]॥" (ऋ० [illegible]) एक अन्य स्थल पर ऋषि ने कहा— "ऋषि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]॥" अर्थात् यह इन्द्र गौओं का पालन करने वाला, [illegible] का [illegible] और [illegible] का [illegible] है। उसकी आराधना करो, जिससे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (ऋ० [illegible])। दूसरे स्थान पर 'इन्द्र' को सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड का [illegible] [illegible] करते हुए ऋषि ने कहा—"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]..." (ऋ० [illegible]) और [illegible] इस 'इन्द्र' को 'द्युलोक' और 'भूलोक' को [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]— '[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]॥' (ऋ० [illegible]) इसी प्रकार के [illegible] [illegible] सूक्तों से [illegible] होने के कारण ऋग्वेद में 'इन्द्र' को विशेष [illegible] गया है। इनके [illegible] सूक्तों और मन्त्रों के [illegible] [illegible] ऋग्वेद के 'पूर्वाचिक' का एक [illegible] [illegible] ही [illegible] के [illegible] है, जिसका नाम 'इन्द्र [illegible]' [illegible] [illegible] गया है, जिसमें [illegible] [illegible] [illegible] है।

'इन्द्र' का वैदिक विज्ञान की दृष्टि से भी [illegible] [illegible] किया गया है। जहाँ एक ओर 'इन्द्र' को देवों का राजा या [illegible] मानते हैं, वहीं वैज्ञानिक दृष्टि उसे "[illegible], [illegible] एवं [illegible] का [illegible]-[illegible] का मुख्य [illegible] मानती है। [illegible] [illegible] [illegible] ने 'विद्' कहा है। वैज्ञानिक दृष्टि का यह विषद विवेचन वेदों में 'इन्द्र' [illegible] [illegible] में देखा जा सकता है।

सोम—ऋग्वेद की दृष्टि में सोम एक [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] में, कभी [illegible] [illegible] के रूप में तथा कभी [illegible] [illegible] देवशक्ति के रूप में अनुभव करते हुए विभिन्न [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible], [illegible] [illegible] में [illegible]-[illegible] का [illegible] किया जाय, तो [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] आशीर्वाद से [illegible] करने में समर्थ हो सकती है।

सोम को उक्त तीनों [illegible] को [illegible]

करने के लिए यहाँ कुछ उदाहरण देना समीचीन होगा — 'सोमलता' की [illegible] [illegible] (विभिन्नार्थक उपनिषदाओं) में पायी गयी है, जिसका [illegible] [illegible] अतिशय आनन्द [illegible] करने में प्रधान है — 'आसाव्यं [illegible] [illegible]...।' (ऋ० [illegible]) यह सोम रस [illegible] वर्ष का होता है, बल-वीर्य बढ़ाने वाला है। देवता भी यहाँ सोम में [illegible] पान करते हैं — '[illegible] [illegible] [illegible] पीनवे [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]।' (ऋ० [illegible])

शारीरिक बल-वीर्य बढ़ाने के साथ यह सोम रस [illegible] मनोबल [illegible] बढ़ाने वाला भी है — '[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।' (ऋ० [illegible]) इस सोमरस के [illegible] [illegible] कुछ इस प्रकार पाये गये हैं — [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] बढ़ाने वाला (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] करने वाला (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]), [illegible] — [illegible] [illegible]।

जहाँ सोम को एक लता के रूप में [illegible] है, वहाँ उसे एक सूक्ष्म [illegible] भी कहा गया है। [illegible] ऋषियों का ऐसा [illegible], जो [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] देता है, [illegible] ने उसे भी 'सोम' संज्ञा से अभिहित किया है — '[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।' अर्थात् हे सोम! [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] में हुआ है। [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राप्त करते हैं। (ऋ० [illegible])

'सोम' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible]

के लिए [illegible] [illegible] [illegible] किया [illegible] [illegible] को [illegible] किया था' — '[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।' (ऋ० [illegible]) एक स्थान पर सोम को 'महान् [illegible] [illegible] में [illegible] हुआ' कहा गया है — '[illegible] [illegible] [illegible]।' (ऋ० [illegible])

'सोम' का [illegible] [illegible] और भी [illegible] है। [illegible] [illegible] ऋषियों ने अनुभव किया कि सम्पूर्ण [illegible] ब्रह्माण्ड की [illegible], [illegible] और [illegible] की [illegible] का [illegible] यह 'सोम' ही है। एक स्थान पर उसे 'सूर्य को प्रकाशित करने वाला' कहा गया है — '[illegible] [illegible]...।' (ऋ० [illegible]) एक अन्य स्थान पर 'सोम' महान् [illegible] को [illegible] [illegible] '[illegible]' [illegible] [illegible] '[illegible]' को [illegible] [illegible] [illegible] — '[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।' (ऋ० [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं, किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] है, इसका [illegible] [illegible] में 'सोम' [illegible] [illegible] देखा जा सकता है। [illegible] [illegible] ने इस तंत्र के [illegible] [illegible] में सोम को [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] '[illegible]' की संज्ञा दी है, जिसे '[illegible] [illegible]' [illegible] हुए, [illegible] में सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड की [illegible] मानी है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की सूची दी है। [illegible] है कि [illegible] इन [illegible] ऋषियों की उन सभी [illegible] में [illegible] देखते हैं। इसीलिए [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] किये [illegible] [illegible] का पर्व [illegible] [illegible] जा सकता।

इस [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] किया गया है।

ऋषि, देवता और छंद

वेदमंत्रों में सन्निहित ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक-जन, जब संहिता और उसका भाष्य पढ़ते हैं, तो प्रसंग में ही प्रयुक्त ऋषि, देवता तथा छंदों का विश्लेषण चाहते हैं। भाष्यों में यत्र-तत्र ऐसी ऋचाएँ आती हैं, जो किसी न किसी देवता, ऋषि, स्वरूप-भाव, क्रिया, स्थान आदि की द्योतक होती हैं। इनके विषय में विस्तार से जानने की उत्सुकता सहज ही होती है, विशेषतः ऋषियों-देवताओं के विषय में। इन भाष्यों में दिए हुए संदर्भों का तो कहीं टिप्पणियों में परिचय दे दिया गया है, परन्तु ऋषियों, देवताओं तथा छंदों का परिचय 'परिशिष्ट' के रूप में अकारादि क्रम से दे दिया गया है, जो अभी तक प्रकाशित हुई वैदिक संहिताओं में तथा वेद भाष्यों में अनुपलब्ध है। प्रत्येक संहिता में भिन्न-भिन्न ऋषियों, देवताओं एवं छंदों का मंत्रोल्लेख सहित क्रम के साथ हुआ है, उनका अकारादि क्रम में संक्षिप्त 'परिशिष्ट' क्रमांक एक, दो तथा तीन में प्रस्तुत किया गया है, जो इस विषय के शोधार्थियों के लिए अत्युपयोगी सिद्ध होगा।

पाठ के संदर्भ में

प्रस्तुत संहिता में मंत्रों का विभाजन परिशुद्ध पाठ लिया गया है। इस विषय में मतैक्यात्मक स्थिति जानने का यहाँ संहिताओं में कुछ अंतर देखने को मिलता है। अथर्ववेद की उपलब्ध संहिताओं में दो संहिताएँ सर्वाधिक प्रामाणिक मानी गई हैं। एक है सर्वाधिक प्रचलित शाखा, भारतवर्ष में सर्वप्रसिद्ध, दूसरी है— पैप्पलाद शाखा, अथर्ववेद के उपलब्ध, किन्तु कुछ अंशों दोनों में अलग-अलग है।

ऐसी स्थिति में इसके सैकड़ों-हजारों द्वारा संपादित, अनूदित (१८७५ ई०) में आचार्यश्री की पाण्डुलिपि के सम्पादित प्राचीन पाठ को प्रामाणिक माना है और उसके अनुसार, उसमें पाठ को शुद्ध करके लिया है।

आशा है, जिस भाव से यह प्रकाशन किया गया है, उसे उसी रूप में ग्रहण करते हुए पाठकगण इससे विशेष लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

—भगवती देवी शर्मा

ॐ

"वेद मन्त्र अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक हैं। विशुद्ध ज्ञान (प्योर साइंस) के रूप में होने से उनके प्रायोगिक (एप्लाइड) रूप अनेक बनते हैं। वे आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के रहस्यों को उजागर करते हैं। किसी एक पक्ष के लिए पूर्वाग्रह रखकर ऋषियों की उक्तियों के साथ न तो न्याय किया जा सकता है और न ही पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। इसे तो ऋषियों की विवेक-दृष्टि का अनुसरण करते हुए ही समझा जाना चाहिए।"

* * *

सामवेद-संहिता

पूर्वार्चिकः (छन्द आर्चिक)

॥ आग्नेयं पर्व ॥

॥अथ प्रथमोऽध्यायः॥

॥प्रथमः खण्डः॥

१. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

हे स्तवनीय एवं सर्वोत्कृष्ट अग्निदेव ! हवि को [illegible] के लिए आप पधारें । आपकी हम स्तुति करते हैं । यज्ञ में हम आपका आवाहन करते हैं, क्योंकि आप हव्य पदार्थों को प्रदान करने वाले हैं ॥१॥

२. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥२॥

हे अग्ने ! आप समस्त देव शक्तियों का आह्वान करते हैं, जिनकी उपस्थिति यज्ञों में अनिवार्य मानी गई है । सभी देवताओं के द्वारा मनुष्यों के यज्ञ में आपको प्रतिष्ठित किया जाता है ॥२॥

३. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ के विधाता हैं, समस्त देव शक्तियों को तुष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं । आप यज्ञ की विधि-व्यवस्था के स्वामी हैं— ऐसे समर्थ आपको देवदूत रूप में हम स्वीकार करते हैं ॥३॥

४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥४॥

उत्तम आहुतियों से प्रदीप्त होकर याजकों को धनधान्य प्रदान करने वाले हे तेजस्वी अग्निदेव ! हमें कर्मों में रुकावट डालने वाली दुष्प्रवृत्तियों का आप विनाश करें ॥४॥

५. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥५॥

हे अग्ने ! उपासकों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले, सदा हम पर कृपा करने वाले, मित्र के समान प्यारे, [illegible] करने वाले आप हमारी कामना से प्रसन्न हों ॥५॥

६. त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६॥

हे अग्ने ! संसार के द्वेष करने वाले व्यक्तियों एवं शत्रुओं से आप हमारी रक्षा करें और विविध विभूतियों से हमें वैभववान् बनायें ॥६॥

७. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥७॥

हम आपके लिए श्रेष्ठ स्तुतियाँ करते हैं, आप इन्हें सुनें, प्रकट हों और इस सोमरस से अपनी महत्ता का विस्तार करें ॥७॥

८. आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥८॥

हे देव ! हम आपके पुत्र, हृदय से आपकी स्तुति करते हुए आपको ओर आकर्षित करना चाहते हैं ॥८॥

९. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥९॥

परम श्रेष्ठ, अखिल विश्व के धारणकर्त्ता हे अग्निदेव ! विद्वान् अथर्वा (ऋषि) ने आपको विश्व के मस्तकरूप आकाश के रूप में मंथन द्वारा प्रकट किया ॥९॥

१०. अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥

हे अग्ने ! हमारी श्रेष्ठता की रक्षा के निमित्त आप हमें उत्कृष्ट आश्रय प्रदान करें । आप ही प्रकाशों में श्रेष्ठ प्रकाशवान् देव हैं । आप ही हमें सब कुछ दिखलाने वाले देवता हैं ॥१०॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

११. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

हे अग्ने ! आप बलवान् एवं अनुपम पराक्रम वाले हैं, इसलिये मनुष्य साधक जन आपको नमस्कार करते हैं । आप शक्तिशालियों के विनाशक हैं, शत्रुओं का नाश करें ॥१॥

१२. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२॥

सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आप हवि वाहक हैं । आप देवताओं के प्रतिनिधि हैं, यज्ञ के संपादक हैं । हम आपको स्तुति के माध्यम से अनुकूल होने की प्रार्थना करते हैं । आप सब कुछ जानने वाले हैं ॥२॥

१३. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥

हे अग्ने ! यजमान की वाणी से प्रकट होने वाली हवि स्तुतियाँ, आपके गुणों का वर्णन करती हैं और वायु के सहयोग से आपको प्रदीप्त करती हैं ॥३॥

१४. उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥४॥

हे अन्धकारनाशक देव ! हम आपके सच्चे उपासक हैं । श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । दिन और रात्रि में सदा आपका गुणगान करते हैं । हे देव ! हमें आपका सान्निध्य प्राप्त हो ॥४॥

१५. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥५॥

स्तुतियों से जगाये जाने वाले हे अग्निदेव ! यजमान, पुरोहित आदि सभी आपके रुद्र स्वरूप का आवाहन हेतु सुन्दर वर्णन करते हैं ॥५॥

१६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६॥

हे अग्ने ! यज्ञ की सोमरक्षा के निमित्त, हम आपका आवाहन करते हैं । आपको मरुतों के साथ आमन्त्रित करते हैं । देवताओं के इस यज्ञ में आप पधारें ॥६॥

१७. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥

सूर्य के समान तेजस्वी एवं प्रकाशवान् हे अग्ने ! निमित्त और हिंसा रहित यज्ञ में आप पधारें । हम सभी आपको नमन करते हैं ॥७॥

१८. और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥८॥

हे साधक! [illegible] अग्निदेव! [illegible] भृगु और अप्नवान् आदि ऋषि [illegible] मन से आपको [illegible] है, [illegible] हृदय से आपकी स्तुति करते हैं ॥८॥

१९. अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥९॥

[illegible] अग्नि प्रदीप्त करने वाला मनुष्य अपनी बुद्धि को भी प्रदीप्त करता है। अतः, सूर्य किरणों के साथ (सूर्योदय के साथ) ही अग्निहोत्र का [illegible] जाता है ॥९॥

[सूर्य उदय से [illegible] अग्निहोत्र [illegible] वैज्ञानिक [illegible] है। [illegible] अग्निहोत्र [illegible] भी [illegible] है।]

२०. आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥

द्युलोक से भी परे [illegible] (अग्नि) [illegible] सूर्यदेव [illegible] में [illegible] देखता है ॥१०॥

[विश्व [illegible] में [illegible] है। [illegible] ऋषियों ने [illegible] को 'अग्नि' [illegible] है।]

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥ तृतीयः खण्डः ॥

२१. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

हे याजको! [illegible] अहिंसक [illegible] (यज्ञों) में [illegible] अग्निदेव [illegible] ॥१॥

२२. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥२॥

हे अग्निदेव! [illegible] को [illegible] और जो अपनी [illegible] स्तुति करते हैं [illegible] और [illegible] ॥२॥

२३. अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥३॥

हे अग्ने! [illegible] यजमानों के समीप पवित्र आसन पर बैठने के लिए आप पधारें ॥३॥

२४. अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥४॥

हे अग्ने! [illegible] हमारी रक्षा [illegible] शत्रुओं को [illegible] करें ॥४॥

२५. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥५॥

हे अग्ने! [illegible] ॥५॥

२६. नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥६॥

हे अग्ने! हे [illegible]! [illegible] आप [illegible]

द्वारा प्रवाहित किये जाते हैं। कोई भी प्रकार देवताओं, जो आपकी स्तुति करते हैं, उनके सब पुत्र धन होते हैं। (वे) इन्द्र के आश्रय प्राप्त करते हैं ॥६॥

२७. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्वति ॥७॥

अग्निदेव द्युलोक में ऊँचे एवं सर्वोच्च लोकों के पालनकर्ता हैं, जल को अन्न एवं पोषण देने में समर्थ हैं ॥७॥

[यह मन्त्र वैज्ञानिक सन्दर्भ में भी प्रयुक्त होता है। हाइड्रोजन ऑक्सीजन प्लाज्मा में जल उत्पन्न होता है। अग्नि ही जल की ऐसी प्रकृति का पोषण करती है। विज्ञान जगत् में यह तथ्य 'कार्बोहाइड्रेट ...' के अन्तर्गत आता है।]

२८. ईमम् ऊ षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥८॥

हे अग्निदेव! आप हमारे नवीन एवं, धन देने वाले स्तोत्रों (गायत्री छन्द एवं नवीन स्तवन) को देवों तक (देव शक्तियों के पोषण हेतु) पहुँचाएँ ॥८॥

२९. तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः। स पावक श्रुधी हवम् ॥९॥

गोपवन ऋषि की स्तुति से प्रकट हुए, अङ्गिराओं में श्रेष्ठ रूप में विराजमान, सबको पवित्र करने वाले हे अग्निदेव! आप हमारी प्रार्थना ध्यान से सुनें। पावक गतिशील प्राणों में चेतना के सूक्ष्म तेज, विराजमान होते हैं, स्वाभाव के साक्ष्य वे ही हैं ॥९॥

३०. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥

नाना अन्नों के स्वामी अग्निदेव, याजकों द्वारा दिये गये हविष्य पदार्थों को स्वीकार करते हैं तथा दानदाता याजकों को भी धन से परिपूर्ण बनाते हैं ॥१०॥

३१. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥

संसार को सूर्य का बोध (दर्शन) कराने के लिए, उनकी किरणें, जातवेद (सूर्य) से जिनकी उत्पत्ति समझी जाती है, ऐसे अग्निदेव को ऊर्ध्वगामी धारण किए रहती हैं ॥११॥

३२. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम् ॥१२॥

हे ऋत्विजो! रोगनिवारक यज्ञ में रोगों को नष्ट करने वाले, सत्यधर्मा, अग्निदेव की स्तुति आप सब भाव से करें ॥१२॥

३३. शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१३॥

जल, सुख शान्ति प्रदान करने वाला एवं अभीष्ट प्रदान करने वाला है। यह जल पीने योग्य, कल्याणकारी एवं सुखकारी हो ॥१३॥

[ऋग्वेद मन्त्र में यहाँ कल्याणकारी जल की कामना की गयी है, क्योंकि जल की उत्पत्ति अग्नि से ही मानी गयी है। (ऑक्सीजन, हाइड्रोजन तथा कार्बन डाईऑक्साइड हाइड्रोजन + ऑक्सीजन = जल + ऊर्जा) अस्तु, अग्नि के संदर्भ में जल की कामना यहाँ उचित ही है।]

३४. कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते। गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४॥

(ऐसा ही है यह प्रश्न।) अग्नि — सत्पालक, आप! किस प्रकार के व्यक्ति की बुद्धि को विशेष रूप से सन्मार्ग पर प्रेरित करते हैं? (उत्तर है) जिनकी वाणी ज्ञान का बोध कराने वाली होती है (उन्हें प्रेरित करते हैं) ॥१४॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

॥चतुर्थः खण्डः॥

३५. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥

हम उपासक अपने, सच्चे मित्र की तरह (कल्याण करने वाले) अग्निदेव की वन्दना करते हैं। हे उद्गातागण! आप भी प्रत्येक स्तुति एवं यज्ञकर्म में उन कल्याणकारी अग्निदेव की स्तुति करें ॥१॥

३६. पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२॥

अन्नादि के अधिपति वासदाता हे अग्ने! आप प्रथम स्तुति से हमारी रक्षा करें, द्वितीय स्तुति से हमारा संरक्षण करें, तृतीय स्तुति से भी संरक्षण दें। हे ऐश्वर्यों के स्वामी! चतुर्थ स्तुति से आप हम सबका पालन करें ॥२॥

[वाणी का विशेष अर्थ यहाँ वेद लिया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद चार प्रकार की वाणियाँ हैं। चारों वेद भी इन अग्निदेव के रूप में संस्थित हैं। इसलिए यहाँ उन चारों की स्तुतियों का उल्लेख किया गया है।]

३७. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥३॥

हे महती ज्वालाओं से युक्त तेजस्वी अग्ने! पवित्रकर्ता एवं सर्वश्रेष्ठ तरुण आप महान् हैं। आप अपने तेज से भरद्वाज के लिए प्रकाशित होकर ऐश्वर्य से युक्त हों ॥३॥

३८. त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४॥

हे अग्निदेव! आपको अग्निकर्म करने वाले विद्वान्, धन का वितरण करने वाले, प्रजा की रक्षा करने वाले, गौओं के पालक (अर्थात् बड़े वर्गों के अधिपति) आपके कृपापात्र बनें ॥४॥

३९. अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥५॥

हे स्तुत्य अग्निदेव! आप प्रजा के रक्षक और राक्षसों को तपाने वाले तथा गृहस्थ के लोगों को मोक्ष देने वाले हैं। आप घरों के स्वामी, सदा घरों में विद्यमान रहने वाले हैं। हे द्युलोक के रक्षक! आप महान् हैं ॥५॥

४०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥६॥

हे अमर अग्ने! उषाकाल में विविध सामर्थ्य प्रदान होता है, वह देवों द्वारा सेवित धन हविदाता को प्रदान करें। हे सर्वज्ञ! उषाकाल में जागृत हुए देवताओं को भी यहाँ लावें ॥६॥

४१. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

हे सबके आश्रयदाता अग्निदेव! आपकी शक्ति अद्भुत है, अगाध है। आप अपनी रक्षण-क्षमता से वैभव देने में समर्थ हैं। आप सम्पूर्ण धन के स्वामी हैं, हमारी संतानों को भी सुखदायक धन प्रदान कीजिए ॥७॥

४१. त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८॥

हे ऋतधारक अग्ने! आप अपने गुणगानों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। आप सत्य रूप तथा ज्ञानी भी हैं। हे तेजस्विता के प्रतीक अग्निदेव, आपके प्रज्वलित होने पर ज्ञानी, श्रेष्ठ ऋत्विग्गण आपकी स्तुति करते हैं तथा सेवा के लिए तैयार रहते हैं ॥८॥

४२. आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९॥

हे पवित्र करने वाले अग्ने! आप अन्न की वृद्धि करते हैं। हमें आप प्रशंसनीय धन प्रदान करें, जो उत्तम नीति से प्राप्त करने के योग्य हुआ हो तथा हमारे लिए यशस्वी हो ॥९॥

४३. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥

याजकों को धन आदि के रूप में प्रचुर वैभव देकर आनन्दित करने वाले अग्निदेव की पहले स्तुति करते हैं, जैसे उन्हें सर्वप्रथम सोम का पात्र समर्पित किया जाता है ॥१०॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

४४. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

अन्न उत्पन्न करने वाले, शक्ति के पौत्र, प्रेम देने वाले, ज्ञान के प्रेरक, अविनाशी, यज्ञ के आधार, ज्ञानरूप, समस्त अग्नि देव का आवाहन करते हुए हम उनकी वन्दना करते हैं ॥१॥

४५. शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥२॥

हे अग्ने! याजकगण वनों, जल के गर्भ में तथा भूमि में उत्पन्न आपको प्रज्वलित करते हैं। याज्ञिक आपको श्रद्धापूर्वक समिधाओं द्वारा प्रज्वलित करते हैं। हे अग्निदेव! आप आलस्यरहित होकर हव्य को देवताओं तक पहुँचाते हैं और स्वयं भी उनके मध्य सुशोभित होते हैं ॥२॥

४६. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३॥

हमें मार्ग के ज्ञाता अग्निदेव प्रकट हो गये हैं, जिनके माध्यम से यज्ञ के नियम पूरे किये जाते हैं। उत्तम मार्ग से प्रकट हुए, श्रेष्ठों के वर्धक अग्निदेव हमारी स्तुतियों को प्राप्त करें ॥३॥

४७. अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४॥

हे अग्निदेव ! आपको सर्वप्रथम उत्तम स्थापक यज्ञ (अग्न्याधेय यज्ञ) में स्थापित किया जाता है । यज्ञस्थल में सोम कूटने के पत्थर एवं आसन स्थापित किये जाते हैं, इसलिए वे [illegible] । हे बलवान् अग्ने ! हे देव ! वेद मंत्रों के द्वारा आपके श्रेष्ठ रूप की कामना करते हैं ॥४॥

४९. अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५॥

हे स्तोतागणो ! विस्तृत और विकराल ज्वाला वाले अग्निदेव की स्तुति करो । तदनन्तर, इन [illegible] अग्निदेव से ऋत्विजों द्वारा धन तथा श्रेष्ठ [illegible] प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते हैं ॥५॥

५०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरे ॥६॥

हे प्रार्थना पर ध्यान देने वाले अग्ने ! आप हमारी स्तुति स्वीकार करें । दिव्य अग्नि के साथ समान गति से चलने वाले मित्र और अर्यमा आदि देवगण भी प्रातःकालीन यज्ञ में (आकर) आसीन हों ॥६॥

५१. प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७॥

इन्द्र के समतुल्य शक्तिशाली अग्निदेव, दिवोदास (दिव्य [illegible]) के लिए पृथ्वी पर प्रकट हुए । अपने प्रवीण कार्यों के परिणाम स्वरूप वे (दिवोदास) स्वर्ग के अधिकारी बने ॥७॥

५२. अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

हे श्रेष्ठ यज्ञ के सम्पादक अग्ने ! पृथ्वी एवं द्युलोक से आप हमारी स्तुति का विस्तार करें और अपनी तेजस्विता से हमारे उपभोगियों को श्रेष्ठ आहार करें ॥८॥

५३. कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥९॥

हे अग्ने ! आप वनों के पुत्र जलों की इच्छा (ऊर्ध्वगमन) करने में समर्थ हैं । अतः आपको [illegible] जो जल आदि [illegible] को [illegible] उसमें [illegible] नहीं [illegible], क्योंकि आप अदृश्य होकर भी उसमें विद्यमान हैं ॥९॥

५४. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०॥

हे अग्ने ! मनुष्य प्राचीन काल से ही आपको धारण करते हैं । अनादिकाल से ही मनुष्य जाति के लिये आपकी ज्योति प्रकाशित है । आप [illegible], [illegible] उत्पन्न होते हैं । [illegible] प्रकट होता है । सभी मनुष्य आपको नमन करते हैं ॥१०॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः॥

५५. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते॥१॥

[illegible] ॥१॥

५६. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥२॥

[illegible] ॥२॥

५७. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥३॥

हे अग्निदेव! [illegible] ॥३॥

५८. प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्॥४॥

हे [illegible] अग्निदेव! [illegible] ॥४॥

५९. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते॥५॥

[illegible] ॥५॥

६०. अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥६॥

ये अग्निदेव [illegible] ॥६॥

६१. त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम्॥७॥

हे अग्ने! [illegible] ॥७॥

६२. सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।
अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम्॥८॥

हे देवत्वरूपो! उत्तम ऐश्वर्य युक्त, निवास, [illegible] अग्निदेव! [illegible] अपने संरक्षण के लिए [illegible] हम सभी [illegible] स्तुति [illegible] करते हैं ॥१०॥

[illegible]

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥ सप्तमः खण्डः ॥

६३. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
इळस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम्॥१॥

हे ऋत्विजो! [illegible] गृहपति अग्नि की [illegible] ॥१॥

६४. चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे।
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं३ चरन्॥२॥

[illegible] ॥२॥

६५. इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे॥३॥

हे [illegible] ॥३॥

[illegible]

६६. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥४॥

[illegible] ॥४॥

[illegible]

६७. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥५॥

[illegible] ॥५॥

६८. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥६॥

पर्वत की ऊँचाई से जिस प्रकार जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार विद्वान् याजक अपनी स्तुतियों से हे अग्ने ! आपको प्रकट करते हैं । जिस प्रकार घोड़े संग्राम में अथवा विजय को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हमारी उच्चारित स्तुतियों से आप वाजवान् बनते हैं ॥६॥

६९. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७॥

यज्ञ के अधिपति रुद्र रूप, द्युलोक एवं पृथ्वीलोक में वास्तविक यज्ञ सम्पन्न करने वाले स्वर्णिम प्रकाश युक्त अग्नि को, अपनी (रक्षा) के लिए विद्युत् के पहले ओजस्विता पूर्वक प्रकट किया ॥७॥

७०. इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥८॥

यह (हिंसा-रहित) [illegible] अग्नि [illegible] घृत द्वारा आहुति प्रदान की जाती है । सभी मनुष्य (याजकगण) [illegible] हव्य से पूजित करते हैं । यह (ओजस्वी) अग्नि उषा काल के पूर्व (जन जागरण के पूर्व) [illegible] प्रज्वलित हुई है ॥८॥

[ऋग्वेद में इस मन्त्र का [illegible] है ।]

७१. प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥९॥

प्रज्वलित अग्निदेव अन्तरिक्ष को [illegible] द्युलोक और पृथ्वी के बीच अपने [illegible] प्रकट करते हैं (विद्युत् गर्जन के रूप में) और जल (मेघों) के बीच यह वर्धमान होते हैं ॥९॥

७२. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१०॥

प्रशंसनीय, गतिमान्, दूर से दिखाई देने वाले, गृहपति अग्नि को याजकों ने अरणि-मन्थन द्वारा प्रकट किया ॥१०॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

॥ अष्टमः खण्डः ॥

७३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥

याजकों की समिधाओं (काष्ठ) से प्रज्वलित, [illegible] अग्निदेव की ज्वालाएँ, फैली हुई वृक्ष की शाखाओं के समान, अन्तरिक्ष में अपनी किरणों से द्युलोक तक फैल जाती हैं ॥१॥

७४. प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥२॥

असुरघ्न, ज्ञानियों के पोषक, [illegible] के आश्रय को [illegible] करने वाले, [illegible], स्तुति करने वालों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, [illegible] रखने वाले, [illegible] से युक्त, [illegible] अग्निदेव की हे मनुष्यो ! स्तुति करो ॥२॥

७५. शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३॥

[illegible] हे पोषणकर्त्ता पूषन्‌देव ! [illegible] ॥३॥

७६. इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४॥

हे अग्निदेव ! आपकी सुमति [illegible] हम दोनों के लिए [illegible] ॥४॥

७७. प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५॥

[illegible] ॥५॥

७८. प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥६॥

मनुष्यों के [illegible] इन्द्रदेव के [illegible] ॥६॥

७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥७॥

[illegible] अग्नि, गर्भिणी के पेट में सुरक्षित गर्भ की तरह अरणियों में [illegible] है । यज्ञ के लिए जागरूक रहने वाले [illegible] ॥७॥

८०. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥

हे अग्ने ! आपको [illegible] ॥८॥

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

* * *

॥नवमः खण्डः॥

८१. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

हे निरंतर गति वाले अग्ने! आप ओजस्वितायुक्त तेज धारण करने वाली सम्पदा हमें प्रदान करें। हे देव! हमें प्रशंसनीय धन और शक्ति-प्राप्ति के मार्ग का दिग्दर्शन कराएँ ॥१॥

८२. यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२॥

वीर पुत्र की प्राप्ति के लिए मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करें और सदा हव्यादि पदार्थों का प्रयोग करके, दिव्य सुख प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करें ॥२॥

८३. त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सच्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥

प्रदीप्त होने के पश्चात् अग्नि का श्वेत धूम, अंतरिक्ष में फैलता हुआ अनुभव होता है। हे पावन अग्ने! सूर्य के समान, स्तुति के प्रभाव से आप प्रकाशित होते हैं ॥३॥

८४. त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४॥

सर्वद्रष्टा, सभी को आश्रय प्रदान करने वाले, सूर्य के समान (तेजस्वी) अग्निदेव, आप सम्पिपालक अन्न का प्रदान करके, हमें प्रचुर मात्रा में परिपुष्ट करते हैं ॥४॥

८५. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥५॥

प्रातः जिन अग्नि को, सभी मनुष्यों के घरों में अतिथि स्वरूप, बहुत स्नेहपूर्ण, अमरत्वशील अग्नि में सभी लोग हविष्यान्नों से आहुति प्रदान करते हैं ॥५॥

८६. यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥६॥

अग्निदेव की श्रेष्ठ प्रभावशाली स्तोत्रों से स्तुति की जाती है। हे दीप्तिमान् अग्निदेव, हमें अपरिमित धन-धान्य एवं अन्न प्रदान करने की कृपा करें ॥६॥

८७. विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

अन्न एवं बल चाहने वाले हे मनुष्यो! सर्वप्रिय एवं सर्वपूज्य अग्निदेव की स्तुति करो। हम (ऋत्विग्गण) भी उन (प्रजाओं) अग्निदेव की पूजनात्मक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥७॥

८८. बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८॥

पापनाशक मित्र के समान, तेजस्वी अग्निदेव की, स्तुति के लिए उनके सम्मुख स्थापित करके, उनमें यज्ञ-काल में हविष्यान्न की आहुति प्रदान करते हैं ॥८॥

८९. अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्।
य स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥९॥

शत्रुहन्ता ऋत्विजों के (हितार्थ) लिए, सर्वश्रेष्ठ ज्वालाओं वाले, बृहत् तेजस्वी, श्रेष्ठ मनुष्यों के लिए हितकारी, अग्निदेव का हम वरण (उपासना) करते हैं ॥९॥

९०. जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥

जिन अग्निदेव के पिता कश्यप, माता श्रद्धा एवं स्तोता मनु हैं, वे उत्तम धर्मों के द्वारा सामर्थ्य मिलने पर यज्ञ में प्रकट होते हैं ॥१०॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

* * *

॥ दशमः खण्डः ॥

९१. सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥१॥

हम (स्तोतागण) श्रेष्ठ स्तुति के माध्यम से राजा सोम, वरुण, अग्नि, आदित्य, सूर्य, ब्रह्मणस्पति, विष्णु और बृहस्पति का आवाहन करते हैं ॥१॥

९२. इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन्।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥२॥

अंगिरा ऋषि ने जिस मार्ग से प्रकाश के द्युलोक की प्राप्ति की और (उसी प्रकार से) उनके प्रजा (भी) प्रकाशित (प्रतिष्ठित) हो गये ॥२॥

९३. राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि।
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

हे अग्ने! महान् ऐश्वर्य देने के लिए हम आपको समिधाओं से प्रदीप्त करते हैं। (आपकी) महान् (सामर्थ्य) से यज्ञ के लिए पृथ्वी एवं द्युलोक की स्तुति करें ॥३॥

९४. दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत्।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

चक्र (पहिया) को धारण करने वाली धुरी के समान, सम्पूर्ण काव्यों (कर्मों) के द्वारा हम अग्निदेव के निमित्त (उनकी प्रसन्नता के लिए) यज्ञ करते हैं ॥४॥

९५. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि। यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥५॥

अपने तेज (प्रताप) से आक्रमणकारी शत्रुओं (राक्षसों) को नष्ट करने वाले हे अग्ने! इन असुरों के बल एवं पराक्रम को आप पूर्णतया विनष्ट कर दें ॥५॥

९६. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥१० ॥

वसु, रुद्र और आदित्य (आदि) देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ करने वाले हे अग्निदेव ! आप घृताहुति से श्रेष्ठ यज्ञ सम्पन्न करने वाले मनु सन्तानों (मनुष्यों) का (अनुष्ठानादि द्वारा) सत्कार करें ॥१० ॥

॥इति दशमः खण्डः ॥

* * *

॥एकादशः खण्डः ॥

९७. पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१ ॥

महान् सर्वाग्निदानी की शरण में आये हुए, (हम याजक) ... के समान, हम अग्निदेव के निमित्त आहुति प्रदान करते हुए, स्तुतिगान करते हैं ॥१ ॥

९८. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! ज्ञानवानों के तेज को धारण करने वाले, विशाल ज्योति देवों का आवाहन करने वाले, अग्निदेव की श्रेष्ठ एवं प्राचीन स्तोत्रों से स्तुति करो ॥२ ॥

९९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३ ॥

(अरणिमन्थन रूप) बल से उत्पन्न हुए, ज्ञान को उत्पन्न करने वाले एवं गौओं के समान अन्न (पोषक पदार्थों) के अधिपति हे अग्ने ! आप हमें प्रचुर धन-वैभव प्रदान करें ॥३ ॥

१००. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥४ ॥

यज्ञ में पूजनीय, देवों को बुलाने वाले, सहनशील हे अग्निदेव ! आप याजकों एवं देवों के (कल्याण हेतु) यज्ञ करते हुए पूजनीय होते हैं ॥४ ॥

१०१. जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥५ ॥

सात माताओं (ऋत्विजों) से उत्पन्न, (धरती को) धारण करने वाले ... हेतु ... ये अग्निदेव धन-ऐश्वर्यों को जानने वाले हैं ॥५ ॥

[प्रस्तुत मन्त्र में सात माताओं की ओर संकेत है । ... सात छन्दों से है, जो गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती के रूप में प्रसिद्ध होते हैं ।]

१०२. उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् । सा शंताता मयस्करदप स्रिधः ॥६ ॥

हे देवों की माता अदिति ! तुम रक्षा-साधनों सहित आकर हमारे समस्त कार्यों तथा शत्रुओं का हनन करो और हमें सुख-शान्ति प्रदान करो ॥६ ॥

१०३. ईडिष्वा हि प्रतीव्याँ३ यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥७॥

हे स्तोताओ ! धूम्रवाले अत्यन्त तेजयुक्त, गतिशील पूज्य वाले, सर्वज्ञ अग्निदेव की अर्चना करो ॥७॥

१०४. न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८॥

अग्निदेव को हविष्यान्न की आहुति प्रदान करने वाले यजमान पर, किसी भी दुष्ट की माया (छल-कपट) का प्रभाव नहीं पड़ता ॥८॥

१०५. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९॥

हे सत्पालक अग्निदेव ! आप पापी शत्रुओं एवं दुष्ट चोरों को दूर हटाते हुए, हमारे श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग को सुगम बनाएँ ॥९॥

१०६. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥

हे प्रजापालक अग्ने ! हमारे इस नूतन स्तोत्र को सुनकर स्वीकार करते हुए आप, छली-कपटी दुष्टों को अपने प्रखर तेज से भस्म कर दें ॥१०॥

॥इति एकादशः खण्डः ॥

* * *

॥द्वादशः खण्डः ॥

१०७. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

हे स्तोताओ ! आप श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा अग्निदेव की स्तुति करें। वे महान्, सत्य और यज्ञ के पालक, महान्, तेजस्वी और दाता हैं ॥१॥

१०८. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप जिनके मित्र बनकर संरक्षण करते हैं, वे स्तोतागण आप से श्रेष्ठ संतान, अन्न, बल आदि समृद्धि प्राप्त करते हैं ॥२॥

१०९. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३॥

हे स्तोताओ ! स्वर्ग के लिए हवि पहुँचाने वाले अग्निदेव की स्तुति करो। याजकगण स्तुति करते हैं और देवताओं को हव्यादि द्रव्य पहुँचाते हैं ॥३॥

११०. मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः ॥४॥

हमारे प्रिय अतिथि स्वरूप अग्निदेव को मन से दूर मत ले जाओ। वे देवताओं को बुलाने वाले, याजनशील, एवं अनेकों मनुष्यों द्वारा स्तुत्य हैं ॥४॥

१११. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥

हवियों से संतुष्ट हुए हे अग्निदेव ! आप हमारे लिए मंगलकारी हों। हे ऐश्वर्यशाली ! हमें कल्याणकारी धन प्राप्त हो और, स्तुतियाँ हमारे लिए मंगलमयी हों ॥५॥

११२. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥

हे देवाधिदेव अग्ने ! आप श्रेष्ठ याजिक हैं। इस यज्ञ को भलीप्रकार सम्पन्न करने वाले हैं। हम आपकी स्तुति करते हैं ॥६॥

११३. तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्। मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥

हे अग्ने ! आप हमें अक्षय तेज प्रदान करें, जिससे यज्ञ में आने वाले [illegible] दुष्टों को [illegible] किया जा सके। साथ ही आप दुर्बुद्धि-युक्त जनों के क्रोध को भी दूर करें ॥७॥

११४. यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥

यजमानों के रक्षक, हविष्यान्न से अग्निदेव भली प्रकार प्रसन्न होकर, याजकों के घरों में प्रतिष्ठित होते तथा सभी दुष्ट-दुराचारियों का अपने प्रभाव से विनाश करते हैं ॥८॥

॥इति द्वादशः खण्डः॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द विवरण—

ऋषि — भरद्वाज बार्हस्पत्य १, ३, ४, ७, ९, २३, २०, ३६, ३८, ७०, ८२-८४ । मेधातिथि काण्व २, ६८, ६३ । उशना काव्य ५, ३४ । सुदीति, पुरुमीढ आंगिरस ६, ४९ । वत्स काण्व—८, १० । वामदेव १८, ८२ । आयुङ्क्ष्वाहि ११ । वामदेव गौतम १३, २३, ३०, ६१ । प्रयोग भार्गव १४, ३८, ५५, ७८, १०० । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १७ । शुनःशेप आजीगर्ति [illegible], २६, ५० । [illegible] १४, २४, ४८, ३४, ४५, ६३, ७४, ७७, ७८ । [illegible] १७ । [illegible] १९, २१, २९ । [illegible] ३१, ३४, ४०, ४१ । [illegible] २४ । [illegible] ३५, ३९, ४२-४३, ४८ । [illegible] ४४, ४७, ६१, ८८, १०८-१०९, ११३ । [illegible] ५१ । [illegible] ५२ । [illegible] ५३, ५२, ५६, ५७, ६८, १०० । [illegible] ६४, ६२-६७, ६९ । [illegible] ६४ । [illegible] ६३ । [illegible] ६४ । [illegible] ६५ । [illegible] ६६ । [illegible] ७६ । [illegible] ७३ । [illegible] ७२, ७७ । [illegible] ७४, ७५ । [illegible] ८१ । [illegible] ८५ । [illegible] ८६ । [illegible] ८८ । [illegible] ९० । [illegible] ९१ । [illegible] ९२-९६ । [illegible] ९४ । [illegible] ९७ । [illegible] ९९ । [illegible] १०२ । [illegible] १०३ । [illegible] १०३-१०४, १०६, ११२ । [illegible] १०५ । [illegible] ११० ।

देवता— अग्नि १-५३, ५६-५९, ६२-७०, ७३-९९, १०२-१०४, १०६-११४ । [illegible] ५६ । [illegible] ५७ । [illegible] ५९ । [illegible] ६० । [illegible] ९६, १०० । [illegible] ९९ । [illegible] १०१ । [illegible] १०५ ।

छन्द — गायत्री १-४४ । बृहती—४५-५४ । [illegible] त्रिष्टुप् ६६, ७४, ९०-९२, ९७-१०० । [illegible] १४, १८ अनुष्टुप् ९२-९६ । [illegible] ११४ ।

॥इति आग्नेयपर्वणि प्रथमोऽध्यायः॥

॥ ऐन्द्र पर्व ॥

॥अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

११५. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! सोमरस तैयार हो जाने के पश्चात् अनेक लोग जिनकी स्तुति करते हैं, उन बलवान् इन्द्रदेव के लिए, एक साथ सब मिलकर स्तुति करो । इससे इन्द्रदेव को वैसा ही सुख प्राप्त होगा, जैसे गाय को घास से मिलता है ॥१ ॥

११६. यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥२ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके लिए, अत्यन्त तेजस्वी, अभिषुत किया हुआ सोमरस तैयार है । उसको पान करके आप तृप्त हों और हमें भी आनन्दित करें ॥२ ॥

११७. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥३ ॥

सूर्य रश्मियाँ यज्ञ के लिए, उस पृथ्वी को (अन्नादि उत्पन्न करके) यज्ञीय रूप प्रदान करने वाली हैं, जिसके दोनों ओर स्वर्णिम हैं ॥३ ॥

[पृथ्वी के दोनों ध्रुवों पर चुम्बकीय रेखाओं का उल्लेख स्पष्ट है, चुम्बकीय ध्रुवों के कारण वहाँ प्रकाश दिखाई देता है ।]

११८. अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४ ॥

हे स्तुतिकर्ता ऋत्विज ! आप घोड़ों, गौओं और इन्द्रदेव के आवास (स्वर्ग) की प्राप्ति के लिए, पर्याप्त स्तोत्रों का गान करें ॥४ ॥

११९. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥५ ॥

जो वृत्रहन्ता हैं, हम स्तोता उनकी प्रशंसा और स्तुति करते हैं, वे दाता इन्द्रदेव हमें धन-धान्य से पूर्ण करें ॥५ ॥

१२०. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं सन्वृषन्वृषेदसि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् बलशाली हैं । अपने साहस, बल और सामर्थ्य के कारण सबसे विशिष्ट श्रेष्ठ हुए हैं । श्रेष्ठ फलों की वर्षा करने में आप समर्थ हैं ॥६ ॥

१२१. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥७ ॥

जिस यज्ञ शक्ति ने पृथ्वी को आकाश में स्थापित कर, घुमाते हुए रखा है, उस यज्ञ ने इन्द्रदेव का प्रवर्धन भी किया है ॥७ ॥

[पृथ्वी का आकाश में घूमना सन्तुलित कक्षा के लिये गति होना ही चाहिए है, [illegible]]

१२२. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप सारे ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, वैसा ही मैं बन जाऊं, तो मेरी स्तुति करने वाले भी गौ आदि धन-धान्य से युक्त हो जाएं ॥८ ॥

[यहाँ इन्द्रदेव जैसी [illegible] ।]

१२३. पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥९॥

हे स्तोता-जनों ! सोम लेकर आओ । स्तुत्य, शूरवीर इन्द्रदेव के लिए आनन्ददायी सोम अर्पित करो ॥९॥

१२४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१०॥

हे निवास प्रदाता इन्द्रदेव ! आप अभिषुत सोम को ग्रहण करें, जिससे आप तृप्त हों । आपको आनन्दित करने के लिए यह सोम अर्पित है ॥१०॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१२५. उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

जगत् निवासक, ऐश्वर्य-सम्पन्न, कामनावर्षक, मनुष्य मात्र के हितैषी और (दुष्टों पर) अस्त्रों से प्रहार करने वाले के सम्मुख सूर्य (देव) उदित होते हैं ॥१॥

१२६. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥२॥

हे वृत्र के संहारक, अभी उदय हुए (सूर्य रूप) इन्द्रदेव ! (आपके प्रकाशित होने तक) जो कुछ भी है, सब आपके अधिकार में है ॥२॥

१२७. य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥३॥

शत्रुओं के द्वारा तुर्वश और यदु (राजाओं) को बहुत दूर फेंका गया था । वहाँ से इन्द्रदेव ही उन्हें उत्तम नीति से सकुशल लौटा कर लाये थे । वे युवा (सर्वशक्तिमान्) इन्द्रदेव हमारे मित्र हैं ॥३॥

१२८. मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! सर्वत्र विचरणशील, भय और कष्ट पैदा करने वाले (राक्षस), रात्रि के समय हमारे निकट न आ सकें । (यदि वे पास में आएँ भी तो) आपके अनुग्रह से वे नष्ट हो जाएँ ॥४॥

१२९. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे जीवन संरक्षण के लिये तथा शत्रुओं को पराभूत करने के निमित्त, हमें धन-धान्य से पूर्ण करें ॥५॥

१३०. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६॥

हम छोटे-बड़े सभी (जीवन) संग्रामों में, वज्रयुक्त, सहायक, बलशाली इन्द्रदेव को सहायतार्थ बुलाते हैं ॥६॥

१३१. अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥७॥

कद्रु के द्वारा निष्पन्न सोमरस का इन्द्रदेव ने पान किया और हजारों भुजा वाले बलवान् शत्रु का संहार किया, जिससे इन्द्रदेव का पराक्रम प्रकट हुआ ॥७॥

१३२. वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥८॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! हम आपकी कामना करते हुए आपका स्तवन करते हैं । हे सबको आश्रय देने वाले ! आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥८॥

१३३. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥९॥

श्रेष्ठ अग्नि को प्रदीप्त करने वाले याज्ञिकों के लिए, जिन युवा इन्द्रदेव ... हैं। वे (याज्ञिक) उनके लिए कुश आसन बिछाते हैं ॥९॥

१३४. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः। वसु स्पार्हं तदा भर ॥१०॥

आप विरुद्ध ... द्वेष करने वाले को नष्ट करें, हिंसा करने वाले शत्रुओं को पराजित करें और ... धन हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें ॥१०॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥ तृतीयः खण्डः ॥

१३५. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥१॥

मरुद्गणों के हाथों में स्थित चाबुकों के ... आवाजें हम सुन रहे हैं। ... वे ... शक्ति ... करते हैं ॥१॥

१३६. इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः। पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥२॥

जिस प्रकार पशुपालक हाथ में घास लेकर स्नेहपूर्वक पशुओं की ओर देखता है, उसी प्रकार आपको तृप्त करने के लिए याजक सोमरस हाथ में लेकर आपकी ओर देखते रहते हैं ॥२॥

१३७. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः ॥३॥

उपासक प्रजाएँ (मनुष्य) उन इन्द्रदेव के प्रति नम्रतापूर्वक उसी प्रकार समर्पित होती हैं, जैसे कि सब नदियाँ समुद्र में मिलने के लिए जा रही हैं ॥३॥

१३८. देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥४॥

हे देवगण! आपका संरक्षण हमारे लिए ... है। ... कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपके ... संरक्षण को हम स्वीकार करते हैं ॥४॥

१३९. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥५॥

हे ब्रह्मणस्पते! सोमयज्ञ करने वाले, उशिज के पुत्र कक्षीवान् को ... प्रदान करें ॥५॥

१४०. बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः। शृणोतु शक्र आशिषम् ॥६॥

जिन देव के लिए ... में लोग ... सोमरस तैयार करते हैं, जो हमारी कामनाओं के ज्ञाता हैं, युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं। वे शक्तिमान् ... हमारी स्तुतियों को ध्यान से सुनें ॥६॥

१४१. अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥७॥

हे सवितादेव! आप आज हमें ... ऐश्वर्य प्रदान करें। दुःस्वप्नों की तरह दरिद्रता को हमसे दूर करें ॥७॥

१४२. क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः। ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥८॥

युवा, ... वाले एवं किसी के सामने न झुकने वाले, वे इन्द्र (...) इस समय कहाँ हैं? कौन ब्राह्मण उनका पूजन करता है? ॥८॥

१४३. उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत ॥९॥

[पिछले मंत्र १४२ में दिये गये प्रश्न का उत्तर यहाँ दिया गया है।] (कण्वगण) पर्वतों की घाटियों (एकान्त स्थानों) एवं नदियों के संगम, पवित्र स्थलों पर ध्यानपूर्वक ध्यान के द्वारा सत्पुरुष (कण्वगण भी) आराधना करते हैं और वहीं उन्हें इन्द्र की प्राप्ति होती है ॥९॥

१४४. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः। नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१०॥

मनुष्यों के अधीश्वर, प्रशंसनीय नायक, स्तुति किये जाने योग्य, शत्रुजयी श्रेष्ठ, उन महान् इन्द्रदेव की स्तुति करो ॥१०॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१४५. अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः। इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥१॥

मुकुटधारी इन्द्रदेव ने, देवताओं के लिए, हवि देने में निपुण याज्ञिकों द्वारा जौ के सत्तू और दूध से मिश्रित सोमरस रूपी अन्न का पान किया ॥१॥

१४६. इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः। गावो वत्सं न धेनवः ॥२॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं, वैसे ही हमारी वाणियाँ आपके निमित्त स्तवन करती हैं ॥२॥

१४७. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

ऋत्विजों की मान्यता के अनुसार रात्रि में सूर्य के छिप जाने पर जो प्रकाश की पूर्ति करने वाले सूर्य का छिपा तेज, चन्द्रमण्डल में दृष्टिगोचर होता है ॥३॥

१४८. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः। तत्र पूषाभुवत्सचा ॥४॥

जब महानतम इन्द्रदेव, कल्याणकारी वृष्टि के रूप में जल को प्रवाहित करते हैं, तब पोषण करने में समर्थ (पूषा) भी उनके सहयोगी होते हैं ॥४॥

[जो कि जल में पोषक तत्व संयुक्त हो जाते हैं]

१४९. गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्। युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५॥

अन्न सम्पन्न, मरुतों के साथ अभिलाषा के पालन में जुटी हुई, अन्नादि उत्पन्न करने की इच्छा रखने वाली पृथ्वी माता दुग्ध (सोम) पान करती है ॥५॥

१५०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते। उप नो हरिभिः सुतम् ॥६॥

हे सोमपालक इन्द्रदेव! अपने श्रेष्ठ घोड़ों के द्वारा हमारे सोमयज्ञ में आप यहाँ पधारें ॥६॥

१५१. इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे। अच्छावभृथमोजसा ॥७॥

इन्द्रदेव की प्रशंसा करने वाले याज्ञिकगण अपनी शक्ति से हमारे यज्ञ में सफलतापूर्वक यज्ञ की समाप्ति पर होने वाला स्नान होने तक आहुतियाँ देते हैं ॥७॥

१५२. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह। अहं सूर्य इवाजनि ॥८॥

हमने (याजक) सत्यरूपी यज्ञरूपी इन्द्रदेव की बुद्धि को जाना और आशीर्वाद प्राप्त किया है। इससे हम सूर्यदेव के सदृश तेज से युक्त हो गये हैं ॥८॥

१५३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९॥

जिन (इन्द्र) की सहायता से हम अन्न-धन से परिपूर्ण होकर आनन्दित होते हैं, उन इन्द्रदेव के प्रभाव से युक्त होकर हमारी गौएँ दुग्ध आदि देकर हमें अधिक सामर्थ्य देने वाली बन जाती हैं ॥९॥

१५४. सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम्। देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

देवताओं के रथ में स्थापित सोम और पूषादेव मनुष्यमात्र को प्रेरणा देने वाले हैं ॥१०॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः॥

१५५. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

हे याजको! सर्वसंहारक, सैकड़ों यज्ञों को सम्पन्न करने वाले, मनुष्यों में श्रेष्ठ, सोमरस पीने वाले इन्द्रदेव की विशेष स्तुतियों से प्रार्थना करो ॥१॥

१५६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने ॥२॥

हे साथियो! हरित वर्ण घोड़ों के स्वामी, सोमपायी इन्द्र को आनन्दप्रद करने वाले स्तोत्रों का गान करो ॥२॥

१५७. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥

हे इन्द्रदेव! आपसे मित्रता करने के इच्छुक, आपके पास रहकर आपकी प्रशंसा तथा अर्चना करने वाले, स्तुतियों द्वारा आपकी प्रशंसा करते हैं ॥३॥

१५८. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४॥

आनन्दमयी प्रकृति वाले इन्द्रदेव के निमित्त निकाले गये दिव्य सोमरस पर, हम वाणी द्वारा प्रशंसा करें। स्तोतागण, इस पूज्य सोम की अर्चना करें ॥४॥

१५९. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

हे इन्द्रदेव! वेदिका पर रखे गये आसन पर शोधित सोमरस आपके लिए है। आप शीघ्र ही आकर इसका पान करें ॥५॥

१६०. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥६॥

प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को, जिस प्रकार बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिए, सौन्दर्य प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥६॥

१६१. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

हे बलशाली इन्द्रदेव! सोमपान करने के लिए इस सोमयज्ञ में आपके लिये सोमरस समर्पित करते हैं। आप उस हर्षप्रदायक सोमरस का पान करें ॥७॥

१६२. य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

हे सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ! आपके लिए सुत सोमरस (लकड़ी के) चमस पात्रों में भरकर रखा हुआ है । आप इस दिव्य रस का पान करें ॥८॥

१६३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥

समर्थों के पुरुषार्थ में प्रत्येक कार्य के आरंभ में बलशाली इन्द्रदेव का, अपने संरक्षण के लिए मित्रवत् आवाहन करते हैं ॥९॥

१६४. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१०॥

हे याजक मित्रो ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए, प्रशंसा करने हेतु शीघ्र आकर बैठें और इन (इन्द्रदेव) की स्तुति करें ॥१०॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः॥

१६५. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥१॥

हे ऐश्वर्यों के स्वामी स्तुति के योग्य इन्द्रदेव ! ओजपूर्वक निकाले (निचोड़े) गये इस सोमरस का शीघ्रतापूर्वक पान करें ॥१॥

१६६. महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥

इससे वे इन्द्रदेव श्रेष्ठ और महान् हैं । वज्रधारी इन्द्रदेव का बल द्युलोक के समान व्यापक होकर फैले तथा इनके बल की प्रशंसा चतुर्दिक् हो ॥२॥

१६७. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥३॥

महान् भुजाओं वाले हे इन्द्रदेव ! आप हमें अत्यधिक प्रशंसनीय ऐश्वर्य दाहिने हाथ से (सम्मानपूर्वक) प्रदान करें ॥३॥

१६८. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

हे याजको ! गौ पालक, सत्यनिष्ठ, सज्जनों के पालक इन्द्रदेव की यथोचित रूप से स्तुति आदि अर्चना करें, जिससे उनकी कीर्तियों का ज्ञान हो ॥४॥

१६९. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥५॥

नित्य प्रगतिशील इन्द्रदेव ! आप किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों के भेंट करने से, किस प्रकार की पूजा-अर्चना के द्वारा प्रसन्न होकर, आप किन दिव्य शक्तियों सहित हमारी सहायता करेंगे ? ॥५॥

१७०. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥६॥

हे याजको ! अपनी समस्त वाणियों से सज्जित स्तुतियों से, अपने संरक्षण के लिए, शत्रुनाशक इन्द्रदेव का आवाहन करो ॥६॥

१७१. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम् ॥७॥

इन्द्रदेव को प्रिय, कामना करने योग्य [illegible] लोकों का [illegible] उत्कृष्ट, अद्भुत मेधा को हमने प्राप्त किया ॥७॥

१७२. ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः। उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८॥

हे इन्द्रदेव! द्युलोक से नीचे की ओर उन्मुख आपके मार्ग, जिनसे आप सृष्टि का संचालन करते हैं, [illegible] हमारे पास तक पहुँचाते हैं, उन्हीं मार्गों से आप हमारे यज्ञ स्थान में पहुँचें ॥८॥

१७३. भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृडयासि नः ॥९॥

हे शतक्रतु इन्द्रदेव! [illegible] अन्न-धन से [illegible] हमें [illegible] प्रदान करें, क्योंकि आप ही हमें सुखी बनाते हैं ॥९॥

१७४. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः। उत स्वराजो अश्विना ॥१०॥

हमारे द्वारा शोधित यह सोमरस [illegible] इसका पान तेजस्वी मरुद्गण तथा अश्विनीकुमार करते हैं ॥१०॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥ सप्तमः खण्डः ॥

१७५. ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते। वन्वानासः सुवीर्यम् ॥१॥

उत्तम कर्म तथा [illegible] की कामना वाली [illegible] इन्द्रदेव की सेवा करती हैं ॥१॥

१७६. न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि। मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥२॥

हे देवो! वेद मन्त्रों के अनुसार आचरण करने वाले हम याजक, न कोई धर्म विरुद्ध कार्य करते हैं और न ही किसी को कोई हानि पहुँचाते हैं ॥२॥

१७७. दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण। स्तुहि देवं सवितारम् ॥३॥

हे [illegible] ! हे [illegible] साम के स्तोता! [illegible] करने के लिए सविता देवता का स्तवन करें ॥३॥

१७८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४॥

यह [illegible] देने वाली उषा अंतरिक्ष से प्रकाशित होती है। हे (उषा के साथ सहयोगी) अश्विनीकुमारो! हम आपकी बृहत् (विपुल) स्तुति करते हैं ॥४॥

१७९. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥५॥

[illegible] इन्द्रदेव ने दधीचि की हड्डियों से (बने हुए वज्र से) निन्यानबे ([illegible]) वृत्रों का संहार किया ॥५॥

१८०. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा ॥६॥

हे इन्द्रदेव! [illegible] सोमरस से [illegible] आनन्दित होते हैं। आप [illegible] अपनी शक्ति से दुर्जेय शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की [illegible] ॥६॥

१८१. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥७॥

हे वृत्रहन्ता ! आप महान् रक्षक साधनों से विविध कामनाओं सहित हमारे पास आएँ ॥७॥

१८२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८॥

इन्द्रदेव का वह ओज प्रकाशित हो रहा है, जिससे वह द्युलोक से पृथ्वीलोक तक (लपेटे हुए) चमड़े के समान फैला देता है ॥८॥

१८३. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे कबूतर, गर्भिणी कबूतरी के पास बारम्बार जाता है, उसीप्रकार आपके लिए तैयार सोमरस के पास आप आते हैं और हमारी स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनते हैं ॥९॥

१८४. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥

हमारे हृदय के लिए शान्तिदायक तथा सुखदायी औषधियों को वायु प्रवाहित करके हमारे पास पहुँचाएँ । वे औषधियाँ हमें दीर्घजीवी बनाएँ ॥१०॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः ॥

१८५. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । न किः स दभ्यते जनः ॥१॥

जिस याजक को, ज्ञानसम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा देवों का संरक्षण प्राप्त है, उसे कोई भी नहीं दबा सकता ॥१॥

१८६. गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! पहले की तरह हमें उत्तम गौएँ, श्रेष्ठ घोड़े से युक्त रथ तथा ऐश्वर्यपूर्ण धन देने की इच्छा से हमारे पास आएँ ॥२॥

१८७. इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी ये गौएँ यज्ञरूप धन का विस्तार करने वाली हैं । ये गौएँ घृत और दूध प्रदान करती हैं ॥३॥

१८८. अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभुवः ॥४॥

हे बहुत नामों से युक्त, बहु प्रशंसित इन्द्रदेव ! प्रत्येक सोमयाग में जहाँ आप पहुँचते हैं, वहाँ गौओं की कामना वाली बुद्धि से हम आपकी स्तुति करते हैं ॥४॥

१८९. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥

पवित्र बनाने वाली, पोषण देने वाली, बुद्धिमत्तापूर्वक धन देने वाली सरस्वती, ज्ञान और कर्म से हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ ॥५॥

१९०. क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्या भरात् ॥६॥

मनुष्यों में ऐसा कौन है, जो इन इन्द्रदेव को तृप्त कर सके ? वे इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आएँ और हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६॥

१९१. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें। आपके लिए निकाले गये इस सोमरस का पान कर, कुश आसन पर विराजें ॥७॥

१९२. महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ॥८॥

मित्र, वरुण और अर्यमा इन तीनों देवों का संयुक्त तेजस्वी महान् संरक्षण हमें प्राप्त हो; जिससे हम दुष्टों को पराजित करने में समर्थ हों ॥८॥

१९३. त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः। स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९॥

हे ऐश्वर्य के स्वामी, श्रेष्ठ मार्ग पर ले जाने वाले, घोड़ों पर विराजमान इन्द्रदेव ! आपके समीप होकर हम हर तरह से सुरक्षित रहें ॥९॥

॥इति अष्टमः खण्डः॥

* * *

॥ नवमः खण्डः ॥

१९४. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आपको यह सोमरस आनन्द प्रदान करे। हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्य देकर ज्ञान के साथ द्वेष रखने वालों का संहार करें ॥१॥

१९५. गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥२॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! आप हमारे द्वारा शोधित सोमरस पान करें; क्योंकि आप इस आनन्ददायी सोमरस की धाराओं से सिंचित होते हैं। हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से ही हमें यश मिलता है ॥२॥

१९६. सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन्। न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥३॥

(हे ऋत्विजो !) वे इन्द्रदेव सदैव तुम्हारे सहयोगी हैं। वे पूजा के समय तुम्हारी रक्षा को तत्पर रहते हैं। ऐसे वे महान् वीर इन्द्रदेव, हमारे द्वारा पूज्य हैं ॥३॥

१९७. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! नदियों के समुद्र में मिलने की भाँति, सोमरस आपके अन्दर प्रविष्ट होता है। हे इन्द्रदेव ! आपसे अधिक महान् और कोई नहीं है ॥४॥

१९८. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥५॥

सामगान के गायकों ने, गाने वाले योग्य बृहत् साम की स्तुतियों से ऐश्वर्यवान् इन्द्र को प्रसन्न किया है। इसी तरह याज्ञिकों ने भी मंत्र-उच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की अर्चना की है ॥५॥

१९९. इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्। वाजी ददातु वाजिनम् ॥६॥

बलवान् इन्द्रदेव हमें श्रेष्ठ धन दें। ऋभुक्षा एवं ऋभु अन्न प्राप्ति के लिये हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। हे बलशाली ! हमें बलवान् बनायें ॥६॥

२००. इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विलक्षण इन्द्रदेव, महान् भयउत्पादक भय को शीघ्र ही दूर करते एवं उसे समग्र रूप से हटा देते हैं ॥७॥

२०१. इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! जिस प्रकार दुधारू गौएँ बछड़ों के पास स्वयं ही जा पहुँचती हैं, उसीप्रकार प्रत्येक यज्ञ से हमारी स्तुतियाँ आपके पास पहुँचती हैं ॥८॥

२०२. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये। हुवेम वाजसातये ॥९॥

अन्न प्राप्ति की कामना से, अपने कल्याण के लिए मित्रवत् इन्द्र और पूषा देवताओं को स्तुतियों के द्वारा बुलाते हैं ॥९॥

२०३. न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।
न क्येवं यथा त्वम् ॥१०॥

हे वृत्र संहारक इन्द्रदेव ! आपसे अधिक श्रेष्ठ और महान् दूसरा कोई नहीं है। आपके समान अन्य और कोई नहीं है ॥१०॥

॥इति नवमः खण्डः॥

* * *

॥दशमः खण्डः॥

२०४. तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः। समानमु प्र शंसिषम् ॥१॥

(हे स्तोताओ!) लोगों को आपत्तियों से पार करने वाले, शत्रु को पराजित करने वाले, पशुओं से सम्पन्न अन्न का दान करने वाले, सर्वप्रिय इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१॥

२०५. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। सजोषा वृषभं पतिम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति के लिए हमने स्तोत्रों की रचना की है। कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव, इन स्तुतियों ने प्रसन्न आपको आकर्षित किया है, जिसे आपने स्वीकार किया है ॥२॥

२०६. सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा। मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३॥

द्रोह रहित मरुत्, मित्र और अर्यमा जिस साधक के रक्षक हैं, वह साधक निश्चित रूप से श्रेष्ठ यशस्वी होता है ॥३॥

२०७. यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्। वसु स्पार्हं तदा भर ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! शूरवीरों से रक्षित, स्थिर एवं सुदृढ़ आधार वाले अन्य स्थानों पर रखा धन, जो आपके पास है, वह हमें प्रदान करायें ॥४॥

२०८. श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्। आशिषे राधसे महे ॥५॥

तुम्हारे इन महाबल-सम्पन्न प्रसिद्ध वृत्रहन्ता इन्द्र, मनुष्यों के बल को प्रकट करने की कामना से यह महान् धन हमें प्रदान करने के लिए स्तुति देता हूँ ॥५॥

२०९. अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरं शक्र परेमणि ॥६॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आपका यश हमने अनेकों बार सुना है । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप जैसे महान् देवताओं के सान्निध्य में हमारा यश सुरक्षित है ॥६॥

२१०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! धानों और सत्तू से मिश्रित बनाये हुए पूओं की हवि को स्तोत्रगान के साथ हम समर्पित करते हैं, आप प्रातः इसे स्वीकार करें ॥७॥

२११. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥८॥

सभी स्पर्धा करने वालों को पराजित करने के बाद इन्द्रदेव ने नमुचि (रोग) के सिर को जल के झाग (समुद्रफेन ओषधि) से तोड़ा ॥८॥

[इस कथन में एक रहस्य है जिसका अर्थ सूक्ष्म अध्ययन से विद्वज्जनों को खोजने के योग्य है।]

२१२. इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९॥

हे प्रचुर ऐश्वर्यवाले इन्द्रदेव ! ये सोमरस आपके लिये शोधित करके रखे गये हैं । आप इन शुद्ध किये हुए सोमरस का पान करके आनन्दित हों ॥९॥

२१३. तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके लिए यह सोमरस बिछाये हुए आसन पर स्थापित है । हे इन्द्रदेव ! इस पवित्र कुश-आसन पर पधार कर आप सोमरस का पान करें तथा स्तोताओं को प्रसन्न करें ॥१०॥

॥इति दशमः खण्डः॥

* * *

॥ एकादशः खण्डः ॥

२१४. आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥१॥

जिस प्रकार जल की इच्छा वाले खेत में जल सींचते हैं, उसी प्रकार हम बल की कामना वाले साधक उन महान् इन्द्रदेव को सोमरस से सींचते हैं ॥१॥

२१५. अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों बलों से परिपूर्ण, हजारों प्रकार के पोषक अन्नों एवं बलों सहित, आप अन्तरिक्ष से हमारे पास में आयें ॥२॥

२१६. आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥३॥

जन्म लेते ही बाण धारण किये हुए वृत्र को मारने वाले इन्द्रदेव ने अपनी माता से पूछा, कि अन्य महान् और कौन बलों में प्रसिद्ध है? ॥३॥

२१७. बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधः कृण्वन्तमवसे ॥४॥

प्रजा की रक्षा के लिए अपने हाथों को फैलाए, कार्यों में सहित गमन इन्द्रदेव का आवाहन हम उनके संरक्षण के लिए करते हैं ॥४॥

२१८. ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५॥

ज्ञानी देव, मित्र और वरुण हमें सरल नीति-मार्ग पर चलाते हैं । देवों के सहचर अर्यमा हमें सरल मार्ग से गतिशील बनायें ॥५॥

२१९. दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥६॥

दूर से पास आने वाली अरुणाभ उषा, जब दिखाई देती है, [illegible] किरणों को फैलाती है, [illegible] हो जाता है ॥६॥

२२०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥७॥

हे मित्रावरुण ! हमारी गौओं (इन्द्रियों) को घृत (स्नेह) से पुष्ट करें और [illegible] को भी [illegible] (रसों) से सिंचित करें ॥७॥

२२१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥८॥

यज्ञस्थल जाने वाले मरुतों ने कर्तव्य पथ को विस्तृत किया । [illegible] गौवें, घुटने तक पानी में जाने के लिए [illegible] हैं ॥८॥

[[illegible]]

२२२. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥९॥

इस विश्व को भगवान् विष्णु (वामन देव) ने तीन पगों से नापा । इनके धूल भरे पाँव में [illegible] हुआ है ॥९॥

[[illegible]]

॥इति एकादशः खण्डः॥

* * *

॥द्वादशः खण्डः॥

२२३. अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! जो साधक क्रोधित होकर सोमरस निकालता है, उसके पास न जाएँ । [illegible] विधि से जो साधक सोमरस तैयार करता है, उसके यज्ञ में पहुँच कर सोमरस का पान करें ॥१॥

२२४. कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥२॥

इन्द्रदेव के गुणों का गान करने वाले, [illegible] लोगों से भी महान् इन्द्रदेव सम्मान पाते हैं ॥२॥

२२५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥३॥

स्तुति न करने वाले (अश्रद्धावान्) से इन्द्रदेव [illegible] हैं । [illegible] । सामवेद के गायक [illegible] के गायन को भी वे सुनते और जानते हैं ॥३॥

२२६. इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः। हरिवान्त्सुतानां सखा ॥४॥

यज्ञफलदाता, अश्वों से सुशोभित इन्द्रदेव सोमयज्ञ में याजकों के स्तोत्रों से आनन्दित होकर उनके सहायक बनते हैं ॥४॥

२२७. आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः। महाँ इव युवजानिः ॥५॥

पर्याप्त धर्म का पालन करने वाले और युवा की भाँति हे इन्द्रदेव! आप हमारे सोमयज्ञ में यथासमय हविष्यान्न ग्रहण करें। दूसरों के (याजकों) के अन्न पर दृष्टि न डालें ॥५॥

२२८. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः। दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥६॥

हे स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले इन्द्रदेव! जैसे नदी निकलने के लिए जल रोका जाता है, उसी प्रकार तैयार किया हुआ सोमरस प्रदान करने के लिए आपको कब रोकें? ॥६॥

२२९. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु। तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव! ब्रह्म को जानने वाले याजक के पास से, निश्चित ऋतुओं के अनुसार सोमरस का पान करें, क्योंकि आपकी मित्रता अटूट है ॥७॥

२३०. वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः। त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥८॥

हे स्तवन के योग्य इन्द्रदेव! हम आपके स्तोता हैं। हे सोमपायी इन्द्रदेव! आप हमें तुष्टि प्रदान करें ॥८॥

२३१. इन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः। सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९॥

हे इन्द्रदेव! कठिन कार्य में संयुक्त हमारे अंगों में बल प्रदान करें। हे वीर इन्द्रदेव! सब स्थान पर शत्रुओं को पराजित करने वाले बल भी हमें प्रदान करें ॥९॥

२३२. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः। एवा ते राध्यं मनः ॥१०॥

हे बलवान् इन्द्रदेव! आप वीरों से शत्रुओं को पराजित करने वाले, युद्ध में अविचल रहने वाले तथा शूरवीर हैं। आपका मन (संकल्पशक्ति) आराधना के योग्य है ॥१०॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि—[illegible]

देवता – इन्द्र [illegible]

छन्द – गायत्री [illegible]

॥इति द्वितीयोऽध्यायः॥

॥अथ तृतीयोऽध्यायः॥

॥त्रयोदशः खण्डः॥

२३३. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! विश्व सृष्टा, स्वामी, आपके दर्शन के लिए हम सभी उसी प्रकार लालायित हैं, जैसे न दुही हुई गौएँ अपने बछड़े के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं ॥१॥

२३४. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! हम याजक आपको अन्न प्राप्ति के लिए आवाहित करते हैं । हे इन्द्रदेव ! विघ्नकारक संघर्षों के मध्य मनुष्य के लिए आपको ही पुकारते हैं ॥२॥

२३५. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव स्तुति करने वालों को अनेक प्रकार के वैभव प्रदान करते हैं । अतः उत्तम धन की प्राप्ति के लिए जैसे भी संभव हो उनकी अर्चना करो ॥३॥

२३६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी, सोमपान से तृप्त होने वाले, इन्द्रदेव की हम (ऋत्विग्गण) इसी प्रकार स्तुति करते हैं, जैसे गोशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए गौएँ लालायित रहती हैं ॥४॥

२३७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५॥

जैसे बालक अपने पालक को पुकारता है, वैसे ही हम अपने हितकारी इन्द्रदेव को रक्षा के लिए बुलाते हैं । हे ऋत्विजो ! सबकी रक्षा के लिए सोमयज्ञ में ऐश्वर्य देने वाले वेगवान् अश्वों से युक्त इन्द्रदेव की आराधना करो ॥५॥

२३८ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥६॥

(कर्म साधनाओं को पार करने में समर्थ याजक विवेक बुद्धि के सहयोग से विविध अन्न ग्रहण करने की इच्छा करता है ।) हे याजको ! तुम्हारे लिए इन्द्रदेव को स्तुतियों के माध्यम से हम वैसे ही नमनशील करते हैं, जैसे कुशल शिल्पी चक्र बनाने के लिए लकड़ी (पहिये पर लगाये जाने वाली धातु की पट्टी) को झुकाकर गोलाई प्रदान करता है ॥६॥

२३९. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! गाय के दूध में मिश्रित, [illegible] में हमारे, [illegible] सोमरस [illegible] और [illegible] थी । [illegible] आपकी शुद्ध [illegible] सोमरस [illegible] वाली थी ॥७ ॥

२४०. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम उत्तम आचरण से युक्त होकर आपका आवाहन करते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप [illegible] अश्व तथा [illegible] की इच्छा वाले हमारी कामनाओं की पूर्ति करें ॥८ ॥

२४१. न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९ ॥

हे मरुतो ! वसिष्ठ ऋषि [illegible] स्तुति करते हैं । आज हमारे यज्ञ में एक साथ बैठकर आप सभी सोमरस का पान करें ॥९ ॥

२४२. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१० ॥

हे याजको ! इन्द्रदेव के अतिरिक्त और किसी की स्तुति करके शक्ति क्षय मत करो । इस सोमयज्ञ में संगठित रूप से बलवान् इन्द्रदेव की स्तुति के लिए स्तोत्रों से बार-बार गाएं ॥१० ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

* * *

॥ चतुर्दशः खण्डः ॥

२४३. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१ ॥

मनुष्य, यज्ञ [illegible] महान्, [illegible] इन्द्रदेव को जो [illegible] (अनुकूल) बना लेता है, उस साधक के श्रेष्ठ कर्मों को कोई पराजित नहीं कर सकता ॥१ ॥

२४४. य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२ ॥

जो इन्द्रदेव गर्दन के स्नायुओं के रक्त निकलने पर बिना औषधि के ही संधियों को जोड़ देते हैं, वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव कटे हुए भागों को भी पुनः जोड़ देते हैं ॥२ ॥

२४५. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३ ॥

हे इन्द्र (सूर्य) देव ! स्वर्णिम रथ में (अन्तरिक्ष) मन के चाहने से जुड़ जाने वाले सैकड़ों-हजारों श्रेष्ठ घोड़े (किरणें) सोमपान के लिए आपको ले जाएँ ॥३ ॥

२४६. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४ ॥

जैसे प्यासे हिरण जल को खोज किया करके मरु पर जाते हैं, वहीं स्थान है इन्द्रदेव! आप शीघ्र गमन करने वाले अश्वों के समान तीव्र गमन करने वाले हों। कल्याण युक्त सुन्दर मित्रों के साथ जाने की इच्छा से आप आएँ। बहुत कैसे भी आपके पास से सत्कार दिए न जा सकें ॥४॥

[रेगिस्तान में जहाँ से बसाना चाहते वह उसकी पूर्णता की इच्छाओं में बसने के संदर्भ में भी है।]

२४७. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५॥

हे बलशाली धनवान् इन्द्रदेव! आप अपने भक्त को ऐश्वर्य देकर उनकी प्रशंसा करते हैं। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! आपके अलावा अन्य कोई सुखदाता नहीं है, अतः हम आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥५॥

२४८. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः।

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६॥

हे इन्द्रदेव! आप यशस्वी, सोमवाले तथा बलशाली हैं। आप मनुष्यों के हित के लिए, अपराजेय बलशाली शत्रुओं को बिना किसी सहायता के अकेले ही नष्ट करने में समर्थ हैं ॥६॥

२४९. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥७॥

देवों की आराधना के लिए, किये जाने वाले यज्ञ में हम याजकगण, जिस प्रकार यज्ञ के आरम्भ तथा उसकी समाप्ति के समय इन्द्रदेव का ही आवाहन करते हैं, वैसे ही धन प्राप्ति की कामना से भी इन्द्रदेव को आवाहित करते हैं ॥७॥

२५०. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥८॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! हमारी स्तुतियाँ आपको वृद्धि प्रदान करें। अग्नि के समान तेज वाले पवित्रात्मा, विद्वान्, ज्ञानवान् लोगों ने आपकी वन्दना करते हैं ॥८॥

२५१. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९॥

अमृतमयी, धन प्रदान करने वाली, सबकी संरक्षण वाली, विजयशील रथ के समान अन्न देने वाली स्तोत्रों का विधिपूर्वक उच्चारण किया जाता है ॥९॥

२५२. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१०॥

हे इन्द्रदेव! प्यासे गौर मृग के सदृश जिस प्रकार पानी से भरे जलाशय के निकट जाते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव! आप मित्रता प्राप्त होने पर कण्वों के यज्ञ में शीघ्र गति से आएँ और सोमरस का पान करें ॥१०॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चदशः खण्डः॥

२५३. शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

हे शचीपते शूर इन्द्रदेव ! सब प्रकार के रक्षा साधनों के द्वारा आप हमें अभीष्ट फल प्रदान करें । ऐश्वर्य युक्त धन प्रदान करने वाले आपकी हम उपासना करते हैं ॥१॥

२५४. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

हे ऐश्वर्यशाली सम्पन्न इन्द्रदेव ! असुरों से जीतकर लाये गये धन से स्तोताओं का संवर्धन करें और जो आपका आवाहन करते हैं, उनकी वृद्धि करें ॥२॥

२५५. प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥३॥

हे स्तोताओं ऋत्विजो ! मित्र, वरुण और अर्यमा देवों के यज्ञशाला में [illegible] स्तोत्रों से उनकी प्रार्थना करो ॥३॥

२५६. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥४॥

[illegible] हे इन्द्रदेव ! [illegible] आपकी स्तुति [illegible] करते हैं ॥४॥

२५७. प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥५॥

सैकड़ों [illegible] इन्द्रदेव [illegible] स्तोत्र सुनाओ ॥५॥

२५८. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥६॥

हे मरुतो ! इन्द्रदेव के निमित्त वृत्र (असुरों) का विनाश करने वाले बृहत् साम का गायन करो । [illegible] ज्योति उत्पन्न की है ॥६॥

२५९. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त करायें । जिस प्रकार [illegible] ॥७॥

२६०. मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे [illegible] हैं । हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें, हमें अपने से कभी भी दूर न करें ॥८॥

२६१. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥९॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! जिस प्रकार जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार सोमरस [illegible] हम आपको नमन करते हैं । पवित्र यज्ञ में कुश-आसन पर [illegible] आपकी उपासना करते हैं ॥९॥

२६२. यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] में जो पराक्रम है, पञ्च जनों (पाँचों वर्णों) में जो बल है, [illegible] ऐश्वर्य [illegible] प्रदान करें । [illegible] ॥१०॥

[पञ्च जनों का तात्पर्य समाज के पाँचों वर्गों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं निषाद; [illegible] से लगाया जाता है ।]

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

* * *

॥ षोडशः खण्डः ॥

२६३. सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१॥

हे वीर इन्द्रदेव ! दूर और पास के देशों में सर्वत्र [illegible] आपकी ख्याति फैली हुई है । हे इन्द्रदेव ! आप निश्चित रूप से बलशाली हैं । [illegible] हमारा संरक्षण करें ॥१॥

२६४. यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२॥

हे [illegible] वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप दूरस्थ हों या निकटस्थ हों, [illegible] आपका आवाहन करते हैं ॥२॥

२६५. अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥३॥

हे उद्गाता ! [illegible] इन्द्रदेव की [illegible] स्तुति करो ॥३॥

२६६. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] तीनों ऋतुओं [illegible] में सुखकारी, [illegible] ॥४॥

२६७. आपन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥५ ॥

जैसे किरणें सूर्यदेव के आश्रय में रहती हैं, वैसे ही इन्द्रदेव सम्पूर्ण जगत् के आश्रयदाता हैं । पिता से पुत्र को प्राप्त होने वाले धन भाग की भाँति, इन्द्रदेव से हम अपने भाग की याचना करते हैं, क्योंकि इन्द्रदेव ही जन्म लिये हुए तथा जन्म लेने वालों को अपना भाग प्रदान करते हैं ॥५ ॥

२६८. न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६ ॥

हे दीर्घायु इन्द्रदेव ! देवशक्ति रहित मनुष्य (आपके) अन्न को प्राप्त नहीं कर सकता है । जो इन्द्र, रथ में चलने वाले एतश के समान अपने घोड़ों को जोड़ते हैं, ऐसे इन्द्रदेव की जो स्तुति नहीं करता, वह इन्द्रदेव को नहीं पा सकता ॥६ ॥

२६९. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥७ ॥

संग्राम में रक्षा के लिए बुलाने योग्य इन्द्रदेव, हमारे स्तोत्रों से की गई स्तुतियों से सुशोभित होते हैं । हे वृत्रहन्ता, अनुपम ओज से सम्पन्न, ऋचाओं के समान उत्तम स्तुति से स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे सोम-यज्ञों के समय उच्चारित स्तोत्रों को आप सुशोभित करें ॥७ ॥

२७०. तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! निम्न कोटि, मध्यम कोटि तथा उच्च कोटि के धन के आप स्वामी हैं । आप सम्पूर्ण धन का दान करते हैं, जो आपको गौओं में नहीं रोक सकता ॥८ ॥

२७१. क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९ ॥

युद्ध में शत्रुओं से सब रखने वाले, युद्ध कौशल में निपुण, शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाले, हे वीरेन्द्र इन्द्रदेव ! आप कहाँ गए हैं ? अब आप कहाँ हैं ? हमारे कुशल स्तोताओं द्वारा किये जा रहे गायन को सुनने के लिए आप यहाँ पधारें ॥९ ॥

२७२. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१० ॥

हम याजकों ने इन्द्रदेव को कल सोमरस से तृप्त किया था, इसलिये इस समय यज्ञ के पात्र में भी हम उन्हें सोमरस देते हैं । हे याजको ! इस समय सोम युक्त इन्द्रदेव को सुशोभित करो ॥१० ॥

॥इति षोडशः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तदशः खण्डः ॥

२७३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१ ॥

यज्ञों के अधिपति, ऐश्वर्यवान्, शत्रु सेना के संहारक, वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हुए, उन्हें बुलाया करते हैं ॥९॥

२७४. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! हमें जिससे भय है उससे हमें अभय प्रदान करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप सर्व सामर्थ्यवान् हैं, अतः अपनी सामर्थ्य से हमारे शत्रुओं तथा हिंसक वृत्ति वालों को नष्ट कर हमारा संरक्षण करें ॥२॥

२७५. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३॥

हे गृह स्वामी ! घर के स्तम्भ मजबूत हों, सोमयाग करने वाले याज्ञिकों को देह रक्षक शक्ति की प्राप्ति हो । शत्रुओं की अनेक नगरियों को उजाड़ने वाले सोमपायी इन्द्रदेव मुनियों के सखा हैं ॥३॥

२७६. बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥४॥

हे दिव्य, ओजस्वी इन्द्रदेव ! यह सत्य है कि आप महान् देवता हैं । हे देव ! आप महान् प्रतिष्ठावान् हैं, आपकी प्रशंसा सब जन करते हैं ॥४॥

२७७. अश्वी रथी सुरूप इद्गोमान् यदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! मनुष्य जब आपको अपना मित्र बना लेता है, तब वह घोड़ों के रथ से युक्त, सौन्दर्यवान्, ऐश्वर्यवान्, तथा अन्न-धान्य से परिपूर्ण रहता है । वह यशस्वी श्रेष्ठ सामर्थ्य से सुशोभित होकर सभा में जाता है ॥५॥

२७८. यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों द्युलोक, सैकड़ों भूमियाँ तथा हजारों सूर्य भी यदि उत्पन्न हो जाएँ, तो भी सब आपकी समानता नहीं कर सकते । द्युलोक से पृथ्वीलोक तक आपकी बराबरी करने वाला कोई भी नहीं है । आपकी समता करने वाला कोई देव हो नहीं हुआ है ॥६॥

२७९. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप चतुर्दिक् से याजकों द्वारा सहायता के लिए आमंत्रित किये जाते हैं । शत्रुनाशक हे इन्द्रदेव ! यदु और तुर्वश के लिए आपको शीघ्रतापूर्वक बुलाया जाता है ॥७॥

२८०. कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८॥

हे सर्वोच्च ऐश्वर्यवान इन्द्रदेव! भला आपको कौन नाप-जोख कर सकता है? हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! आपके और अश्रद्धालु व्यक्तियों होते हैं। वे दुःखों के बाद होते (कपालों) के साथ भी आपका ही आवाहन करते हैं ॥८॥

२८१. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।

हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो! बिना पैर की यह उषा पैर वालों से पूर्व ही आ जाती है और सिर न होते हुए भी जीभ से बोलते हुए प्राणियों को जगाकर तीस पद एक दिन में तय करती है ॥९॥

[१ पद = १ मुहूर्त, १ मुहूर्त = २ घड़ी, २ घड़ी = ४८ मिनट, ३० मुहूर्त = २४ घंटे]

२८२. इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।

आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥१०॥

हे अत्यन्त शान्तिदायक इन्द्रदेव! अत्यन्त सुखदायी साधनाओं के साथ, उत्तम बन्धुओं सहित, समीप ही यज्ञस्थल में आप पधारें। मेधावी तथा श्रेष्ठ रक्षण शक्ति के साथ आप आएँ ॥१०॥

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

* * *

॥ अष्टादशः खण्डः ॥

२८३. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥१॥

हे याजको! सदा युवा रहने वाले, पराक्रमी, दूर रहते हुए भी यज्ञस्थल में जाने वाले, उत्तम रथी, अहिंसनीय, जल वृष्टि करने वाले, उग्र-अग्नि इन्द्रदेव का, संरक्षण की भावना से आवाहन करो ॥१॥

२८४. मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।

आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥२॥

हे इन्द्रदेव! यजमान आपको हमसे दूर न कर सकें। अतः आप हमारे यज्ञ में सोमपान हेतु पधारें और हमारे पास रहकर हमारी स्तुतियों को सुनें ॥२॥

२८५. सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥३॥

हे याजको! वज्रधारी सोमपायी इन्द्रदेव के लिए सोम अभिषुत करो, रक्षणार्थ पुरोडाशादि अन्न पकाओ तथा यज्ञ करो। यजमानों को सुखी बनाने के लिए इन्द्रदेव उत्तम हविष्यान्न ग्रहण करते हैं ॥३॥

२८६. यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।

सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४॥

जो इन्द्रदेव शत्रु-नाशक तथा सर्वद्रष्टा हैं, उन इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं। सहस्रों मन्यु वाले, बल वाले, सज्जनों के पालनकर्ता हे इन्द्रदेव! आप संग्रामों में हमारी वृद्धि में सहायक बनें ॥४॥

२८७. शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥५॥

दुग्धादि पदार्थों से वृद्धि करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! अपनी शक्तियों के द्वारा हमें दिन-रात धन-धान्य दो। आपकी दानशीलता की तरह हमारा भी दान देने का स्वभाव कभी नष्ट न हो ॥५॥

२८८. यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥६॥

जब भी हविदाता यजमान के लिए स्तोतागण स्तुति करें, तब विशेष रक्षण की सामर्थ्य से सम्पन्न कर्मों को धारण करने वाले, पाप निवारक वरुणदेव की विशेष स्तुतियों से वन्दना करें ॥६॥

२८९. पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७॥

हे मेधावान अतिथि ! जो इन्द्रदेव दोनों अश्वों को जोड़ते हैं, वज्रधारी हैं, स्वर्णमय हैं, सुवर्णरथ से विचरणशील हैं, ऐसे इन्द्रदेव को सोमपान से आनन्दित करके अपनी गौओं की रक्षा करें ॥७॥

२९०. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥

हमारे कथन और गान से भरे गए दोनों प्रकार की प्रार्थना को इन्द्रदेव सुनें। सबसे शक्तिशाली, ऐश्वर्य से सम्पन्न हे बलवान् और धनवान इन्द्रदेव ! सोमपान के लिए यहाँ पधारें ॥८॥

२९१. महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! अत्यधिक धन की कीमत पर भी आपको नहीं त्यागा जा सकता। हे वज्रधारी ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! सौ, सहस्र और दस हजार की कीमत पर भी आपको नहीं त्यागा जा सकता ॥९॥

२९२. वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे पिता जी की अपेक्षा अधिक धनवान् हैं। भरण-पोषण न देने वाले भाई से भी अधिक महान् हैं। सबके पालनकर्ता हे इन्द्रदेव ! आप हमारी माता के समतुल्य हैं। धन-धान्य से पूर्ण करने के लिए आप हमें महान् बनायें ॥१०॥

॥इति अष्टादशः खण्डः॥

* * *

॥एकोनविंशः खण्डः॥

२९३. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥

हे धनवान्-ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! दही मिले हुए, आनन्ददायक, विशेष रूप से बनाये गये इस सोमरस का पान करने के लिए आप यज्ञ-स्थल पर पधारें ॥१॥

२९४. इमा इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! याजकों द्वारा विशिष्ट विधि से शुद्ध किये गये, आनन्दवर्धक, मधुर इस सोमरस का सेवन करके, स्तोत्रों को सुनते हुए हम याजकों को श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करें ॥२॥

२९५. आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! याज्ञिक, विशिष्ट विधि से सहजतापूर्वक अधिक दुग्ध प्रदान करने वाली कामधेनु गाय के समान अलंकृत, आपका हम आवाहन करते हैं ॥३॥

२९६. न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४॥

विशाल, स्थिर पर्वत के समान, बलिष्ठ पथ से विचलित न होने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदान किया गया वैभव हम याजकों को निरन्तर प्राप्त होता रहे ॥४॥

२९७. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥५॥

सोमयज्ञ में एक ही स्थान पर विराजमान होकर सोमपान करने वाले अलौकिक वैभव-सम्पन्न इन्द्रदेव को कौन (नहीं) जानता है ? सोमपान से प्रफुल्लित, शिरस्त्राण धारण किये हुए इन्द्रदेव, अपनी शक्ति से विरोधियों के नगरों को छिन्न कर देते हैं ॥५॥

२९८. यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन्पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥६॥

आततायियों को कठोर दण्ड देने के उपरान्त, यज्ञ स्थल के चारों ओर व्याप्त दुष्ट-विरोधियों को दूर करने वाले, धन-सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप हमारे श्रेष्ठ सोमरस की वृद्धि करें ॥६॥

२९९. त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥७॥

देव शिल्पी त्वष्टा, पर्जन्य देवता, बृहस्पति देवता, पुत्र-भ्राता, देवमाता अदिति आदि देव शक्तियाँ, दुःखों से मुक्ति दिलाने वाले स्तोत्रों से हमारी रक्षा करें ॥७॥

३००. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८॥

कल्याण मार्ग के प्रदाता, कभी भी निष्फल न होने वाले हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपके दिव्य प्रचुर अनुदान याजकों को कृपापूर्वक प्राप्त होते हैं ॥८॥

२०१. पुरुहूत्वा वि वृत्रहन्नसि हवी इन्द्र ... ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९॥

वृत्रासुर के विनाश में सक्षम, ... ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप शक्ति-सम्पन्न होकर, मरुद्गणों के साथ, ... स्थान से हमारे यज्ञ में पधारें ॥९॥

२०२. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥

याजकों द्वारा ... सोमरस का ... करने वाले हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप ... द्वारा उच्चारित स्तोत्रों को सुनते हुए यज्ञ-स्थल पर पधारें ॥१०॥

॥इति एकोनविंशः खण्डः ॥

* * *

॥विंशः खण्डः ॥

२०३. प्रत्यु अदर्श्यायत्यूच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

... उषा ... हुई, सूर्य-पुत्री ... दर्शन होने लगा है । ... तथा अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती हैं ॥१॥

२०४. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥२॥

हे सम्पूर्ण प्राणियों के आश्रय-स्थल अश्विनीकुमारो ! ... की कामना करने वाले याजक आपका आवाहन करते हैं । सम्पूर्ण मनुष्यों के निकट जाने वाले तथा ... से सम्पन्न करने वाले आपका, संरक्षण के निमित्त हम आवाहन करते हैं ॥२॥

२०५. कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्मया क्षपमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

हे ... अश्विनीकुमारो ! ... आपको सन्तुष्ट करने में सक्षम है ? आपके निमित्त पत्थरों से कूटकर सोम तैयार करने वाला, ... याजक ... के समान, अपनी इच्छानुसार ... प्राप्त करने में सक्षम होता है ॥३॥

२०६. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! अत्यन्त मधुर तथा एक दिन पूर्व शोधित सोमरस का, आप सेवन करें एवं याजकों ... को रत्न एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४॥

२०७. आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥

[illegible] ॥५॥

३०८. अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।

उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥

[illegible] ॥६॥

३०९. अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

पुरूवसुर्हि मघवन्बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥७॥

[illegible] ॥७॥

३१०. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद्दिधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥८॥

[illegible] ॥८॥

३११. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥९॥

[illegible] ॥९॥

३१२. प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।

न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१०॥

[illegible] ॥१०॥

॥इति विंशः खण्डः॥

* * *

॥एकविंशः खण्डः॥

३१३. असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥१॥

[illegible] ॥१॥

३१४. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरूहूत प्र याहि ।

असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥२॥

[illegible] हे इन्द्रदेव ! [illegible] आप अपने [illegible] के साथ सम्मिलित होने की कृपा करें। [illegible] सोमपान [illegible] आनन्द की अनुभूति करें ॥२॥

३१५. अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप बादलों को भेदकर, जल धाराओं को प्रकट करने के लिए, जल मार्गों की बाधाओं को दूर कर, नदियों [illegible] समुद्र को [illegible] करते हैं। [illegible] आप राक्षसों (दुष्ट प्रकृति वालों) का [illegible] करते हैं ॥३॥

३१६. सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४॥

हे धन-सम्पन्न इन्द्रदेव ! सोमरस अभिषवण करने वाले तथा [illegible] हम आपकी स्तुति करते हैं। आपके द्वारा रक्षित [illegible] धन की कामना करने वाले, हम [illegible] ऐश्वर्य अर्जित करने को आपसे [illegible] करते हैं ॥४॥

३१७. जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥

हे [illegible] शूरवीर इन्द्र ! ऐश्वर्य की कामना करने वाले [illegible] तथा धन प्राप्त करने के लिये हम आपके दायें हाथ (सामर्थ्य) का आश्रय लेते हैं, आप [illegible] के रूप में भी प्रसिद्ध हैं ॥५॥

३१८. इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥

[illegible] की रक्षा के लिए [illegible] अपनी सहायता के लिये इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। [illegible] आप मनुष्यों के लिए धन-दाता एवं [illegible] हैं। [illegible] प्राप्त करने के लिए पहुँचाने की कृपा करें ॥६॥

३१९. वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥७॥

उत्तम पंखों से युक्त पक्षी (दिव्य [illegible] किरणों से युक्त) इन्द्रदेव को प्राप्त होता है। [illegible] ऋषि [illegible] याचना करते हैं। हे इन्द्रदेव ! [illegible] अन्धकार को दूर कर हमारी आँखों को दिव्य [illegible] बनायें ॥७॥

३२०. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८॥

पक्षी की तरह आकाश में [illegible] सुनहरे पंख वाले, सबको [illegible] देने वाले हे वरुण के दूत ! आपको लोग हृदय से चाहते हैं [illegible] में, [illegible] की तरह विचरण करते हुए देखते हैं ॥८॥

[[illegible] अन्तरिक्ष में [illegible] जाता है, [illegible] विज्ञान ने भी स्वीकारा है।]

३२१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥९॥

सूर्य ने (सबसे पहले) ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। फिर वे उसका संरक्षण करते हुए, उसकी जन्म के अनुरूप उसके तेज को विशेष रूप से ब्रह्माण्ड में स्थापित किया। जो उत्पन्न हुआ है, उसका कारण तथा जो उत्पन्न नहीं हुआ है, उसका कारण भी यही (परमात्मा) है ॥९॥

[इस मन्त्र के आधार पर ग्रन्थों में सृष्टि-उत्पत्ति की प्रक्रिया का वर्णन भी मिलता है।]

३२२. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥

तेजस्वी, शक्तिशाली, शीघ्र कार्य करने वाले, महान, वज्रधारी, पूज्य इन्द्रदेव के लिए, अनेक अनुपम स्तोत्रों द्वारा स्तुति की जाती है ॥१०॥

॥इति एकविंशः खण्डः॥

* * *

॥द्वाविंशः खण्डः॥

३२३. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१॥

गतिशील, दस हजार सैनिकों सहित आक्रमण करने वाले, सम्पूर्ण संसार को दुःख देने वाले, अंशुमती नदी (यमुना) के तट पर निवास (करने वाले) कृष्ण (असुर) अपने अनुचरों में छिपा बैठा था। तब मनुष्यों का हितैषी इन्द्रदेव ने प्रचण्ड रूप धारण करके शत्रुओं की सेना को पराजित कर दिया ॥१॥

३२४. वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥२॥

हे इन्द्रदेव! वृत्रासुर के भय से आपका परित्याग करके सभी सखारूप देवगण चारों दिशाओं में पलायन कर गये। तदनन्तर मरुद्गणों का सहयोग लेकर आपने शत्रु-सेना को परास्त किया ॥२॥

३२५. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३॥

युद्ध में सेना को अस्त-व्यस्त करने वाले, शत्रुसेना को खदेड़ देने वाले इन्द्रदेव के प्रभाव से श्रेष्ठ योद्धा (कालरूपी) युवा भी वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। हे स्तोताओ! इन्द्रदेव के महान् एवं विलक्षण करने वाले विविध कार्यों को देखो, जो आज (उत्पन्न) के बाद निश्चय (ही) नष्ट होता हुआ भी (परमेश्वर ने) जगत में भी के समान स्थितियों में प्रयुक्त होता है ॥३॥

३२६. त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥४॥

अजातशत्रु हे इन्द्रदेव! वृत्रादि सात राक्षसों के, आप उत्पन्न होते ही शत्रु हो गये। अन्धकार में (राक्षसों द्वारा) स्थापित किये गये द्युलोक और पृथ्वीलोक को उजागर करके आपने प्रकाशित किया। तथा आपने इन लोकों को ऐश्वर्यशाली और भली-भाँति स्थिर करके सौन्दर्ययुक्त कर दिया है ॥४॥

३२७. मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५॥

यज्ञों के आश्रित, मन प्रसन्न करने वाले, द्युलोक में प्रतिष्ठित, शत्रुओं का विनाश करने वाले, शक्तिशाली, संग्राम में विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्यवान, युद्ध में विजय दिलाने वाले इन्द्रदेव, हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अतः हम उनकी स्तोत्रों से मनुष्य की तरह स्तुति करते हैं ॥८॥

३२८. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥९॥

हे मनुष्यो ! महान् कार्य सम्पन्न करने वाले, प्रकृष्ट ज्ञानवान इन्द्रदेव के लिए सोम अर्पण करते हुए, श्रेष्ठ स्तोत्र से स्तुति करो। हे इन्द्रदेव ! आप भी सम्पूर्ण प्रजाओं की कामना पूर्ण करते हुए उनका कल्याण करें ॥९॥

३२९. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानि ॥१०॥

अन्न प्राप्ति की कामना वाले, संग्राम में सर्वाधिक तेजस्वी ऐश्वर्यवान्, नेतृत्व कर्ता, ध्यानपूर्वक प्रार्थना सुनने वाले, शत्रुसंहारक, धनविजेता इन्द्रदेव का हम अपनी सुरक्षा के निमित्त आवाहन करते हैं ॥१०॥

३३०. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥११॥

हे वसिष्ठ (श्रेष्ठ) ऋषे ! यज्ञ के सम्पादक, स्तोताओं की प्रार्थना सुनने वाले, अपनी (विशाल) सामर्थ्य शक्ति की क्षमता से यज्ञ में इन्द्रदेव की महिमा का वर्णन करने वाले स्तोत्रों का पाठ करो ॥११॥

३३१. चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्छच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥१२॥

अन्तरिक्ष में देदीप्यमान इन्द्रदेव का चक्र यजमानों के लिए मधुर जल (सोमरस रूप) प्रेरित करता है। पृथ्वी पर प्रवाहित होने वाला जल गौओं में दूध के रूप में और वनस्पतियों में पोषक रस के रूप में विद्यमान है ॥१२॥

॥इति द्वाविंशः खण्डः ॥

* * *

॥त्रयोविंशः खण्डः ॥

३३२. त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

हम अपने कल्याण के लिए, देवताओं से प्रेरित, शक्तिशाली, संग्राम में रथों को पार करने में समर्थ, शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करने वाले, जिनकी गति रुकती नहीं, उन तीव्र गति से उड़ने वाले तार्क्ष्य (गरुड़ सूर्य रूप) का आवाहन करते हैं ॥१॥

३३३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥२॥

पोषक एवं रक्षक, युद्ध में आवाहन योग्य, पराक्रमी, समर्थ तथा अनेक साधकों द्वारा स्तुत्य इन्द्रदेव का हम कल्याण के निमित्त आवाहन करते हैं। ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव (भावनाओं द्वारा समर्पित) हविष्यान्न को ग्रहण करें ॥२॥

३३४. यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥३॥

वज्रधारी, वेगवान् रथ पर आरूढ़, घोड़ों एवं मूछों (के कम्पन) से शत्रु को प्रकम्पित करने वाले, सर्वोच्च, सेना के माध्यम से शत्रुओं को भयभीत करने वाले इन्द्रदेव उपासकों को धन-वैभव प्रदान करते हैं ॥३॥

३३५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥४॥

शत्रु-समूह के संहारक, उन्हें पराजित करने वाले, (कोपित करके) भय देने वाले, अत्यधिक शक्ति सम्पन्न, श्रेष्ठ वज्रधारक, वृत्र-हन्ता, अन्नदायक, धन-प्रदायक इन्द्रदेव अपने उपासकों को धन देने वाले हैं ॥४॥

३३६. यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५॥

हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु-पुरुष, अहंकारी अथवा वेग से आक्रमण करने वाले उग्र, इन्द्र! आपके द्वारा रक्षित होकर हम (वीरतापूर्वक), शत्रुओं को पराजित करने में सफल हों ॥५॥

३३७. यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६॥

युद्ध-रत मनुष्यों द्वारा सहायता के लिए पुकारे जाने वाले, यज्ञ-कर्म में बुलाये जाने वाले, योद्धाओं द्वारा पुकारे जाने वाले, जल-प्राप्ति के निमित्त प्रार्थना किये जाने वाले, विद्वानों द्वारा स्तुति किये जाने वाले देवता एक मात्र इन्द्र हैं ॥६॥

३३८. इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७॥

हे इन्द्र और पर्वत! सुन्दर, विशाल रथ से, यजमान द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न के साथ श्रेष्ठ अन्न प्रदान करने वाले, यज्ञ में हवि का सेवन करने वाले आप हमें अन्न प्रदान करें, स्तोत्रों से प्रसन्न हों ॥७॥

३३९. इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥८॥

इन्द्रदेव ने अपनी शक्ति से, रथ के चक्के को धुरी से जोड़ने के समान द्युलोक और पृथ्वीलोक को स्तम्भित करके स्थापित किया है। इन इन्द्रदेव के लिए, निरन्तर की जाने वाली स्तुतियाँ अन्तरिक्ष से जल प्रवाहित करने में प्रेरक होती हैं ॥८॥

३४०. आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥९॥

हे अग्निदेव! सुदूर अन्तरिक्ष से पधारकर आपके मित्रगण, पैतृक लोकों में आपका आवाहन करते हैं। इस यज्ञ में प्रदीप्यमान होते हुए आपके यजमान हमें पुत्र-पौत्रों को धारण करें ॥९॥

३४१. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१०॥

यज्ञ में जाने वाले इन्द्रदेव के रथ को पूर्ण की सहायता से मन्त्रोत, पापवर्जन, ... समर्थ ... इन्द्रदेव को ले जाने वाले ... गौओं को (...) ... इन्द्रदेव के ... करने वाला ही ... प्राप्त कर सकता है ॥१०॥

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्विंशः खण्डः ॥

३४२. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥

हे शतक्रतु (सौ यज्ञ या श्रेष्ठकर्म करने वाले) इन्द्रदेव ! उद्गातागण उत्तम स्तोत्र से ... आपका आवाहन करते हैं । स्तोतागण पूज्य इन्द्रदेव का ... द्वारा आदर करते हैं । ... के समान ... आपका ... स्तुतियों द्वारा करते हैं ॥१॥

३४३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥

समस्त स्तुतियाँ समुद्र के समान विस्तृत ... रथियों में श्रेष्ठ, अन्न एवं बलों के अधिपति, सज्जनों के ... इन्द्रदेव को ... करती हैं ॥२॥

३४४. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥

हे इन्द्रदेव ! ... श्रेष्ठ, अमरत्वप्रद सोमरस का पान करें । यज्ञस्थल में ... आपकी ओर ... है (आपको समर्पित है) ॥३॥

३४५. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः । राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥

हे अद्भुत ... धारण करने वाले ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमारे पास आपके ... का अभाव है । ... दोनों हाथों से ... प्रदान करें ॥४॥

३४६. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥

हे इन्द्रदेव ! ... के स्तोत्रों को आप सुनें । हे महान् इन्द्रदेव ! आप ... एवं गौ ... करते हुए हमें धन-सम्पदा से परिपूर्ण करें ॥५॥

३४७. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥६॥

शक्तिशाली शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! ... अपनी किरणों से ... करने वाले सूर्य के समान, आप भी ... के बाद ... हो ॥६॥

३४८. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप ... श्रेष्ठ स्तुतियों के ... हेतु पधारें । ... में ... आपको भी ... होगी । ... आप यहाँ ... के लिए प्रस्थान करें ॥७॥

३४९. आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! [illegible] ॥ ८ ॥

३५०. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] ॥ ९ ॥

३५१. यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥

हे [illegible] इन्द्रदेव ! [illegible] ॥ १० ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द- विवरण

ऋषि— [illegible]

देवता— इन्द्र [illegible]

छन्द— बृहती [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] ।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥पंचविंशः खण्डः॥

३५२. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरंगमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरः ॥१॥

हे स्तोताओ ! सोम के पानकर्ता, सोम पीने के इच्छुक, सर्वज्ञ, निश्चित समय पर उचित स्थान को प्राप्त कराने वाले, बढ़ने वाले और अग्रणी, सर्वत्र गमनशील इन्द्रदेव के निमित्त हविष्यान्न से युक्त सोमरस समर्पित करो ॥१॥

३५३. आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् । महान्तं पूर्विणेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः ॥

हे इन्द्र ! विशाल पर्वतों पर उत्पन्न, उत्तम वास होने वाले, सोमरूपी अन्न दें तथा परिपूर्ण करें । अत्यधिक कठिन निन्दित वचनों को आप हमसे दूर करें एवं निन्दकों का नाश करें ॥२॥

३५४. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

मनुष्यों की रक्षा करने वाले, हे शक्तिमान्, सज्जनों के पालक हे शक्तिशाली इन्द्र ! सत्कर्म एवं सुख के निमित्त, शत्रुओं को दबाने वाले रथ के समान, हम आपको घुमाते हुए, आप को इस (यज्ञस्थल) में अभिमुख कर ले आते हैं ॥३॥

३५५. स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥

प्राचीन एवं महान् यजमानों की कामनाओं को सम्पन्न करने के लिए, कर्मशील, सभी देवताओं के पोषक, पितृरूप मनु, इन्द्रदेव यज्ञ-स्थल पर आमन्त्रित होते हैं ॥४॥

३५६. यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा । पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५॥

जब इन्द्रदेव, सोमरस के पीने वाले, अश्व रथ में जुड़े हुए, तेजस्वी अश्व, इन्द्रदेव को यज्ञ स्थल पर पहुँचाते हैं ॥५॥

३५७. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।

इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

यजमानों के हित के लिए अपराजेय, बल एवं अन्न के अधिपति, शत्रुओं को पराजित करने वाले, सबके नायक, सर्वज्ञ इन्द्रदेव की (हम) स्तुति करते हैं ॥६॥

३५८. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखा करत्प्र न आयूंषि तारिषत् ॥७॥

विजयशील, अश्व के समान वेग वाले, बलशाली, दधिक्रा (अग्नि) की हम स्तुति करते हैं, जो यज्ञीय अंगों के पोषक और हमारी आयु में वृद्धि करने वाले हैं ॥७॥

३५९. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥

वह (इन्द्र) शत्रु के नगरों का विध्वंस करने वाला, युवा, ज्ञानी, अपरिमित शक्तिवाला, शुभ कर्मों का आश्रयदाता, वज्रधारी एवं सर्वत्र पूजित होकर उत्पन्न हुआ है ॥८॥

॥इति पंचविंशः खण्डः॥

॥षट्त्रिंशः खण्डः ॥

३६०. प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१ ॥

हे साधको ! तीन स्तोत्रों से तैयार किये गये अन्न (सोम्य पदार्थ), श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव को प्रदान करें । यज्ञ-सम्पादन के लिए, विवेकपूर्वक किये गये यजनों का अभीष्ट फल प्रदान करके, 'इन्द्रदेव' याजकों को सम्मानित करते हैं ॥१ ॥

३६१. कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२ ॥

सर्वज्ञ कश्यप के दोनों अलग [illegible] (इन्द्र को [illegible]) में मिल रहे हैं । [illegible] हो जाने पर, उनके [illegible] का [illegible] जाता है— ऐसा ज्ञानीजनों का अभिमत है ॥२ ॥

३६२. अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! [illegible] की कामना को पूर्ण करने वाले तथा शत्रु को पराजित करने वाले इन्द्रदेव का [illegible] सम्मान करें ॥३ ॥

३६३. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत्सख्येषु च ॥४ ॥

हे होताओ ! शत्रुनाशक, [illegible] इन्द्रदेव के लिए [illegible] वाले उत्तम स्तोत्रों का पाठ करें, जिससे इन्द्रदेव हमारे सखाओं एवं मित्रों का संरक्षण करते रहें ॥४ ॥

३६४. विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! शत्रु सैनिकों पर आक्रमण करने वाले, शत्रुओं के लिए अजेय, बलशाली इन्द्र देवता का [illegible] के समय, उनके रथों की सुरक्षा के लिए आवाहन करते हैं ॥५ ॥

३६५. स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥६ ॥

साधक की [illegible] स्तुतियों के माध्यम से जो मनुष्य इन्द्रदेव का मित्र बनता है, वह व्यक्ति [illegible] संरक्षण में रहने के कारण पाप तथा शत्रुओं से सुरक्षित रहता है ॥६ ॥

३६६. विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्यवान्, सौ [illegible] करने वाले आप, [illegible] धन प्रदान करें, हमें भी ऐश्वर्य प्रदान करायें ॥७ ॥

३६७. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८ ॥

हे देदीप्यमान उषादेवि ! आपके (अन्धकार नष्ट करने का) प्रेरित होने के बाद, मनुष्य, पशु एवं पक्षी अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक [illegible] विचरण करते हुए दिखाई देते हैं ॥८॥

[illegible] होने से सभी प्राणी [illegible] हो जाते हैं ।

३६८. अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः । कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥

हे (तैंतीस) देवगण ! द्युलोक रूप तीनों के मध्य आकाश में दीप्तिमान् हो जाने से आप लोगों का कौन सी स्तुति पहुँची है या नहीं ? अथवा किसी विशिष्ट आहुति को आप प्राप्त करते हैं या नहीं ? ॥९॥

३६९. ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥१०॥

ऋचा एवं सामगान की सहायता से यज्ञीय कर्म सम्पन्न किया जाता है । यज्ञमण्डप में प्रकाशित हुए (ऋचा एवं सामगान) मंत्रों की सहायता से ही यज्ञ (हविष्यान्न) देवताओं तक पहुँचता है ॥१०॥

॥इति षड्विंशः खण्डः॥

* * *

॥सप्तविंशः खण्डः॥

३७०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

[illegible] में श्रेष्ठ स्थान पर आसीन होकर, तेजस्वी, संगठित सेना के स्वामी, [illegible] शत्रु हन्ता, उग्र, ओजस्वी, वेग गति से गमन करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं ॥१॥

३७१. श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! दुष्ट संहारक, प्राणियों के लिए जल प्रवाहित करने वाले, द्युलोक एवं पृथ्वी लोक को अपनी इच्छा से परिचालित करने वाले, आपके उग्र [illegible] (शत्रुविनाशक क्रोध) पर, हम श्रद्धाभाव रखते हैं ॥२॥

३७२. समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन् तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३॥

हे प्रजाजनो ! अपने तेज से द्युलोक के अधिपति, अकेले ही प्राणियों में पूजनीय, [illegible] की कामना से [illegible] विजय दिलाने वाले, उन इन्द्रदेव की सामूहिक स्तुति करो ॥३॥

३७३. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४॥

हे सर्वव्यापक एवं बहुधनशील इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में कार्य करते हुए, विश्वासपूर्वक रहते हुए, आपके समान अन्य दूसरा देवता न होने के कारण हम आपकी स्तुति करते हैं । सभी पदार्थों को स्वीकार करने वाली पृथ्वी के समान, आप भी हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥४॥

३७४. चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।

वाजानां पुरुहूतं पुरुष्टुतमिन्द्रं गीर्भिर्जरयामि दिवेदिवे ॥५॥

सभी मनुष्यों के पोषक, ऐश्वर्यवान्, ज्योतिष्मान् की वृद्धि करने वाले, अमर, अनेक लोगों से प्रशंसित इन्द्रदेव की हम अनेक विविध स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥५॥

३९५. अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥६॥

अपने संरक्षण के लिए, पवित्र, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव की आत्मशक्ति की वृद्धि करने वाली, एक साथ उठने वाली, उन्नति की कामना करने वाली हमारी स्तुतियाँ, उसी प्रकार आलिंगन करती हैं, जैसे स्त्रियाँ अपने पति का स्नेहपूर्वक आलिंगन करती हैं ॥६॥

३९६. अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७॥

हे स्तोताओ! (शत्रु को) पराजित करने वाले, स्तोत्रों द्वारा स्तवनीय किये जाने योग्य, धन के सागर इन्द्रदेव की अर्चना करो। सूर्यदेव की किरणों के समान, जिनके मनुष्यकल्याणकारी कार्य चतुर्दिक् सम्पन्न हैं, ऐसे ज्ञानवान् इन्द्रदेव की सुखों की प्राप्ति के लिए, अर्चना करो ॥७॥

३९७. त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥८॥

जिन इन्द्रदेव के श्रेष्ठ, सैकड़ों उत्तम स्थान एक साथ ही उन्नति को प्राप्त करते हैं, उन शत्रुओं से स्पर्धा करने वाले, धन-धान्य के निमित्त अभीष्ट स्थान पर जाने वाले, अश्व के समान शीघ्रता से यज्ञ-स्थल पर पहुँचने वाले, ऐसे विशेष रथ वाले इन्द्रदेव की, अपनी रक्षा के लिए, श्रेष्ठ स्तोत्रों के माध्यम से स्तुति करते हुए, आवाहन करो ॥८॥

३९८. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९॥

तेजस्वी, सम्पूर्ण प्राणियों के आश्रय, उत्तम, विशाल, सुन्दर रूप वाले, मधुर जल प्रदान करने वाले, श्रेष्ठ परमेश्वर की शक्ति पर टिके हुए, अविनाशी एवं श्रेष्ठ उत्पादक क्षमता से युक्त ये द्युलोक और पृथ्वीलोक हैं ॥९॥

३९९. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनां सम्राजं
चर्षणीनाम् । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१०॥

हे इन्द्रदेव! जैसे उषा प्रकाश से भर देती है, वैसे ही द्युलोक और पृथ्वीलोक को प्रकाश से पूर्ण करने वाले, महानतम, प्रजाओं के स्वामी, आपको कल्याण करने वाली देवमाता अदिति ने प्रकट किया है ॥१०॥

४००. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥११॥

हे ऋत्विग्गण! श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हर्षप्रदायक स्तोत्रों से अर्चना करो। ऋजिश्वा की सहायता से, कृष्णासुर की गर्भिणी स्त्रियों का नाश करने वाले, दाएँ हाथ में वज्र धारण करने वाले, मरुद्गणों की सेना के साथ निवास करने वाले, बलशाली उन इन्द्रदेव का, अपने संरक्षण की कामना करने वाले हम (याजकगण) मित्रता के निमित्त, आवाहन करते हैं ॥११॥

॥ इति सप्तविंशः खण्डः ॥

॥ अष्टाविंशः खण्डः ॥

३८१. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षसो महाँ हि षः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! तैयार किये गये सोमरस का पान करके (आप) यजमान और स्तोता (दोनों) को, उन्नति को और बढ़ानेवाली शक्ति प्राप्त करने के लिए, पवित्र कर देते हैं (क्योंकि) आप महान् हैं ॥१॥

३८२. तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥२॥

हे स्तोताओ ! अनेक यजमानों द्वारा आवाहन किये जाने वाले, स्तोत्रों के योग्य, उन इन्द्रदेव की स्तोत्रों से स्तुति और मन्त्रों से सेवा (परिचर्या) करें ॥२॥

३८३. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! [illegible] शत्रु को पराजित करने वाले, मनुष्यों के लिए कल्याणकारक स्थान, जिसके [illegible] होते हैं, सोमपान के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले उस आपके उल्लास की हम स्तुति करते हैं ॥३॥

३८४. यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञों में विष्णु के सम्मिलित होने के बाद आपने जो सोमपान किया अथवा आप्त्य त्रित के अथवा मरुद्गणों के साथ अथवा अन्य यज्ञों में [illegible] से आनन्दित होने वाले आप, [illegible] सोमपान करके आनन्दित हों ॥४॥

३८५. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ॥५॥

हे अध्वर्युगण ! मधुर सोमरस से आनन्दित होने वाले इन्द्रदेव को यह रस समर्पित करो । [illegible] निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले इन्द्रदेव ही स्तोताओं द्वारा सदैव प्रशंसित होते हैं ॥५॥

३८६. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥६॥

हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस समर्पित करो, जिस मधुर सोमरस-पान के बाद वे अपने प्रभाव से याजकों को विपुल धन प्रदान करते हैं ॥६॥

३८७. एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७॥

हे मित्रो ! शीघ्र आओ, हम उन स्तुत्य, नेतृत्व करने वाले इन्द्रदेव की प्रार्थना करें, जो अकेले ही सभी शत्रुओं को परास्त करने में सक्षम हैं ॥७॥

३८८. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८॥

हे उद्गाताओ ! विवेक सम्पन्न, महान्, स्तुत्य, ज्ञानवान् इन्द्रदेव के निमित्त आप लोग बृहत्साम (साम स्तोत्रों) का गायन करो ॥८॥

३८९. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९॥

हे प्रिय याजको ! दानशील होने के कारण मनुष्यों को धन देने वाले, प्रतिकार न किये जाने वाले, वे अकेले इन्द्रदेव ही सभी (प्राणियों) के अधिपति हैं ॥९॥

३९०. सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०

हे मित्रो ! वज्रधारण करने वाले इन्द्रदेव की इन स्तोत्रों से स्तुति करते हुए, उनसे आशीर्वाद की कामना करते हैं। ऐश्वर्यवान तथा शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव की, हम आप सभी के कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

॥इति अष्टाविंशः खण्डः॥

* * *

॥एकोनत्रिंशः खण्डः॥

२९१. गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये। यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१॥

हे शचीपते इन्द्रदेव ! हम सब निकट ही सम्पन्न होने वाले यज्ञ में आपकी शक्ति की स्तुति करते हैं, जिसके कारण आप वृत्र का वध करने में सफल हुए ॥१॥

२९२. यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन्। अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस को पीकर आपने आनन्दित होकर, दिवोदास के कल्याण के लिए शम्बरासुर का हनन किया, उस शोधित सोमरस का आप सेवन करें ॥२॥

२९३. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य। गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥३॥

हे सर्वप्रिय ! सारे शत्रुओं को जीतने वाले, अपराजेय इन्द्रदेव, पर्वत के समान सुविशाल द्युलोक के अधिपति, आप (अनुग्रह देने हेतु) हमारे पास आयें ॥३॥

२९४. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति। येना हंसि न्यात्रिणं तमीमहे ॥४॥

अत्यधिक सोमपान करने वाले बलशाली इन्द्रदेव आपका उत्साह प्रकाशित होता है। जिससे आप (आक्रमणकारी) भक्षक असुरों (आसुरी वृत्तियों) को नष्ट करते हैं, ऐसे आपकी हम स्तुति करते हैं ॥४॥

२९५. तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥५॥

हे महान् आदित्यो ! हमारे पुत्र और पौत्रों को दीर्घायुष्य प्रदान करने की महान् कृपा करें ॥५॥

२९६. वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥६॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप विनाशकारक कष्टों को दूर करने के मार्ग को जानते हैं। पक्षियों से आच्छादित (जैसे) को दूर करने वाले सूर्य के समान, आप भी विपत्तियों को दूर करने में समर्थ हैं ॥६॥

२९७. अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥७॥

हे आदित्यो ! (आप हमें) रोगों, शत्रुओं, पापों एवं दुष्ट बुद्धि व दुष्कर्मों से दूर रखें ॥७॥

[यहाँ पूर्व ऋचाओं में शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा के सूत्र संकेत मिलते हैं।]

२९८. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥८॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आप आनन्ददायक सोमरस का पान करें। दोनों भुजाओं से नियंत्रित हुए, घोड़े के समान (पत्थरों से) कूटकर निकाला गया सोमरस आपके लिए निकाला गया है ॥८॥

॥इति एकोनत्रिंशः खण्डः॥

* * *

॥ तृतीयः खण्डः ॥

३९९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जन्म से ही शत्रुओं के [illegible] से मुक्त हैं, न आप का [illegible] करने वाला कोई बन्धु है और न [illegible] करने वाला कोई बन्धु । आप युद्ध (बलप्रदर्शन) द्वारा अपने उपकोटियों (बन्धुओं) [illegible] की कामना करते हैं ॥१ ॥

४००. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥२ ॥

हे मित्रो ! पूर्वकाल से ही [illegible] धन देने वाले हैं, उन इन्द्र की हम अपनी [illegible] के लिए स्तुति करते हैं ॥

४०१. आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।

दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥३ ॥

[illegible] हानि न पहुँचाते हुए हमारे निकट आएँ । वे मरुद् [illegible] सुदृढ़ बलशाली शत्रुओं को भी [illegible] पहुँचाने वाले हैं, वे हमसे दूर न रहें ॥३ ॥

४०२. आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥४ ॥

अश्वों एवं गौओं के स्वामी, [illegible], [illegible] पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! [illegible] सोमरस का पान करने के लिए हम आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

४०३. त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।

संस्थे जनस्य गोमतः ॥५ ॥

हे वृषभ के समान बलशाली इन्द्र ! [illegible] करने वाले शत्रुओं के [illegible] के प्रति [illegible] करने वाले [illegible], हम आपकी सहायता से [illegible] ॥५ ॥

४०४. गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥६

हे समान [illegible] से युक्त मरुतो ! [illegible] के [illegible], [illegible] के समान, [illegible] में [illegible] हुई भी, [illegible] करने वाले हैं ॥६ ॥

[[illegible]]

४०५. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥७ ॥

हे अनेक कर्मों के सम्पादनकर्ता-ज्ञानी इन्द्रदेव ! आप हमें [illegible] एवं ऐश्वर्य से पूर्ण करें, तथा शत्रु को जीतने वाला पुत्र भी प्रदान करें ॥७ ॥

४०६. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८ ॥

जैसे [illegible] हुए लोग [illegible] में [illegible] हैं, वैसे ही [illegible] के [illegible] अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए हम आपको [illegible] करते हैं, [illegible] आपकी स्तुति करते हैं ॥८ ॥

४०७. सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।

अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥९ ॥

हे इन्द्र ! [illegible] के [illegible] के दूध के साथ [illegible], [illegible] को [illegible] देने वाले सोम के निकट, [illegible] पक्षियों के समान, [illegible] हम आपको नमस्कार करते हैं ॥९ ॥

४०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१०॥

जिस प्रकार स्थूल [illegible] हे [illegible] अनुपम इन्द्रदेव ! आपकी [illegible] हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१०॥

॥इति त्रिंशः खण्डः ॥

* * *

॥एकत्रिंशः खण्डः ॥

४०९. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

[illegible] ॥१॥

४१०. इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।

शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

हे शक्तिशाली-वज्रधारी इन्द्रदेव ! [illegible] ॥२॥

४११. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

[illegible] ॥३॥

४१२. इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।

यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

हे [illegible] वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपकी [illegible] ॥४॥

४१३. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।

इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] ॥५॥

४१४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥६॥

युद्ध आरम्भ होने पर शत्रुओं को भी धन प्राप्त होते हैं। हे इन्द्रदेव! युद्धस्थल पर मद टपकाने वाले (संग्राम में जाने वाले) अश्वों को आप अपने रथ में जोड़िए। आप किसको धन दें, किसे धन दें- यह आपके ऊपर निर्भर है। अतः हे इन्द्रदेव! हमें ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥६॥

४१५. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७॥

हे इन्द्रदेव! आपके अन्न से तृप्त हुए यजमानों ने अपने आनन्द को प्रकट करते हुए सिर हिलाया। फिर उन तेजस्वी ब्राह्मणों ने नूतन स्तोत्रों का गान किया। अतः आप अपने अश्वों को रथ में गमन के लिए योजित करें ॥७॥

४१६. उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव।
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥८॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! आप हमारे स्तोत्रों को निकट से भलीप्रकार सुनें। आप हमें सत्यभाषी कब बनायेंगे? हमारी स्तुतियों को श्रवण करने वाले आप, अश्वों को आगमन के निमित्त योजित करें ॥८॥

४१७. चन्द्रमा अप्स्वा३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

अन्तरिक्ष में उत्पन्न चन्द्रमा अपनी तेज किरणों सहित आकाश में गतिशील है। हे विद्युत् रूप स्वर्णिम नेमि वाली किरणो! आपके उत्पत्ति स्थान को इन्द्रियाँ ढूँढ़ने में समर्थ नहीं हैं। हे द्यावा-पृथिवि! मेरी स्तुतियों को स्वीकार करें। यद्यपि ये सूर्य का प्रकाश आकाश में संव्याप्त रहता है, किन्तु हमारी इन्द्रियाँ उसे अनुभव नहीं कर पातीं। आकाश के मध्य में ही चमकता रहता है ॥९॥

४१८. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१०॥

हे अश्विनीकुमारो! आपके अत्यन्त प्रिय, बलयुक्त, धन वाहक रथ को स्तोता ऋषि अपने स्तोत्रों से विभूषित करते हैं। हे मधु विद्या के ज्ञाताओ! आप मेरी स्तुतियों का श्रवण करें ॥१०॥

॥इति एकत्रिंशः खण्डः॥

* * *

॥द्वात्रिंशः खण्डः॥

४१९. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

हे अग्निदेव! हम तेजस्वी एवं जरा-रहित (दिव्य) आपको प्रज्वलित करते हैं। आपकी तेजस्वी ज्वालाएँ द्युलोक में प्रकाशित होती हैं। आप स्तोताओं को अन्न (भोजन) से परिपूर्ण करते हैं ॥१॥

४२०. अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥

[illegible] करने वाले, यज्ञशाला में जिनके लिए कुश-आसन को बिछाया गया है, ऐसे [illegible] प्रकाश से युक्त, महान् अश्विनीकुमारो ! आपकी [illegible] विशेष आनन्द के साथ करते हैं ॥२॥

४२१. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

हे उषादेवि ! जैसे आप हमें पहले ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए जगाती रही हैं, वैसे ही [illegible] आज भी जाग्रत् करें। [illegible] ॥३॥

४२२. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४॥

हे सोमदेव ! [illegible] तथा [illegible] के लिए प्रेरित करें। जैसे गौओं की [illegible] है, उसी प्रकार हमें आपकी [illegible] ॥४॥

४२३. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५॥

भीषण शक्ति से युक्त इन्द्रदेव [illegible] अपने बल की वृद्धि करते हैं। [illegible], सौन्दर्यशाली, [illegible] धारण करने वाले, [illegible] अश्वों को नियोजित करने वाले इन्द्रदेव दोनों हाथ में लौह-निर्मित वज्र को [illegible] के रूप में धारण करते हैं ॥५॥

४२४. स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥६॥

इन्द्रदेव अन्न, सोम आदि से पूर्ण, [illegible] जानते हैं और उसी [illegible] पर आसीन होते हैं। अतः हे इन्द्रदेव ! आप अपने घोड़ों को रथ में जोतें। [illegible] ॥६॥

४२५. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

जो अग्नि [illegible] में आश्रय [illegible] रहते हैं, [illegible] जिस अग्नि की ओर गौएँ जाती हैं, [illegible] गमन करते हैं, [illegible] हे अग्निदेव [illegible] स्तोताओं के लिए [illegible] अन्न प्रदान करें ॥७॥

४२६. न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥८॥

हे देवो ! [illegible] अर्यमा, मित्र और वरुणदेव [illegible] का तिरस्कार करके [illegible] मार्ग पर [illegible] करते हैं, वह [illegible] पाप [illegible] से दूर रहता है ॥८॥

॥इति [illegible] खण्डः॥

* * *

॥ सप्तविंशः खण्डः ॥

४२७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

हे स्वादिष्ट सोमदेव ! आप इन्द्र, मित्र, पूषा और भग देवताओं के लिए प्रवाहित हों ॥१॥

४२८. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२॥

हे सोमदेव ! आप अन्न को प्राप्त करने के लिए चारों-ओर कलश को पूर्ण करके सभी में प्रविष्ट हों । शक्ति-सम्पन्न होकर आप शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं । ऋण से मुक्त करने वाले आप शत्रुओं को नष्ट करने के लिए उन पर आक्रमण करने के लिए जाते हैं ॥२॥

४२९. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥३॥

हे सोमदेव ! विस्तृत समुद्र के समान पोषण करने वाले आप देवों के पिता स्वरूप सम्पूर्ण स्थानों में विद्यमान रहते हैं ॥३॥

४३०. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४॥

हे सोमदेव ! अश्व के समान (भली प्रकार से) स्वच्छ किये गये, शक्तिशाली आप बल एवं ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पात्रों में भरे रहें ॥४॥

४३१. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥

जैसे ज्ञान-सम्पन्न यह सोम जल (मिश्रित) होने पर आनन्द के लिए कलश में संयुक्त किया जाता है ॥५॥

४३२. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६॥

हे सोमदेव ! इस निचोड़ने के बाद हम आपकी विधिपूर्वक अर्चना करते हैं । हे पोषित सोम ! श्रेष्ठ राज्य के रक्षण के निमित्त शक्तिशाली योद्धा आप विरोधी सेना पर आक्रमण करने के लिए गमन करते हैं ॥६॥

यह मन्त्र एक प्रश्न के रूप में सम्बोधित है तथा पूर्ण उत्तर है मरुद्गण बताया है-

४३३. क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥७॥

सबको रक्षित करने वाले - (कल्याणकारी) ऐसे ये वीर, एक ही आवास में (एक साथ) निवास करने वाले श्रेष्ठ अश्वों से युक्त रुद्रपुत्रों का रूप में क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर- एक ही आवास (शरीर) में रहने वाले श्रेष्ठ अश्वों (इन्द्रियों) से युक्त मरुद्गण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान आदि पञ्च प्राण) शरीर संचालित करने में रुद्र (महाप्राण) के सहायक हैं ॥७॥

४३४. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥८॥

हे अग्निदेव ! आज हम यज्ञकर्म रूप के समान (कल्याणकारी), अश्व के समान गतिशील, आपके यश को बढ़ाने के लिए, हम भव्य हृदय-स्पर्शी स्तोत्रों का स्तवन करते हैं ॥८॥

४३५. आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुः सवम् ।
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥९॥

मन्त्रों का गायन करने वाले मेधावी तथा शक्तिशाली अभिषवकर्त्ता ने पैदा किए गए सोमरस रूपी अन्न (सोमरस) को प्राप्त कर लिया है । अतएव हे याजक ! उनके विजय प्राप्ति के लिए, आदि रक्षा करने की प्रार्थना करो ॥९॥

४३६. पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥१०॥

हे सोमदेव ! आप तेजस्वी, श्रेष्ठ धारा से युक्त भेड़ के बालों से निर्मित हुए, आप पूर्ववत् श्रेष्ठ ही हैं । आप (यज्ञशाला में) रखे हुए पात्र में प्रवाहित हो कर जाएँ ॥१०॥

॥इति त्रयस्त्रिंशः खण्डः॥

* * *

॥चतुस्त्रिंशः खण्डः॥

४३७. विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥

शत्रुओं का सर्वतोमुखी विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप हमें सभी प्रकार की अभीष्ट सम्पत्ति प्रदान करें, जिसको प्राप्त करने के लिए हम शक्तिशाली की स्तुति करते हैं ॥१॥

४३८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२॥

ऋतुओं के अनुकूल यज्ञ करने वाले, तेजस्वी, इन्द्रदेव नाम से जो विख्यात हैं, उनकी हम प्रार्थना करते हैं ॥२॥

४३९. ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥

अहि नामक असुर के संहार के लिए स्तोत्र मंत्रों से अर्चन किये जाने वाले इन्द्रदेव के बल को हम विख्यात करते हैं ॥३॥

४४०. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! ऋभु देवों ने आपके अश्वों के लिए (अनुकूल) रथ का निर्माण किया है । अनेक व्यक्तियों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! त्वष्टादेव ने आपके लिए चमकते हुए वज्र को बनाया है ॥४॥

४४१. शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५॥

सम्पत्तिवान् याजकगण से युक्त, धन-धान्य और ऐश्वर्य की कामना करते हैं । व्रतहीनों को उनके पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती है । अर्थात् ऐश्वर्य को स्पर्श करने में भी समर्थ नहीं होते ॥५॥

४४२. सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥

(हे मरुद्गणो !) गौएँ सर्वदा पवित्र, सभी प्राणियों को पोषण देने वाली एवं देवगण सदा पाप-रहित होते हैं ॥६॥

४४३. आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऐश्वर्य के साथ (हमारे यहाँ) आएँ । दूध से भरे थनों वाली गौएँ (आपके सोमरस में मिलने के लिए) मार्ग में रहती हैं ॥७॥

४४४. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! मधुरता से पूर्ण यज्ञ के समीप में (रहते हुए) हम धन-धान्य द्वारा पुष्ट होंगे और आपके पास रहते हुए आपकी (स्तुति) करें, हम आपका ध्यान करने में समर्थ हों ॥८॥

४४५. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥

श्रेष्ठ स्तोत्रवाले मरुद्गण ! इस पूज्य इन्द्रदेव की अर्चना करते हैं। वे कीर्तियुक्त, युवा इन्द्रदेव शत्रुओं का वध करने वाले हैं ॥९॥

४४६. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१०॥

हे विवेकवान मनुष्यो ! वृत्र का वध करने में सर्वोत्तम ज्ञानवान इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्रों का गायन करें, जिन स्तोत्रों को वे आनन्दित होकर सुनते हैं ॥१०॥

॥इति चतुस्त्रिंश: खण्ड:॥

* * *

॥पञ्चत्रिंश: खण्ड:॥

४४७. अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड्न सुमद्रथः ॥१॥

[illegible] देवताओं के प्रति ले जाने वाले, [illegible] हवि से परिपूर्ण, देवताओं को [illegible] पहुँचाने वाले अग्निदेव [illegible] हैं ॥१॥

४४८. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥

अग्निदेव आप [illegible] हुए हैं ॥२॥

४४९. भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३॥

[illegible] अग्निदेव [illegible] ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३॥

४५०. विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ॥४॥

सम्पूर्ण [illegible] स्थान पर [illegible] करते हैं ॥४॥

४५१. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥५॥

यह उषा अपनी बहिनरूपी रात्रि के अन्धकार को अपनी रश्मियों से दूर करती है और उत्तम प्रकाश से अपने मार्ग को भी प्रकाशित करती है ॥५॥

४५२. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥

(ऋषि) [illegible] कहते हैं कि [illegible] की कामना से हम समस्त भुवनों को अपने अनुशासन में [illegible] हैं। इस कार्य में इन्द्र और सभी देवगण हमारी मदद करते हैं ॥६॥

४५३. वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे छोटे-छोटे नाले [illegible] में मिल जाते हैं, उसी प्रकार आपसे मिलने वाले दान हमें प्राप्त होते हैं ॥७॥

४५४. अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥

इस स्तुति से (प्रसन्न) देव [illegible] हमें प्राप्त हों। उत्तम पराक्रमी सन्तानों से युक्त होकर हम आनन्दपूर्वक सौ वर्ष जीवित रहें ॥८॥

७५५. ऊर्जो मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] पौष्टिक बनायें ॥९॥

७५६. इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥

इन्द्रदेव समस्त विश्वब्रह्माण्ड के शासक हैं ॥१०॥

॥इति पञ्चत्रिंशः खण्डः॥

* * *

॥षट्त्रिंशः खण्डः॥

७५७. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

[illegible] ॥१॥

७५८. अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः ॥२॥

[illegible] ॥२॥

७५९. एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये
मंहिष्ठं वाजसातये ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] ॥३॥

७६०. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि भूरि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो
विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥४॥

[illegible] ॥४॥

४६१. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह
इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥५॥

हमने अग्नि को ध्यानपूर्वक स्थापित करके प्रकाशित किया है। उस दिव्य तेजस्वी ज्योति की हम आराधना करते हैं। भगवान् और नवीन यजमान की यज्ञवेदी पर आकर हमारे मनोरथ पूर्ण करने वाले इन्द्र और वायुदेव की हम प्रार्थना करते हैं। इससे हमारी स्तुति निश्चित ही उनके पास पहुँचेगी। इससे वे सब [illegible] देवों तक पहुँचाने के उद्देश्य से सम्पन्न हो रहे हैं ॥५॥

४६२. प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥६॥

एवयामरुत् नामक ऋषि द्वारा की गई स्तुतियाँ मरुद्गणों वाले, इन्द्रदेव आदि [illegible] विष्णुदेव के पास हों। [illegible] ॥६॥

४६३. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो
न सयुग्वभिः । धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥७॥

हरितवर्ण, शोधित सोमरस अपने तेज से शत्रुओं का नाश करता है। अन्धकार को दूर करने वाली सूर्य रश्मियों जैसी इस सोमरस की उज्ज्वल दिखाई पड़ने वाली धार चमकती है। शोधित तेजस्वी सोमरस [illegible] तथा [illegible] के अनेक रूप धारण करता है ॥७॥

[टिप्पणी के अनुसार [illegible]]

४६४. अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं
रत्नधामभि प्रियं मतिम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८॥

विवेकपूर्ण कर्म करने वाले, सत्यप्रेरक, रत्नधारक, सबके प्रिय एवं मेधावी उन सविता देवता की हम आराधना करते हैं, जिनका प्रकाश पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक तीव्र गति से फैलता है। [illegible] स्वर्णिम किरणों वाले [illegible] प्रकाश फैलाते हैं ॥८॥

४६५. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं
न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥९॥

धनदाता, बलवान् [illegible] हम स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ यज्ञ वाले [illegible] देवों की कृपा की कामना से [illegible] अग्निदेव भी [illegible] आहुति प्रदान करने से प्रदीप्त होते हैं ॥९॥

४६६. तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

[illegible] ॥१०॥

[illegible] ॥१०॥

॥इति [illegible] खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि—[illegible]

देवता—[illegible]

छन्द—[illegible]

॥इत्यैन्द्रपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥पावमानं पर्व ॥

॥अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

४६७. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! आपके पोषक रस का जन्म द्युलोक में हुआ है । यहाँ आप होने वाले कल्याणकारी सुख और महान् अन्न (आपकी कृपा से) हम पृथ्वी पर प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

४६८. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२ ॥

हे सोमरस ! आप इन्द्रदेव के पीने के लिए निचोड़े गये हैं । अतः अत्यन्त स्वादिष्ट, हर्षदायक धारा से क्षरित हों ॥२ ॥

४६९. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥३ ॥

हे सोम ! आप उद्गाताओं के लिए तेजस्वी धारा से कलश में प्रविष्ट हों और मरुद्गणों से पोषित इन्द्रदेव के लिए समस्त रसों को बढ़ाने वाले सिद्ध हों ॥३ ॥

४७०. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥४ ॥

हे सोमदेव ! देवताओं को आकृष्ट करने वाला, पापी एवं दुष्टों का नाश करने वाला आपका दिव्य रस अत्यन्त श्रेष्ठ है । [illegible] ॥४ ॥

४७१. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥५ ॥

[illegible] ॥५ ॥

४७२. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥६ ॥

अत्यन्त मधुर हे सोम ! आप [illegible] के लिए कलश में [illegible] हों ॥६ ॥

४७३. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥७ ॥

[illegible] ॥७ ॥

४७४. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८ ॥

हे हरितवर्ण सोम ! आप बल और शक्ति के साधनरूप हैं । [illegible] के पीने के निमित्त आप कलश में [illegible] हों ॥८ ॥

४७५. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥९ ॥

[illegible] ॥९ ॥

४७६. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः। स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१०॥

बुद्धि को बढ़ाने वाला यह सोम, सोमरस निकालने के दो फलकों (द्युलोक एवं पृथ्वी) के मध्य में स्थित होकर, ऋत्विजों द्वारा शोधित होकर किसी तक पहुँचाया जाता है ॥१०॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः॥

४७७. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्। सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

आनन्ददायक सोम अभिषुत होकर हमारे यज्ञ में अन्न और बल प्रदान करने हेतु स्थिर होता है ॥१॥

४७८. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः। वनानि महिषा इव ॥२॥

बुद्धि को प्रोत्साहित करने वाला यह सोमरस, पानी की लहरों के समान तथा जलकामित वन के पशुओं के वन में जाने के समान, पात्रों में गिराया जाता है ॥२॥

४७९. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि ॥३॥

हे अभिषुत सोम! आप श्रेष्ठ बल को बढ़ाने वाले हैं। लोगों में हमें यशस्वी बनाएँ तथा आप हमारे सभी शत्रुओं (रिपुओं) को नष्ट करें ॥३॥

४८०. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे। पवमान स्वर्दृशम् ॥४॥

हे पवित्र होने वाले, बलवर्द्धक सोम! आप तेजस्वी प्रकाश युक्त हैं, देखने वाले तथा तेजस्वी हैं। इस यज्ञ में हम आपको बुलाते हैं ॥४॥

४८१. इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः। सृजदश्वं रथीरिव ॥५॥

यज्ञकर्म को अभिप्रेरित करने वाला, कमनीय सोमरस ज्ञानी लोगों की स्तुति के साथ, छलनी में छाना जाता है। जैसे रथ चलाने के लिए घोड़े को (सारथी द्वारा) चलाया जाता है, वैसे पवित्र यह सोम कलश में भरा जाता है ॥५॥

४८२. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया। शुक्रासो वीरयाशवः ॥६॥

बल और स्फूर्ति बढ़ाने वाला यह सोमरस तेजस्वी है। गाय, घोड़े तथा वीर पुत्रों की कामना करने वालों के द्वारा अभिषुत किया जाता है। जो याजक इसका अभिषवण (निष्कासन) करते हैं, यह उनकी गाय, घोड़े, वीर पुत्र आदि कामनाओं की पूर्ति करता है ॥६॥

४८३. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः। वायुमा रोह धर्मणा ॥७॥

हे दिव्य गुण वाले सोम! आप इन्द्र के लिए, पात्र में जाएँ। आपका आनन्ददायी रस इन्द्रदेव को प्राप्त हो। आप नियमानुसार से वायु से मिल जाएँ ॥७॥

४८४. पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्। ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥८॥

पवित्र होने के बाद इस सोमरस ने दिव्यलोक में विद्यमान, चमकते प्रकाशित करने में समर्थ महान् वैश्वानर ज्योति को बिजली के समान प्रकट किया ॥८॥

४८५. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा। मधो अर्षन्ति धारया ॥९॥

अभिषुत होने (निचोड़ने) के बाद [illegible] के द्वारा परिष्कृत [illegible] हुए जाता है ॥९॥

४८६. परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१०॥

दूरदर्शी, [illegible] का पोषण करने वाला, नदी की लहरों (जल) में मिला हुआ, यह सोम, [illegible] (कलश) में स्थित होता है ॥१०॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

४८७. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥

[illegible] देवताओं को प्राप्त होने वाला सिद्ध है ॥१॥

४८८. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥२॥

[illegible] पवित्र होने के बाद [illegible] सभी शत्रुओं (रिपुओं) का दमन करता है। उस सोम की [illegible] से स्तुति करते हैं ॥२॥

४८९. अविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥३॥

यह परिष्कृत सोमरस, कलशों में [illegible] सुशोभित होता है, जो इन्द्रदेव की [illegible] के लिए [illegible] किया जाता है ॥३॥

४९०. असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥४॥

[illegible] ॥४॥

४९१. प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥५॥

[illegible] काली त्वचा (खाल) को दूर करते हुए, [illegible] में उसी प्रकार प्रवेश करता है, जिस प्रकार गौएँ [illegible] ॥५॥

४९२. अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥६॥

हे सोमदेव ! [illegible] जिस प्रकार शत्रुओं का दमन करते हुए आप [illegible] होते हैं, उसी प्रकार [illegible] का दमन करें ॥६॥

४९३. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

हे सोम ! [illegible] जिस धारा (प्रवाह) से आपने सूर्यदेव को आलोकित किया, उसी धारा (प्रवाह) से [illegible] होकर प्रवाहित करें ॥७॥

४९४. स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥८॥

हे सोमदेव ! [illegible] वृत्र को मारने के लिए, इन्द्रदेव को [illegible] और (विस्तृत) [illegible] कलश में [illegible] ॥८॥

४९५. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥९॥

हे सोम ! इन्द्रदेव के [illegible] कलश में [illegible] । आपका पान कर युद्ध में शत्रुओं के सभी नगरों को नष्ट करने के लिए, इन्द्रदेव को सामर्थ्य प्रदान करता है ॥९॥

४९६. परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१०॥

हे सोम ! [illegible] । आपका पवित्र [illegible] छन्नों के बाद कलश में स्थिरता प्राप्त करें ॥१०॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

४९७. अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥१॥

मित्र के समान [illegible] हरितवर्ण सोम, [illegible] प्रकाशित होता है, जिस प्रकार से सूर्य [illegible] ॥१॥

४९८. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२॥

हे सोमदेव ! [illegible] हम धारण करते हैं ॥२॥

४९९. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥३॥

हे सोमयाजी ! इन्द्रदेव के लिए [illegible] निचोड़े गये सोमरस को पवित्र [illegible] से लाओ ॥३॥

५००. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

निचोड़े गये सोमरस की [illegible] ॥४॥

५०१. आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥५॥

हे सोम ! आप हजारों प्रकार की श्रेष्ठ, [illegible] हमें प्रदान करें ॥५॥

५०२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥६॥

[illegible] सूर्य को प्रकट करने के लिए, [illegible] प्राप्त किया ॥६॥

५०३. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥७॥

हे तेजस्वी सोम ! [illegible] ॥७॥

५०४. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥८॥

हे सोमदेव ! आप बलशाली और तेजस्वी हैं । [illegible] धारण किये रहते हैं ॥८॥

५०५. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥९॥

हे सोम ! आप ज्ञानी ऋत्विजों के द्वारा अभिषुत होकर पोषक अन्न के लिए धारा के रूप में शुद्ध हों और गोदुग्ध के साथ मिलकर प्रवाहित हों ॥९॥

५०६. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१०॥

आनन्ददायक, देवताओं द्वारा अभीष्ट हे सोम ! आप हमें बलयुक्त करने वाले और छननी से [illegible] धारा के रूप में शोधित हों ॥१०॥

५०७. अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः । मन्दान इद्वृषायसे ॥११॥

हे सोमदेव ! आप अपने श्रेष्ठ कार्य से महानता प्राप्त होकर, [illegible] की वृद्धि करते हैं और आनन्द प्रदान कर शक्ति बढ़ाते हैं ॥११॥

५०८. अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२॥

विशिष्ट बुद्धिसम्पन्न, [illegible] हितकारी होकर शुद्ध किया हुआ, यह सोमरस जलों में मिलकर प्रचुर अन्न (पोषण) प्रदान करता हुआ चैतन्य होता है ॥१२॥

५०९. प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥१३॥

हे सोम ! प्रचुर सम्पदा की प्राप्ति के लिए आप कलश में रखे जाते हैं । आपके तेज को धारण करने वाले अजेय [illegible] ॥१३॥

५१०. अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥

यह सोम शत्रुओं को नष्ट करता [illegible] इन्द्रदेव के पास जाता हुआ शोधित होता है ॥१४॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

५११. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

सोमरस पवित्र होकर, जल में मिलकर, [illegible] कलश में प्रवाहित होता है । [illegible] दिव्य [illegible] अलंकृत होता हुआ, यह सोमरस प्रवाहित होता है ॥१॥

५१२. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वाऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

हे ऋत्विजो ! मनुष्यों के लिए हितकारी, [illegible] द्वारा शोधित, [illegible] यह सोमरस देवों के लिए उत्तम हवि है ॥२॥

५१३. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥३॥

पत्थरों द्वारा अभिषुत यह सोमरस [illegible] के कलश में रखा जाता है । [illegible] जैसे [illegible] ॥३॥

५१४.प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

यह सोमरस देवताओं के पान करने पात्रों में गिराया जाता है। हर्ष उत्पन्न करने के साथ-साथ यह सोम स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला भी है। यह सोमरस जल से मिलकर मधुर रस टपकाने वाले कलश में स्थित हो ॥४॥

५१५.सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥

पाषाणों द्वारा अभिषुत होता हुआ सोम, पवित्र होकर नीचे कलश में प्रवाहित होता है। यह सोम वेगपूर्वक घोड़े की आनन्ददायक धारा से पात्र में जाता है ॥५॥

५१६.तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥६॥

हे सोम ! हमें आपकी मित्रता का लाभ प्राप्त हो। जो अनेक प्रकार के दुष्ट व्यक्ति मुझे पीड़ा पहुँचाते हैं, उन सबको आप नष्ट करें ॥६॥

५१७. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥

श्रेष्ठ कर्मों द्वारा निकाले गये, पवित्र हुए हे सोम ! शुद्ध किये जाने वाले आप अन्तरिक्ष में शब्द करते हुए प्रवाहित होते हैं और लोगों को विपुल स्वर्णिम धन प्रदान करते हैं ॥७॥

५१८. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

मनुष्यों के हितैषी, प्रज्ञावान, आनन्ददायक, शोधन करने से नीचे प्रवाहित होने वाला, आनन्ददायी सोम, जल से भरे हुए पात्र में ऊपर युक्त होकर एकत्रित होता है ॥८॥

५१९. पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९॥

जागरूक, प्रिय और पवित्र सोम, शोधन पात्र से शुद्ध होकर नीचे गिरता है। हे अंगिरस् (अग्नि) की सामर्थ्य से श्रेष्ठ सोम ! आप बुद्धिमान होकर हमारे यज्ञ को मधुर रस से सिञ्चित करें ॥९॥

५२०. इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०॥

हर्षदायक, अभिषुत किया हुआ सोम, मरुत्वान् इन्द्रदेव के लिए प्रवाहित होता है। यह सोम सहस्रों धाराओं के रूप में छन्ने से युक्त होता है, उसके बाद पुनः ऋत्विग्गण मनों से इसका शोधन करते हैं ॥१०॥

५२१. पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११॥

स्तोत्रों से पवित्र हुए, विशिष्ट अन्न (बलवान्) से युक्त, देवों को आनन्द देने वाले हे सोम ! समुद्र आदि विशिष्टताओं से युक्त होकर आप उत्तम पात्र में स्थित हों ॥११॥

५२२. पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥१२॥

मरुद्गणों का मित्र, हर्ष प्रदान करने वाला, इन्द्र हेतु, बुद्धि और अन्न (ऐश्वर्य) से युक्त, वेग से प्रवाहित होने वाला तथा शुद्ध होने वाला सोमरस छलनी से नीचे गिरता है ॥१२॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः॥

५२३. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

हे सोम! मनुष्यों द्वारा पवित्र किये जाते हुए, आप शीघ्र ही पात्र में स्थित हों तथा यजमान को अन्न-बल प्रदान करें। वाजिमान् घोड़े की भाँति शुद्ध करते हुए याजक आपको यज्ञस्थल में ले जाते हैं ॥१॥

५२४. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥

कवि उशना के समान स्तोत्रों का पाठ करने वाले सोमदेव, देवताओं के जन्म-वृत्तान्तों का वर्णन करते हैं। महान् व्रती, तेजस्वी और पवित्र करने वाला श्रेष्ठ सोमरस, शब्द करते हुए कलश में स्थापित होता है ॥२॥

५२५. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३॥

यज्ञकर्म का भार धारण करने वाले, तीन वेदों (ऋक्, यजु, साम) के मन्त्रों से स्तोता सोम की स्तुति करते हैं। गौओं के पास जाने वाले बैल (वृषभ आदि) की तरह अनेक सुखों की इच्छा करने वाले स्तोतागण सोम के पास पहुँचते हैं ॥३॥

५२६. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

सोने से शोधित किया हुआ, मद का दाता, दिव्य सोमरस देवताओं को प्रदान किया जाता है। अभिषुत किया हुआ यह सोमरस, पशुशाला में जाने वाले होता अथवा गोष्ठ में जाने वाले गौओं की भाँति पात्र में स्थिर हो रहा है (पवित्र हो रहा है) ॥४॥

५२७. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

श्रेष्ठ बुद्धि, द्युलोक, पृथ्वीलोक, अग्नि, सूर्य, इन्द्र तथा विष्णु आदि देवों को उत्पन्न करने वाला दिव्य सोम शुद्ध किया जा रहा है ॥५॥

५२८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥

तीन स्थानों [illegible] में निवास करने वाले, [illegible] सोम की [illegible] से [illegible] की [illegible] स्तुति करते हैं। जल में [illegible] की भाँति जल में मिलकर सोम [illegible] को धन और [illegible] प्रदान करता है ॥६॥

५२९. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥७॥

[illegible] सोम [illegible] हुए [illegible] ॥७॥

५३०. कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥

[illegible] हरित सोम पवित्र होता है। [illegible] ॥८॥

५३१. एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥

हे [illegible] इन्द्र [illegible] यह सोम मधुर और [illegible] में मिलता है। [illegible] सोम [illegible] होने वाले यज्ञ में [illegible] होता है ॥९॥

५३२. पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥

हे मधुर सोम ! [illegible] पवित्र होते हैं। [illegible] (सोम) [illegible] में [illegible] रहते हैं ॥१०॥

॥इति षष्ठः खण्डः॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः॥

५३३. प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

सेना के [illegible] सोम [illegible] हुए, रथों के आगे चलता है, जिससे इनकी सेना हर्षित होती है। यह सोम [illegible] के लिए [illegible] हुए [illegible] को धारण करता है ॥१॥

५३४. प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२॥

हे सोम ! [illegible] मधुर धाराएँ, [illegible] से [illegible] में [illegible] होती हैं। [illegible] हुए, [illegible] सूर्य [illegible] को धारण करते हैं ॥२॥

५३५. प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवातामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥३॥

मनुष्यो ! देवताओं [illegible] सोमरस [illegible] को धारण करते हुए [illegible] । [illegible] की छलनी से हम स्वादु सोम को प्रेरित करते हुए देवताओं को अर्पित करें ॥३॥

५३६. प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥४॥

द्युलोक एवं पृथ्वीलोक को उत्पन्न करने वाले, [illegible] देवताओं के [illegible] इन्द्रदेव के समीप पहुँचते हुए [illegible] वैभव हमें [illegible] प्रदान करने के लिए आए हैं ॥४॥

५३७. तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥

[illegible] की कामना से युक्त [illegible] के द्वारा [illegible] सोम को तैयार करती है, [illegible] । [illegible] इस सोम में [illegible] मिलाया जाता है ॥५॥

५३८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥

[illegible] सोमरस को [illegible] करती हैं । [illegible] सोम को [illegible] करती है । वह [illegible] के समान [illegible] में स्थित होता है ॥६॥

५३९. अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७॥

[illegible] सूर्य की किरणें [illegible] (सूर्य) की शोभा बढ़ाती हैं । [illegible] स्पर्धा करती हैं । जिस प्रकार पशु [illegible] के लिए [illegible] । उसी प्रकार [illegible] सोम कलश में रहता है ॥७॥

५४०. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८॥

इन्द्रदेव को [illegible] वाला, [illegible] सोम [illegible] बढ़ाने के लिए, [illegible] में [illegible] है । [illegible] राक्षसों को नष्ट करता है तथा [illegible] ॥८॥

५४१. अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥९॥

हे सोम! पवित्र हुई धारा से आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। जिस प्रकार प्रकृति के मूल आधार सूर्यदेव वायु की कामना करते हैं, उसी प्रकार आप (अभिषवित) मनुष्य कलश में स्थापित होकर बुद्धिशाली इन्द्रदेव को प्राप्त हों और उन्हें पुरुषार्थ प्रदान करें ॥९॥

५४१. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥

महान् शक्तिशाली दिव्य सोम द्वारा महान् कार्य सम्पादित होते हैं। यही जल का गर्भ (धारण करने वाला) और देवताओं को संरक्षण देने वाला है। शुद्ध होकर यही इन्द्रदेव को सामर्थ्य प्रदान करता है और यही सूर्यदेव में तेज स्थापित करता है ॥१०॥

५४२. असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११॥

जिस प्रकार युद्ध में घोड़े छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार सबकी स्तुति करने योग्य, सबसे पहले स्तुत्य सोम [illegible] हुआ, स्तोताओं के ज्ञान [illegible] के रूप में निर्मित होता है। दस अँगुलियाँ सोम को [illegible] स्थापित करती हैं ॥११॥

५४३. अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥

पानी की तीव्रगामी तरंगों के समान, बोलने में शीघ्रता करने वाले स्तोतागण, स्तुतियों को सोम के पास प्रेरित करते हैं। उत्साह और कामना वाली नमनशील स्तुतियाँ कामना करने वाले सोम के निकट जाती हैं और उसी में समाहित हो जाती हैं ॥१२॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

॥ अष्टमः खण्डः ॥

५४४. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

हे मित्रो! आप आगे जीते हुए, आनन्द प्रदान करने वाले, इस सोमरस के निकट जाने की इच्छा वाले, लम्बी जीभ वाले कुत्ते जैसे दुष्ट को नष्ट करें ॥१॥

५४५. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२॥

सर्वपोषक, ऐश्वर्यरूप, [illegible] सोम छनते हुए नीचे कलश [illegible] में गमन करते हैं। ये सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी [illegible] दोनों लोकों (द्यावापृथिवी) को प्रकाशित करते हैं ॥२॥

५४६. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥३॥

मधुर और हर्ष प्रदायक सोमरस पवित्र होकर इन्द्रदेव के लिए तैयार होता है। हे सोम! आपका यह आनन्ददायक रस देवताओं के पास पहुँचे ॥३॥

५४८. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४॥

श्रेष्ठ मार्ग को ठीक ढंग से जानने वाले, मित्र के समान, पाप रहित, निचोड़े हुए, ध्यान योग्य, स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले, आनन्दप्रद यह सोमरस हमारे लिए शुद्ध किया जाता है ॥४॥

५४९. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥५॥

सैकड़ों द्वारा प्रशंसित, हजारों का पोषक, विशेष तेजस्वी, बल बढ़ाने वाला धन यह सोम हमें प्रदान करे ॥५॥

५५०. अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥६॥

गौएँ जिस प्रकार बछड़ों को चाटती हैं, उसी प्रकार द्रोह न करने वाली जल धाराएँ, इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले और चाहने योग्य सोम को चाटा करती हैं ॥६॥

५५१. आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७॥

जिस प्रकार योद्धागण धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं, उसी प्रकार, मनुष्यों में अग्रणी, पूजन की कामना वाले ऋत्विग्गण, विक्रमशाली, पूजनीय सोम के पोषण के लिए उसे पवित्र गाय के दूध से आच्छादित (मिश्रित) करते हैं। (उसे अपेक्षित पेय तैयार करते हैं) ॥७॥

५५२. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥८॥

कांत और भूरे रंग के सुन्दर सोम को भेड़ों के बालों की छलनी से छानते हैं। यह सोम इन्द्र आदि देवताओं के निकट अपने हर्ष-कारक गुणों के साथ जाता है ॥८॥

५५३. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥९॥

सोमित होते समय सोम का यह निन्दा-संबंधी मनुष्य न सुने। भृगुओं ने जिस प्रकार मख नाम के राक्षस को भगा दिया था, उसी प्रकार कुत्ते को यहाँ स्थान से हटाएँ ॥९॥

॥इति अष्टमः खण्डः॥

* * *

॥नवमः खण्डः॥

५५४. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

[illegible] होकर [illegible] है । [illegible] ॥१॥

५५५. अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥२॥

दूसरों के द्वारा [illegible] सोमरस, स्तोताओं के [illegible] । [illegible] ॥२॥

५५६. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥३॥

[illegible] ॥३॥

[ऋग्वेद के [illegible] ।]

५५७. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥४॥

[illegible] ॥४॥

५५८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥५॥

[illegible] ॥५॥

५५९. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभिः ॥६॥

[illegible] ॥६॥

५६०. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥७॥

वायुलोक में स्थित इस सोम को इन्द्रादि देवों [illegible] करते हैं । [illegible] वर्धित होता है, जो अन्न [illegible] के [illegible] (...) [illegible] करता है ॥८॥

[टिप्पणी [illegible] जिनके [illegible] है । [illegible]]

५६१. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥१८॥

हे सोम ! आप [illegible] इन्द्रदेव के पीने के लिए [illegible] । [illegible] ऐश्वर्ययुक्त करें ॥१८॥

५६२. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥१९॥

[illegible] निचोड़ा गया है । [illegible] है । [illegible] किया जाता है ॥१९॥

५६३. प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥२०॥

मधुर सोमरस देवताओं के लिए [illegible] है, जिस प्रकार [illegible] के लिए दुग्ध [illegible] हैं । [illegible] करती हैं ॥२०॥

५६४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥२१॥

[illegible] सोमरस को [illegible] हैं, जिसका [illegible] देवगण [illegible] । [illegible] सोम को [illegible] करते हैं ॥२१॥

५६५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥२२॥

हे [illegible] सोम ! आपका पवित्र [illegible] । [illegible] नहीं हुआ है [illegible] । [illegible] समर्थ होता है ॥२२॥

॥इति नवमः खण्डः॥

* * *

॥दशमः खण्डः ॥

५६६. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

शुद्ध होकर हुआ, अभिषव द्वारा ... की वृद्धि करने वाला, यह इन्द्रिय सोमरस तेजस्वी इन्द्रदेव को प्राप्त हो ॥१॥

५६७. प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२॥

हे सोम ! स्तुतियों से प्रसन्न होकर आप, इन्द्रदेव के निमित्त कलश में क्षरित हों । हमें तेजोयुक्त एवं बलवर्धक सोम से परिपुष्ट करें ॥२॥

५६८. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३॥

हे मित्रो ! (ऋत्विजो!) आप सब बैठें । सोम को शोधित करते हुए स्तुति करो । जिस प्रकार शिशु को आभूषणों से सजाते हैं, उसी प्रकार यज्ञ से, श्रेष्ठ तत्त्वों से इस सोमरस को विभूषित करो ॥३॥

५६९. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥४॥

आनन्दवर्धक, शोधित ... हे मित्रो ! इसकी प्रार्थना करो । शिशु को जिस प्रकार से अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार यज्ञों और स्तुतियों से आप इसे पवित्र बनाएँ ॥४॥

५७०. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥५॥

यह सोम, यज्ञ का प्राण तथा महान् जल का पुत्र है । यह यज्ञ को प्रकाशित करने वाले, अपनी ... को प्रेरित करता है । यह सभी हविष्यान्नों (आहुतियों) में ... होता हुआ, द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में व्याप्त रहता है ॥५॥

५७१. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥६॥

हे सोम ! देवताओं के निमित्त, ... आप कलश में प्रवाहित हों । आनन्ददायक हे सोम ! आप हमारे इस कलश में आकर स्थित हों ॥६॥

५७२. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥

पवित्र होने वाला, ... के पश्चात् धारा रूप में ... होने वाला यह सोम, ... के शब्द वाले ... से छनता जाता है ॥७॥

५७३. प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥८॥

शुद्ध होने वाले ... सोम के निमित्त (हे स्तोतागण) स्तुति करो । ... से प्रसन्न होकर जिस प्रकार दास को धन प्रदान किया जाता है, उसी प्रकार स्तुति से सोम को प्रसन्न करने के लिए विशेष स्तुति करो ॥८॥

५७४. गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥९॥

... के पश्चात् हे ... सोम ! आप हमें गौओं-घोड़ों से युक्त धन प्रदान करें । तत्पश्चात् आप गो-दुग्ध में मिलकर ... वर्ण (श्वेत वर्ण) वाले बन जाएँ ॥९॥

५७५. अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥१०॥

हे सोम ! ... धन देने वाले हो, ... हमें प्राप्त हो, इसलिए हमारी वाणी आपकी प्रार्थना करती है । हम आपके ... को गो-दुग्ध से आच्छादित करते हैं ... ॥१०॥

५७६. पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११॥

[illegible] ॥११॥

५७७. परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
अभि वाणीरृषीणां सप्ता नूषत ॥१२॥

[illegible] ॥१२॥

॥इति दशमः खण्डः॥

* * *

॥एकादशः खण्डः॥

५७८. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

हे सोम ! [illegible] ॥१॥

५७९. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥२॥

[illegible] ॥२॥

५८०. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥३॥

हे [illegible] ॥३॥

५८१. एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥४॥

[illegible] ॥४॥

५८२. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥५॥

[illegible] ॥५॥

५८३. त्वं ह्याङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥६॥

हे पवित्र सोम ! [illegible] ॥६॥

५८४. एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥७॥

[illegible] ॥७॥

५८५. य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ।
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज[१] ॥९॥

[illegible] ॥९॥

१. [[illegible]]

॥इति एकादशः खण्डः॥

* * *

—ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— [illegible] मधुच्छन्दा वैश्वामित्र [illegible] ।

देवता – [illegible] ।

छन्द – [illegible] ।

॥इति पावमानपर्वाणि पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ आरण्यं पर्व ॥

॥अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

५८६. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१॥

हे वज्रधारी, देवेन्द्र ! आप हमें ओज एवं यश प्रदान करने वाला अन्न (पोषक तत्त्व) प्रदान करें । जो पोषक अन्न द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों को पोषण देते हैं, उन्हें हम अपने पास रखने की कामना करते हैं ॥१॥

५८७. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२॥

इन्द्रदेव ही समस्त जीवधारियों के स्वामी तथा सभी पदार्थरूप वसुओं (धनों) के राजा हैं, इसलिए दानशील व्यक्तियों को वे जीवनोपयोगी वसुएँ प्रदान करते हैं । वे श्रेष्ठ (लौकिक एवं दैविक) सम्पदा हमारी ओर प्रेरित करें ॥२॥

५८८. यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥३॥

तेजस्विता से पूर्ण जिन इन्द्रदेव का यह धाम स्वर्गलोक में तथा दानी जनों के बीच भी प्रसिद्ध है, उनका यह धाम उत्कृष्ट और सुखदायक है ॥३॥

५८९. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४॥

हे वरुणदेव ! उत्तमपाशों को हमसे ऊपर की ओर से, निम्न पाशों को नीचे की ओर से तथा मध्यम पाशों को शिथिल करके आप हमें मुक्त करें, ताकि हम आपके नियम के अनुसार निष्पाप (पवित्र) और कल्याणकारी जीवन जी सकें ॥४॥

५९०. त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

हे पवमान और शुद्ध (पवित्र) करने वाले सोम ! आपकी सहायता से हम जीवन संग्राम में विजयी बनकर शत्रुओं का दमन करें (सुखी हों) । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमें धन-सम्पन्न बनाएँ ॥५॥

५९१. इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥६॥

हे देवगण ! आप हम अकेले (विशिष्टता-निष्ठावान) को ही बलिष्ठ बनाएँ और हमें ही श्रेष्ठ कार्यों में सफलता प्रदान करें ॥६॥

५९२. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित्परिस्रव ॥७॥

हमें ऐश्वर्यशाली बनाने वाले हे सोम ! हम लोग जिनके लिए यज्ञ करते हैं, उन इन्द्र, मरुद्गण और वरुणदेवों के निमित्त रस रूप में भलीप्रकार परिशुद्ध हों ॥७॥

५९३. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥८ ॥

इस (सोम) की सहायता से मनुष्यों के लिए आवश्यक सभी प्रकार के धन-धान्य हमें प्राप्त हों । हम इनके सेवन हेतु उपयोग की कामना करते हैं ॥८ ॥

५९४. अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९ ॥

मैं (अन्नदेव) सनातन यज्ञ के द्वारा देवताओं से भी पहले उत्पन्न हुआ हूँ । जो मुझे याचकों को प्रदान करते हैं, वे निश्चय ही उनकी रक्षा करते हैं । केवल स्वयं ही, मेरा उपभोग करने वाले पुरुषों को तो, मैं ही खा जाता हूँ ॥९ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

५९५. त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! अनेक रंगों वाली गौओं में (काले, लाल आदि रंग की गौओं में) दीप्तिमान श्वेत दुग्ध को आपने स्थापित किया है । यह आपकी अद्भुत सामर्थ्य ही है ॥१ ॥

५९६. अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२ ॥

(वृष्टि जल से) सम्पन्न उषा को प्रकाशित करने वाले सूर्य ही अग्रणी (प्रमुख) हैं । यही अन्नदाता हैं । जल के सहायक मेघ, जगत् को अन्नादि पोषण देने की इच्छा से गर्जन करते हैं । मायावी (ज्ञान सम्पन्न) देवों ने, अपनी माया (कुशलता) से जगत् का सृजन किया । निरीक्षण करने वाले पितरों (पालनकर्ता देवों) ने गर्भ स्थापित किये (जिस संदर्भ में— जगत्-पोषक रश्मियों ने जलवाष्पों में गर्भ स्थापित किये) अथवा अन्न की वर्षा के लिए गर्भ की तरह धारण किया ॥२ ॥

५९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥३ ॥

वज्रधारी, सोने के आभूषणों से अलंकृत, इन्द्रदेव के संकेत मात्र से ही रथ के घोड़े रथ में एक साथ जुड़ जाते हैं ॥३ ॥

[इन्द्र के रथ में अश्व और वेदरूप वाणी से जोड़े हैं, जो संकेत मात्र से रथ साथ जुड़ जाते हैं अर्थात् प्रकृति के सूत्र नियंत्रण में रहते हैं ।]

५९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के धन-लाभ वाले, छोटे-बड़े संग्रामों में, श्रेष्ठ रक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

५९९. प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥५ ॥

प्रथ (वसिष्ठ पुत्र) एवं सप्रथ (भरद्वाज पुत्र) के लिये अनुष्टुप् छन्द में स्तुति का पाठ करते तथा श्रेष्ठ हवि को अर्पित करते, वसिष्ठ ने रथन्तर साम को तेजस्वी धाता (सविता या विष्णु या ब्रह्मा) के पास से प्राप्त किया ॥५ ॥

६००. निपृत्स्वान्वायसा गह्वरं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥६॥

याज्ञिकों के पास शीघ्र (रथ) से क्षण (?) में पहुँचने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त यह दिव्य सोमरस तैयार किया गया है । इस हेतु हम आपका आवाहन करते हैं ॥६॥

६०१. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥७॥

हे अद्भुत ऐश्वर्य वाले इन्द्रदेव ! वृत्र (असुर) का संहार करने के लिए, आपने पृथ्वी को विस्तृत करने के साथ-साथ द्युलोक को भी स्थिर किया ॥७॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

६०२. मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१॥

द्युलोक वासी प्रजापालक परमेश्वर हमारे तेज, यश एवं पोषक तत्त्वों की वृद्धि करें । जिस प्रकार वे सर्वव्यापक अंतरिक्ष को धारित करते हैं, उसी प्रकार हमें भी स्थापित करें ॥१॥

६०३. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२॥

हे शत्रु-संहारक सोम ! आप दूध, अन्न, बल को धारण करें । अमृत तत्त्व के लिए द्युलोक में श्रेष्ठ अन्न (दिव्य पोषक तत्त्वों को अर्थात् उत्तम कीर्ति को) धारण करें ॥२॥

६०४. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमाततन्थोर्वाऽन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥

अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करने वाले एवं अंतरिक्ष को विस्तार देने वाले हे दिव्य सोम ! आपने ही पृथ्वी पर सभी ओषधियाँ, गौएँ एवं जल को उत्पन्न किया है ॥३॥

[सोम ओषधियों, जल, पृथ्वी-रश्मियों और गो-दुग्ध में पुष्ट होकर आरोग्यवर्द्धक बनता है ।]

६०५. अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥४॥

हम यज्ञ के हितैषी उन अग्निदेव की स्तुति करते हैं, जो यज्ञ को प्रकाशित करते हैं, देवताओं को बुलाने में समर्थ हैं एवं यजमानों को बहुमूल्य रत्न (वैभव) प्रदान करते हैं ॥४॥

६०६. ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥

वाणी के ज्ञाता ऋषियों ने, यह सर्वप्रथम गायत्री, त्रिष्टुप आदि इक्कीस छन्दों से युक्त वाणी को जाना । तत्पश्चात् उन वाणियों से उस की स्तुति की, जिस तेज से अरुण किरणें (सूर्य रश्मियाँ) प्रकट हुईं ॥५॥

[यहाँ सृष्टि के उत्पत्तिक्रम का वर्णन किया गया है ।]

६०७. समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥६॥

[illegible] ॥६॥

६०८. आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥७॥

[illegible] ॥७॥

६०९. पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥८॥

[illegible] ॥८॥

६१०. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥९॥

[illegible] ॥९॥

६११. यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशस्व्या३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१०॥

[illegible] ॥१०॥

[[illegible]]

६१२. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥११॥

[illegible] ॥११॥

६१३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥१२॥

वे (आत्मा) जन्म से ही [illegible], सर्वोत्कृष्ट तेजस्वी हैं, (पुरुष के शरीर में [illegible]) [illegible] हैं। [illegible] में आश्रय प्रदान करने वाली वाणी हैं। वे तीनों लोकों (भूः, भुवः, स्वः) में [illegible] हैं, अन्तरिक्ष [illegible] वायु हैं। [illegible] तेजस्वी सूर्य, [illegible] एवं हविवाहक (अग्नि) भी वे ही हैं ॥२॥

[(अग्नि = आत्मा) शरीर में आत्मा अग्नि है। [illegible] विभिन्न [illegible] को [illegible] गया है।]

६१४.पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥३॥

अग्निदेव, भूमि के [illegible], सूर्य मार्गों का, [illegible] देवगण [illegible] का संरक्षण करते हैं ॥३॥

[यह अग्नि [illegible] सूर्य के [illegible] संरक्षण करते हैं।]

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

६१५. भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥१॥

हे समिधाओं से प्रज्वलित अग्निदेव! आपकी तेजस्वी [illegible] मुख में जिह्वा [illegible] करती है। हे [illegible] अग्ने! आप हमें [illegible] धन एवं [illegible] तेज प्रदान करें ॥१॥

६१६.वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

वसन्त ऋतु निश्चय ही आनन्ददायक है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर भी आनन्ददायी हैं ॥२॥

६१७.सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥३॥

सहस्रों सिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष हैं। वे सारे ब्रह्माण्ड को आवृत करके भी दस अंगुल ऊपर रहते हैं ॥३॥

[दशांगुल [illegible] अर्थात् [illegible] के भी [illegible] है।]

६१८.त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥४॥

[illegible] विविध रूपों में, [illegible] विराट् पुरुष के एक पाद से यह सारा संसार [illegible] है। इसके तीन भाग [illegible] में व्याप्त हुए हैं ॥४॥

६१९. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५॥

जो वृद्धि का भूखी है और जो चलने वाली है, वह सब विराट् पुरुष ही है। इसके एक भाग में ये सभी प्राणी हैं, और तीन भाग अनन्त आकाश में स्थित हैं ॥५॥

६२०. तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥६॥

इस जगत् (लोक) का — इस संसार (ब्रह्माण्ड) का — जितना भी विस्तार है, उससे भी बड़ा वह विराट् पुरुष है। इस प्रकार और जगत् का वो स्वामी है। जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनका भी स्वामी है ॥६॥

६२१. ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥७॥

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस विराट् से समष्टि — जीव-समुदाय — उत्पन्न हुए। वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया ॥७॥

६२२. मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥८॥

हे द्यावा-पृथिवि! कल्याणकर्ता के रूप में हम आपको मानते हैं। आप हमें अपरिमित धन प्रदान करें। हे द्युलोक और पृथ्वीलोक! आप हमारे लिए सुखदायी बनकर हमें पापों से मुक्त करें ॥८॥

६२३. हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥९॥

हे इन्द्रदेव! (हरितवर्ण सोमरस पान से) आपकी मूँछें हरितवर्ण हो गई हैं और दोनों घोड़े भी हरितवर्ण हैं। हे उत्तम गौओं के पालक! विवेकीजन आपकी स्तुति करते हैं ॥९॥

६२४. यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि ॥१०॥

जो तेज सुवर्ण में है, गौओं में है तथा सत्य स्वरूप ब्रह्म में है, उस तेज से सम्पन्न होने की हम कामना करते हैं ॥१०॥

६२५. सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥११॥

हे महान् बल के स्वामी, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! हमें श्रेष्ठ यज्ञ के अनुरूप ऐश्वर्य, बल एवं सामर्थ्य प्रदान करें और युद्ध में शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति प्रदान करें ॥११॥

६२६. सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥१२॥

साँड़ों और बछड़ों सहित, अनेक रूप वाली, अनेक रूप देखभाली हे गौओं! तुम हमारे पास आओ। यह महान् लोक तुम्हारे वास के योग्य हो, यह जल तृप्तिकारक होकर तुम्हें प्राप्त हो ॥१२॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥पञ्चमः खण्डः ॥

६२७.अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें उत्तम आयु प्रदान करें, हमें अन्न और बल से पूर्ण करें तथा दुःख प्रदान करने वाले शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥१ ॥

६२८.विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥२ ॥

महान् तेजस्वी सूर्यदेव मधुर भाव से सोमपान करें, याजकों को अविच्छिन्न आयु प्रदान करें । वे सूर्यदेव वायु से प्रेरित रश्मियों के माध्यम से सम्पूर्ण जगत् का पोषण करते हैं और उसे आत्मा आदि से युक्त करके विविध रूपों में प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

६२९.चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३ ॥

तेजस्वी, स्थावर जंगम की आत्मारूपी सूर्यदेव, दैवी शक्तियों के अद्भुत तेज के समूह के रूप में उदित हो गये हैं । इन सूर्यदेव ने मित्र, वरुण आदि देवों के चक्षु रूप में उदित होकर द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ॥३ ॥

६३०.आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४ ॥

गतिमान् ये तेजस्वी सूर्यदेव उदित हो गये हैं । उन्होंने पहले से माता पृथ्वी को और पिता स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष को व्याप्त किया है ॥४ ॥

[सूर्य क्षितिज में उदित होकर आकाश रूप स्वः पहुँचा है, उसी का आलंकारिक वर्णन यहाँ किया है ।]

६३१.अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५ ॥

इन सूर्यदेव का प्रकाश (अन्तरिक्ष) आकाश में रश्मियों के रूप में संचरित होता है । ये रश्मियाँ उदित होने पर प्रकाशित होती हैं और अस्त होने पर विलीन हो जाती हैं । ये महान् सूर्यदेव द्युलोक को विशेष रूप से प्रकाशित करते हैं ॥५ ॥

६३२.त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥६ ॥

ये सूर्यदेव दिन की तीस घड़ियों तक अपनी रश्मियों से प्रकाशित होते हैं । इन प्रकाशित सूर्यदेव की वर्णना की जाती है ॥६ ॥

[ज्योतिष् के सिद्धान्तानुसार ६० घड़ी का अहोरात्र, जिसमें दिन ३० घड़ी, रात्रि ३० घड़ी ।]

६३३. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥७ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होने पर रात्रि के साथ नक्षत्रगण छिप जाते हैं, जैसे दिन में चोर छिप जाते हैं ॥७ ॥

६३४. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८॥

प्रज्वलित हुई अग्नि की किरणों के समान इन सूर्यदेव की प्रकाश-रश्मियाँ सम्पूर्ण जीव-जगत् को देखती हैं ॥८॥

६३५. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥९॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले हैं, समस्त संसार में एक मात्र दर्शनीय और प्रकाशक हैं। नक्षत्र, आकाश आदि चमकने वाले पदार्थों को भी आप ही प्रकाशित करते हैं ॥९॥

६३६. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०॥

हे सूर्यदेव ! आप देवों के उपासकों, मनुष्यों तथा सम्पूर्ण संसार को देखने का सुअवसर प्रदान करने के लिए (दर्शनीय ज्योति के रूप में) सभी के समक्ष उदित होते हैं ॥१०॥

६३७. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥११॥

हे समस्त पवित्र करने वाले तेजस्वी सूर्यदेव ! आपके जीवनदायी, दर्शनीय प्रकाश को, जिस प्रकार सभी हम स्तुति करते हैं ॥११॥

६३८. उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२॥

हे सूर्यदेव ! आप दिन को रात्रि से नापते हुए, प्राणि-मात्रों को प्रकाशित करते हैं और स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष को भी प्रकाश से भर देते हैं ॥१२॥

६३९. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३॥

सूर्यदेव शुद्ध करने वाले सात घोड़ों (सप्तवर्णी किरणों) को अपने रथ में जोड़े हुए हैं। रथ चलाने वाली, जोड़ी गयी किरणों से अपनी शक्तियों के द्वारा सूर्यदेव गमन करते हैं ॥१३॥

[वैज्ञानिक सन्दर्भ में सूर्य की सात किरणों को जिस प्रकार क्रमशः "बैनीआहपीनाला" बैंगनी, नील, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल - रंग के रूप में सूर्य के सात घोड़े कहा गया है।]

६४०. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥१४॥

हे प्रकाशक सूर्यदेव ! शुद्ध करने वाली सात रंग की सात किरणें आपके रथ को ले जाती हैं ॥१४॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥आरण्यकपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥

॥ पूर्वार्चिकः समाप्तः ॥

॥अथ महानाम्न्यार्चिकः ॥

६४१.विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥१॥

हे धनवान् (सर्वविज्ञाता) इन्द्रदेव ! आप सब कुछ जानते हैं, आप [illegible] । हे शक्तियों के स्वामी ! हे ऐश्वर्यवान् प्रभो ! आप हमें [illegible] ॥१॥

६४२.आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३र्नांशुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥२॥

हे चिरस्मरणीय इन्द्रदेव ! सूर्यदेव के समान तेजस्वी आप [illegible] हमें [illegible] प्रदान करें ॥२॥

६४३.एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः । शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस ।
आ याहि पिब मत्स्व ॥३॥

हे महान् वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप शक्तिमान् हैं । [illegible] इन्द्रदेव ! आप हमें धन और [illegible] प्राप्त करने के लिए समर्थ बनाएँ । आप हमें सामर्थ्यवान् बनाएँ । आप हमारे [illegible] ॥३॥

६४४.विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! [illegible] ॥४॥

६४५.यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः । चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥

जो [illegible] सूर्यदेव के समान [illegible] हैं । [illegible] इन्द्रदेव ! आप हमें [illegible] मार्ग दिखाएँ । हे साधक ! [illegible] ॥५॥

६४६.ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६॥

[illegible] इन्द्रदेव [illegible] शत्रुओं को [illegible] ॥६॥

६४७.इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥७॥

[illegible] इन्द्रदेव [illegible] हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥७॥

६४८.पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ

शस्यते । वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥८॥

हे [illegible] इन्द्रदेव ! आपका जो [illegible] है, वह [illegible] है। हे [illegible] इन्द्रदेव ! वह हमारे सुख के लिए हमें प्रदान करो। हे [illegible] इन्द्रदेव ! आपके [illegible] होती है। आप [illegible] रूप में [illegible] और [illegible] करने वाले हैं, अतः [illegible] के योग्य आपको अपने [illegible] पर [illegible] करते हैं ॥८॥

६४९. प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।

शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥९॥

हे वृत्रहन्ता प्रभो ! हम [illegible] मनुष्यों में आपकी ही [illegible] करते हैं। आप हमारे लिए गोधन (ज्ञान) [illegible] मित्र रूप हैं। आप उत्तम प्रकार से सेवा के योग्य तथा अद्वितीय एवं महान् हैं ॥९॥

६५०. एवाह्येऽ३ऽ३ऽ३व । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।

एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः ॥१०॥

हे इन्द्र ! आप शत्रु का संहार करने वाले हैं। हे अग्निदेव ! आप [illegible] हैं। हे पूषन् ! आप पोषणकर्ता हैं। हे समस्त देवगण ! आप सभी दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं। आप सभी ऐसे ही (इन गुणों से सम्पन्न) हैं ॥१०॥

॥ इति महानाम्न्यार्चिकः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि - [illegible] ।

देवता - [illegible] ।

छन्द - [illegible] ।

सामवेद-संहिता

उत्तरार्चिक

॥अथ प्रथमोऽध्यायः॥

॥प्रथमः खण्डः॥

६५१.उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

हे याजको ! देव शक्तियों के निमित्त, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले, शुद्ध हुए इस सोम की स्तुति करो ॥१॥

६५२.अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२॥

यह दिव्य रस देवों ने देव पुरुषों के लिए प्रकट किया है । इसे अथर्वा ऋषियों (तेजस्वी-मेधावियों) ने तुम्हारे (प्राणवान्) लिए मधुर को दुग्ध के साथ मिलाया है ॥२॥

६५३.स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

हे कल्याणकारी सोम ! आप स्वयं शुद्ध होकर पशुधन, जनजन तथा अश्वादि जैसे प्राणियों का कल्याण करें और ओषधियों को फलित करें ॥३॥

६५४.दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥४॥

कान्तिमान्, तेजस्वी, शब्दयुक्त धारा से शुद्ध हुए सोमरस को गाय के दूध में मिलाकर सेवन किया जाता है ॥४॥

६५५. हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥५॥

जैसे युद्ध भूमि में पराक्रमी योद्धा पहुँचते हैं, उसी प्रकार याजकों के प्रेरित, बलवान, अन्नदाता दिव्यगुण, संस्कारित सोम यज्ञ भूमि में प्रतिष्ठित होता है ॥५॥

६५६.ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ॥६॥

हे क्रान्तदर्शी सोमदेव ! आप तेजस्वी सूर्य के सदृश, दिव्य आभा युक्त होकर सबके कल्याण के लिए प्रवाहित हों ॥६॥

६५७.पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥७॥

हे क्रान्तदर्शी सोम ! शुद्ध होते समय आपकी धाराएँ युद्धस्थल से निकलने वाले घुड़सवार योद्धाओं के समान वेगवती होती हैं ॥७॥

६५८.अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥८॥

मधुरस के कलश में इस सोमरस को रखते हैं, जिसे स्तोता ऋषिगण बार-बार शुद्ध करते हैं ॥८॥

६५९.अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥९ ॥

जल युक्त समुद्र में जैसे [illegible] सोमरस यज्ञ स्थान में उसी प्रकार (स्वतः ही) जाता है, जैसे दुधारू गाय अपने स्थान में जाती है ॥९ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

६६०.अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तुति के पश्चात आहुतियों को ग्रहण कर, उन्हें देवों तक पहुँचाने के लिये, देवों के प्रतिनिधि रूप में आसन ग्रहण करें ॥१ ॥

६६१.तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२ ॥

हे अङ्गिरा स्वरूप [illegible] ! हम आपको समिधाओं तथा घृत द्वारा वर्धित करते हैं । अतः हे [illegible] ! आप अधिक प्रकाशित हों ॥२ ॥

६६२.स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हमें महान् यशस्वी और श्रेष्ठ पराक्रमी सन्तति प्राप्त हो ॥३ ॥

६६३.आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥४ ॥

हे मित्रावरुण ! हमारी इन्द्रियों के आवास (देह) को तेजस्विता से युक्त करें और अन्तःकरण को भी श्रेष्ठ रसों (भावों) से सिंचित करें ॥४ ॥

६६४.उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥५ ॥

हे पवित्रकर्मी मित्रावरुणो ! आप [illegible] एवं महान् स्तुतियों द्वारा पुष्ट होकर अपने [illegible] का शासन करते हैं ॥५ ॥

६६५.गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥६ ॥

जमदग्नि ऋषि द्वारा स्तुति किये गये हे मित्रावरुणो ! आप यज्ञ स्थान पर विराजें और हमारे द्वारा सिद्ध किये गये सोमरस का पान करें ॥६ ॥

६६६.आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पधारें और हमारे द्वारा निकाले गये सोमरस का पान कर, श्रेष्ठ आसन पर विराजें ॥७ ॥

६६७.आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्र सुनते ही रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से यहाँ [illegible] हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥८ ॥

६६८.ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम [illegible] और सोमरस तैयार करने वाले याजक, सोमपान करने वाले आपको अनुकूल स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥९ ॥

६६९.इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१० ॥

हे इन्द्र एवं अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों से [illegible] अन्तरिक्ष के [illegible] के [illegible] श्रेष्ठ सोमरस है। हमारे [illegible]-भाव की [illegible] कर इस सोमरस का पान करें ॥१०॥

६७०.इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः। अया पातमिमं सुतम् ॥११॥

हे इन्द्राग्ने ! आप स्तुति करने वालों के सहायक बनें। स्तुतियों द्वारा बुलाये गये आप [illegible] यज्ञ के [illegible] सोमरस का पान करें ॥११॥

६७१.इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे। ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥१२॥

यज्ञीय वेग से स्तुति करने वालों के लिए [illegible] इन्द्र और अग्निदेव को हम बुलाते हैं। वे दोनों देव इस यज्ञ में सोमरस पान से संतुष्ट हों ॥१२॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

६७२.उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे। उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१॥

हे सोमदेव ! [illegible], [illegible], महान्, यशस्वी [illegible] द्युलोक में हम [illegible] करते हैं ॥१॥

६७३.स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव ॥२॥

हे ऐश्वर्य प्रदाता सोमदेव ! हमारे पूज्य इन्द्र, वरुण और मरुतों के लिए आप क्षरित हों ॥२॥

६७४.एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

हे सोमदेव ! [illegible] ऐश्वर्य [illegible] आपकी सेवा की इच्छा से आपकी अभ्यर्थना करते हैं ॥३॥

६७५.पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥४॥

हे ऐश्वर्यदाता, स्वर्ण के समान चमकने वाले, [illegible], सोमदेव ! [illegible] जल से संयुक्त होकर, [illegible] के [illegible] में [illegible] होते हैं ॥४॥

६७६.दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥५॥

[illegible] द्वारा [illegible], [illegible] सोम, यज्ञ वेदी पर स्थापित है। [illegible] सोम, [illegible] होता है ॥५॥

६७७.प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥६॥

[illegible] द्वारा शोधित हे सोमदेव ! [illegible] के रूप में आप [illegible] की [illegible] हों। [illegible] को [illegible] करने वालों की तरह आपको [illegible] करने वाले ऋत्विज्, अँगुलियों के माध्यम से आपको यज्ञ स्थान पर ले जाते हैं ॥६॥

६७८.स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः।

पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥७॥

उत्तम आयुधों से युक्त, [illegible], [illegible] विचरण करने वाला, [illegible], आकाश तथा पृथ्वी का धारक दिव्य सोम शोधित किया जाता है ॥७॥

६७९.ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां गुह्यं नाम गोनाम् ॥८॥

[illegible] करने वाले, [illegible], [illegible], [illegible] द्वारा, गौओं में गुप्त रूप से रहने वाले सोम को [illegible] किया गया ॥८॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

६८०.अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! [illegible] हम आपकी [illegible], जैसे न दुही हुई गौएँ अपने बछड़ों के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं ॥१॥

६८१.न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! आपके समान इस पृथ्वीलोक या दिव्यलोक में, न कोई है, न कभी हुआ है और न कभी होगा । हे इन्द्रदेव ! अश्व, गौ तथा धन-धान्य की कामना वाले हम आपकी अर्चना करते हैं ॥२॥

६८२.कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥३॥

विलक्षण, वर्धनशील मित्र इन्द्र ! किन-किन [illegible] आप किस प्रकार की [illegible], आप किन शक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥३॥

६८३.कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥४॥

सत्यकर्मों को आनन्द प्रदान करने वालों में [illegible], हे इन्द्रदेव ! यह आपको दुर्गम शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रेरणा देता है ॥४॥

६८४.अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥५॥

स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले, [illegible] हे इन्द्रदेव ! हमारी हर प्रकार से रक्षा करने के लिए आप [illegible] हों ॥५॥

६८५.तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥६॥

गौएँ जिस प्रकार गोष्ठ में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं, उसी प्रकार हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी, सोमरस से तृप्त होने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥६॥

६८६.द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥७॥

तेजस्वी, दानी, उत्तम पराक्रमी, पर्वत के समान अनेकों का पालन करने वाले इन्द्रदेव से हम सैकड़ों-हजारों गौओं तथा पोषक अन्न की हम कामना करते हैं ॥७॥

६८७.तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥८॥

जैसे शिल्पकार को सत्कारपूर्वक बुलाते हैं, वैसे ही हम अपने हितकारी इन्द्रदेव को संरक्षण के लिये बुलाते हैं। हे ऋत्विजो! अपनी रक्षा के लिए सोमयज्ञ में ऐश्वर्य देने वाले इन्द्रदेव की आराधना करो ॥८॥

६८८.न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥९॥

सुन्दर आकृति वाले इन्द्रदेव को, शत्रु भी नहीं रोक सकते। ऐसे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं, जो सोमपान के आनन्द में, स्तुति करने वाले याजकों को श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥९॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

***

॥पंचमः खण्डः॥

६८९.स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

हे स्वादिष्ट एवं आनन्ददायक सोमदेव! आप इन्द्रदेव के पीने के लिए, शुद्ध और परिष्कृत हों ॥१॥

६९०.रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२॥

दुष्ट-नाशक, सबके द्रष्टा सोम शुद्ध होकर सुवर्ण पात्र में रखे हुए कलश में संस्कारित होकर बैठते हैं ॥२॥

६९१.वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

हे सोमदेव! आप महान् ऐश्वर्य दाता हैं, आप शत्रुओं का पूर्णतया नाश करने वाले हैं, इसलिए याजकों को धन प्रदान करें ॥३॥

६९२.पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः। महि द्युक्षतमो मदः ॥४॥

हे सोमदेव! आप कर्मयोगी, बुद्धिमान्, महान्, तेजस्वी, आनन्ददायक एवं अत्यन्त मधुर हैं, इसलिए इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिये आप शुद्ध होकर प्रवाहित हों ॥४॥

६९३.यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥५॥

हे सोमदेव! बलशाली इन्द्रदेव आपका पान करके अधिक बलवान् हो जाते हैं। आत्मज्ञानी भी आपका पान करके ज्ञानवान् होते हैं। ऐसे उत्तम ज्ञानी इन्द्रदेव, आपके पान से शत्रुओं के धन को अपने अधिकार में ले लेते हैं ॥५॥

५९४.इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥६॥

श्रेष्ठता से शोधित हुए, तेजोमय, आनन्ददायक, ... सोमरस, बलशाली इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥६॥

५९५.अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥७॥

युद्ध के समय तेजस्वी सोम का सोमरस इन्द्रदेव के लिए तैयार किया जाता है। जैसा कि सभी जानते हैं, विजय के लिए उत्सुक इन्द्रदेव को यह सोमरस विशेष स्फूर्ति देता है ॥७॥

५९६. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम्।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥८॥

तेजस्वी सोम के सोमरस से आनन्दित हुए इन्द्रदेव ... को ... करके अपने ... और वज्र को धारण कर लेते हैं ॥८॥

५९७.पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥९॥

हे स्तोताओ! निश्चित रूप से विजय दिलाने वाले, आनन्ददायक इस सोमरस को श्वान (दुर्भिक्ष) से बचाओ ॥९॥

५९८.यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः। इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥१०॥

यह ... पर सोमरस शोधित होते समय ... नदी ... में मिलता है ॥१०॥

५९९.तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया। यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥११॥

हे ऋत्विजो! ... सोम को ... करो और यज्ञ का ... करते हुए ... को ... करो ॥११॥

६००.अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१२॥

... को पवित्र करने वाला, हितकारी सोम, जिस ... में ... जाता है, उसमें यह महान् और ... सोमरस सूर्य के ... से अधिक ... रहता है ॥१२॥

६०१.ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥१३॥

यज्ञ की जिह्वा ..., ... करता हुआ यह सोमरस प्रिय और मधुर रस में ... है। ... है। माता-पिता के ... से ..., ... द्वारा ... किया गया, ... ने ... यह ... तीसरे ... (द्युलोक के रूप में) धारण करता है ॥१३॥

६०२. अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥१४॥

ज्योतिर्मान स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हुए, युद्ध करने वाले तेजस्वी सोमदेव की स्तुति करते हैं। वह सोम तीनों ही लोकों (द्यावा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष) में प्रकाशित होता है॥९॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

७०३. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥१॥

हे याजक करने वाले याजको! आप प्रत्येक यज्ञ में प्रकाशित अग्निदेव की अपनी वाणी से स्तुति करो। हम भी उन अविनाशी, सर्वज्ञ अग्निदेव की, मित्र के समान प्रशंसा करते हैं॥१॥

७०४. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम्॥२॥

बल-उत्पादक को प्रकट करने वाले अग्निदेव की हम अर्चना करते हैं। वे निश्चय ही हमारे लिए हितकारी हैं। वे हमारे हव्य को देवताओं तक पहुँचाते हैं। युद्ध में वे हमारी रक्षा करते हुए शत्रुओं से संरक्षक और हर प्रकार से हमारी रक्षा करने वाले सिद्ध हों॥२॥

७०५. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥३॥

उत्तम विधि से की गई हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हे अग्निदेव! आप प्रकट हों। यह सोमरस आपको तृप्ति प्रदान करने वाला है॥३॥

७०६. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्रा योनिं कृणवसे॥४॥

हे अग्निदेव! आप जिस याजक से प्रसन्न होते हैं, उसे बल और श्रेष्ठ आवास प्रदान करते हैं॥४॥

७०७. न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते। अथा दुवो वनवसे॥५॥

हे अग्निदेव! आपका तेज मनुष्यों के लिए हानिकारक नहीं है। हे पालनकर्ता, मनुष्यों के स्वामी! आप हमारी अर्चना स्वीकार करें॥५॥

७०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः। वज्रिञ्चित्रं हवामहे॥६॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव! सोमरसयुक्त हम, आपको अपनी रक्षा के लिए उसी प्रकार आवाहित करते हैं, जैसे निर्बल व्यक्ति द्वारा सामर्थ्यवान् को बुलाया जाता है॥६॥

७०९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥७॥

हे शत्रु-संहारक इन्द्र! हम कर्मशील रहते हुए, सहायता के लिए बलवान और शत्रुओं पर विजय पाने वाले आपका आश्रय लेते हैं। मित्रवत् सहायता के लिए हम आपको पुकारते हैं॥७॥

७१०. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे। उदेव ग्मन्त उदभिः॥८॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव! पानी से भरे हुए, जल देखकर दौड़ने मनुष्य की भाँति, हम आपके पास आकर अपनी इच्छा-पूर्ति की याचना करते हैं॥८॥

७२१. वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥९॥

हे वज्रधारी शूरवीर इन्द्रदेव ! जैसे नदियों के जल से समुद्र की महिमा बढ़ती है, उसी तरह हम अपनी स्तुतियों से आपकी महिमा का विस्तार करते हैं ॥९॥

७२२. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥१०॥

पराक्रमी इन्द्रदेव के महान् रथ में [illegible] मात्र से ही [illegible] घोड़े जुड़ जाते हैं। वे स्तुति करने वालों के समीप से इन्द्रदेव को [illegible] तक पहुँचाते हैं ॥१०॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- असित काश्यप अथवा देवल [illegible] । कश्यप मारीच [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । अमहीयु आङ्गिरस [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

देवता- पवमान सोम [illegible] । अग्नि [illegible] । [illegible] । इन्द्र [illegible] । [illegible] ।

छन्द- गायत्री [illegible] । [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible] । [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । [illegible] ।

॥इति प्रथमोऽध्यायः॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

७१३.पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान्, शतक्रतु (सौ यज्ञ करने वाले), आपके द्वारा उपासना करने योग्य अन्नरूप सोमरस का पान करने वाले इन्द्रदेव की वन्दना करो ॥१ ॥

७१४.पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२ ॥

सहायता के लिए बहुतों द्वारा बुलाये जाने वाले, अनेकों द्वारा जिनकी स्तुति की जाती है, हे स्तोताओ ! सनातन काल से प्रसिद्ध, उन इन्द्रदेव की वन्दना करो ॥२ ॥

७१५.इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३ ॥

सभी को गति प्रदान करने वाले, महान् इन्द्रदेव हमारे सामने प्रकट हों और हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

७१६.प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! सोमरस का पान करने वाले श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त, इन्द्रदेव को आनन्दित करने वाले स्तोत्र सुनाओ ॥४ ॥

७१७.शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! उत्तम दानदाता, न्यायोचित सम्पत्ति वाले इन्द्रदेव की प्रार्थना करो । हम भी उत्तम विधि से उनकी अभ्यर्थना करते हैं ॥५ ॥

७१८.त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥६ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमें अन्न, गौ तथा स्वर्ण प्रदान करें ॥६ ॥

७१९.वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम (याजक) आपको प्राप्त करने की इच्छा से कण्ववंशीय ऋषि स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं ॥७ ॥

७२०.न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥८ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! यह कर्म में प्रवृत्त याजक के निवास का समय दूसरे की प्रशंसा नहीं करेंगे । हम स्तोत्रों द्वारा आपकी ही स्तुति करना जानते हैं ॥८ ॥

७२१.इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥९ ॥

सोमयज्ञ करने वालों से देवगण प्रसन्न रहते हैं, आलसियों से नहीं । परिश्रमी साधक ही सदा आलस्यहीन सोम प्राप्त करते हैं ॥९ ॥

७२२.इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१०॥

आनन्ददायी सोमरस के इच्छुक इन्द्रदेव के लिए सोमरस को शोधित करते समय हे स्तोताओ ! हमारी वाणी इन्द्रदेव की स्तुति कर रही है, स्तोतागण प्रशंसनीय सोमरस की स्तुति करें ॥१०॥

७२३.यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥११॥

हम श्रीसम्पन्न इन्द्रदेव का, हम सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं, जिनकी स्तुति यज्ञ के सातों 'ऋत्विग्' करते हैं ॥११॥

[सप्त ऋत्विग्, यज्ञकर्म का विभाजन करनेवाले (होता, पोता, नेष्टा, अग्नीध्र, प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा) का बोध कराते हैं।]

७२४.त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥१२॥

देवगणों ने, उत्साह बढ़ाने वाले, तीन यज्ञों में सम्पन्न होनेवाले, यज्ञ का विस्तार देवगण करते हैं, जिसकी हमारी वाणियाँ प्रशंसा करती हैं ॥१२॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः॥

७२५.अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए शोधित सोमरस तैयार है। इसके पान के लिए आप शीघ्र ही यज्ञवेदी पर पधारें ॥१॥

७२६.शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥२॥

शत्रुनाशक, शक्तिमान्, पूज्य, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी हे इन्द्रदेव ! आपके आनन्द के लिए ही सोमरस तैयार किया गया है। इसलिए हम आपका आवाहन करते हैं ॥२॥

७२७.यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥३॥

हे महान् ऐश्वर्यवाले इन्द्रदेव ! आनन्द से पान करने योग्य सोम के लिए इस कुण्डपायी सोमरस की ओर आप उन्मुख हों ॥३॥

७२८.आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥४॥

महान् भुजाओं वाले हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रशंसनीय ऐश्वर्य दाहिने (धनधान्ययुक्त) हाथ से प्रदान करें ॥४॥

७२९.विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपको ऐश्वर्यवाले, बहुतों का पालन करने वाले, रक्षक अपार पुण्य सौभाग्यवाले के रूप में जानते हैं ॥५॥

७३०.न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥६॥

जैसे बलिष्ठ बैल को कोई नहीं रोक सकता, वैसे ही हे वीरेन्द्र ! धन देने से उद्यत आपको देवता या मनुष्य कोई भी नहीं रोक सकता ॥६॥

७३१.अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम्॥७॥

हे बलशाली इन्द्रदेव! सोमरस को आपके लिए सोमपान हेतु प्रेरित किया है। इस आनन्ददायी रस का पान कर आप तृप्त हों॥७॥

७३२.मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः॥८॥

हे इन्द्रदेव! आपसे रक्षा की कामना करने वाले तथा उपहास करने वाले अज्ञानियों का आप पर प्रभाव न पड़े। ज्ञान द्वेषियों को आप मदद न करें॥८॥

७३३.इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब॥९॥

हे इन्द्रदेव! जो दुग्ध मिश्रित सोमरस की तृप्ति देकर, सोम ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं। जलाशय में जल पीने वाले मृग की भाँति आप सोमरस का पान करें॥९॥

७३४.इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन् ररिमा ते॥१०॥

हे आश्रयदाता, निर्भय इन्द्रदेव! भरपेट पीने के लिए हम आपको शोधित सोमरस देते हैं, आप उसका पान करें॥१०॥

७३५.नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु॥११॥

जिस प्रकार घोड़े को जलधारा में स्नान कराया जाता है, उसी प्रकार याजकों द्वारा सोम (सोमलता को) अश्म पत्थरों से कूटकर, छलनी में छान कर यह सोमरस तैयार किया गया है॥११॥

७३६.तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे॥१२॥

हे इन्द्रदेव! सुगन्धित जौ की भाँति गाय के दूध में मिला कर शोधित कर मधुर सोमरस आपके लिए तैयार किया गया है। इस आनन्ददायी सोमरस के लिए हम आपका आवाहन करते हैं॥१२॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

७३७. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः॥१॥

हे धनपति, स्तुत्य, बलशाली इन्द्रदेव! आप शक्तिपूर्वक इस सोमरस का पान करें॥१॥

७३८.यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्य॥२॥

हे सोमपान के योग्य इन्द्रदेव! आपके शरीर के लिए यह सोम अनुकूल है। यज्ञ में उपस्थित होकर आप इसके पान से आनन्दित हों॥२॥

७३९.प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहू शूर राधसा॥३॥

हे इन्द्रदेव! आपकी दोनों कोखों में यह सोम व्याप्त हो जाए। स्तुति के प्रभाव से यह आपके मस्तिष्क में संचरित हो। हे वीर इन्द्र! ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आपकी भुजाएँ भी समर्थ हों॥३॥

७४०.आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखाय स्तोमवाहसः॥४॥

हे याज्ञिको! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करने हेतु शीघ्र आकर बैठें और स्तुति करें॥४॥

७७१. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ।।५।।

एकत्रित होकर, सुसंस्कृत सोमरस के तैयार होने पर शत्रुओं को पराजित करने वाले ऐश्वर्यों के स्वामी इन्द्रदेव की अभ्यर्थना करो ।।५।।

७७२. स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या। गमद्वाजेभिरा स नः ।।६।।

वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर करने में सहायक हों, धन-धान्य से परिपूर्ण करें, ज्ञानप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए पोषक अन्न सहित हमारे निकट आएँ ।।६।।

७७३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ।।७।।

हे याज्ञिको ! प्रत्येक कार्य के शुभारम्भ में, हर प्रकार के संग्राम में, संरक्षण के लिए बलशाली इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं ।।७।।

७७४. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ।।८।।

सनातन के आश्रय, बहुतों के बल को धारण करने वाले, उन्हें नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का हम सहायता के लिए आवाहन करते हैं। हमारे पिता ने भी ऐसा ही किया था ।।८।।

७७५. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम् ।।९।।

हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वे इन्द्रदेव निश्चित ही सहस्रों संरक्षणों तथा अन्न-ऐश्वर्य आदि सहित हमारे पास आयेंगे ।।९।।

७७६. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्। विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ।।१०।।

हे इन्द्रदेव ! महान् यज्ञ कर्म के लिए सोमरस तैयार करके, किये जाने वाले यज्ञ एवं स्तोत्रों को आप पवित्र करते हैं। आप महान् हैं ।।१०।।

७७७. स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः। सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ।।११।।

साधकों को शक्ति देने वाले, [illegible] देने वाले, श्रेष्ठ यशस्वी, [illegible] इन्द्रदेव उत्तम आकाश में, देवों के आवास में रहते हैं। हम उनका आवाहन करते हैं ।।११।।

७७८. तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्। भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ।।१२।।

हम उन बलवान् इन्द्रदेव को अन्न की वृद्धि करने के लिए यज्ञ में बुलाते हैं। हे इन्द्रदेव ! सुख एवं समृद्धि के [illegible] मार्गदर्शक के रूप में आप हमारे पास रहें ।।१२।।

।।इति तृतीयः खण्डः ।।

* * *

।।चतुर्थः खण्डः ।।

७७९. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।

प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ।।१।।

सबको तृप्त करने वाले, [illegible] के पुत्र रूप, [illegible] यज्ञ को सफल करने वाले, [illegible] अग्निदेव का तुम्हारे (यजमान के) लिए आवाहन करते हैं ।।१।।

७५०.स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः।

सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम्॥२॥

वे अग्निदेव विश्व के सभी पदार्थों का सेवन करके उनको तेज से विभूषित करते हैं। वे उत्तम ज्ञानी, यज्ञशील, [illegible] आहुतियों से [illegible] होते हैं। यह अग्नि मनुष्यों का [illegible] धन है॥२॥

७५१.प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः।

अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी॥३॥

देवलोक से आने वाली (उषादेवी) की प्रकाशित किरणें, सभी अन्धकार को पराजित करती हैं। नेतृत्व की क्षमता सम्पन्न द्युलोक की यह पुत्री सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश से भर देती है॥३॥

७५२.उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।

तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि॥४॥

सह, उषा और सूर्य, अन्धकार को समाप्त करते हैं। सूर्यदेव उदय होकर अपनी किरणों को फैलाते हैं। हे उषे! आपके और सूर्य के प्रकाश को [illegible] हम [illegible] से परिपूर्ण हों॥४॥

७५३.इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना।

अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः॥५॥

हे अश्विनीकुमारो! [illegible] आपकी स्वर्ग की कामना करते हुए [illegible] के लिए बुलाते हैं। अपनी कृपा से स्वर्ग में [illegible] जाते हैं। ये याजक आश्रय के लिए आपका आवाहन करते हैं, क्योंकि आप ही स्तुति करने वालों के निकट जाते हैं॥५॥

७५४.युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु॥६॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो! आप विलक्षण अन्न देने वाले हैं। स्तुति करने वालों के रक्षक हे देव! एक मन होकर, [illegible] यहाँ मधुर [illegible] का पान करें॥६॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पंचमः खण्डः॥

७५५. आस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम्॥१॥

देवताओं, सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, [illegible] इस सोमरस को [illegible] करते हुए, ऋषियों ने सेवन किया है॥१॥

७५६.अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति। सप्त प्रवत आ दिवम्॥२॥

देवलोक तक [illegible] (सोम) [illegible] में प्रवाहित, सूर्यदेव के समान सभी लोकों का दृष्टा, यह [illegible] पात्रों में शोधित किया जाता है॥२॥

७५७.अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पवित्र होते हुए यह सोमरस, सूर्यदेव के समान सभी लोकों में प्रकाशित होता है ॥३॥

७५८.एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥४॥

सनातन रीति से संस्कारित किया गया यह हरितवर्ण सोमरस, देवों के लिए छलनी से छनकर शोधित किया जाता है ॥४॥

७५९. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥५॥

सनातन स्तुतियों की सहायता से यह देदीप्यमान, क्रान्तदर्शी सोम ज्ञानीजनों द्वारा देवगणों के लिए संवर्धित किया जाता है ॥५॥

७६०.दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥६॥

कलश में निचोड़ा गया यह सोमरस छलनी से छाना जाता है । शब्द करता हुआ यह सोम देवगणों को यज्ञ में आमन्त्रित करता प्रतीत होता है ॥६॥

७६१.उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिम् ॥७॥

हे सोमदेव ! अहितकारियों को भयभीत करते हुए, आप अपने पास बैठने वालों को सामर्थ्य दिलाएँ और धन-धान्य से पूर्ण करें ॥७॥

७६२.उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥८॥

निचोड़ने के बाद सोमरस को जल में मिलाया जाता है । इस प्रकार, गाय के दूध से मिले सोमरस का आवाहन देवगण भी करते हैं ॥८॥

७६३.उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥९॥

हे ऋत्विजो ! देवताओं की यजन (उपासना) करने की इच्छा से शोधित किये जा रहे सोमरस के गुणों का वर्णन करो ॥९॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः॥

७६४.प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥१॥

जलधाराओं में जिस प्रकार लहरें तरंगित होती हैं, उसी प्रकार यह ज्ञानयुक्त सोमरस जल के साथ मिल जाता है ॥१॥

७६५.अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

गौदुग्ध तथा अन्न (पोषक पदार्थ) के साथ भूरे रंग का यह सोमरस यज्ञ की धारा के रूप में कलश में गिराया जाता है ॥२॥

७६६.सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥

शोधित सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुद्गण तथा विष्णु आदि देवताओं को प्राप्त हो ॥३॥

७६७.प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

जल युक्त नदियों की भाँति हे सोमदेव ! आपको देवगणों के लिए जल में मिलाया जाता है। आप आनन्ददायी पदार्थों के समान उत्साहवर्धक हैं। अतः हे सोमदेव ! इस मधुर सोमरस को दूध में मिलाकर पात्र में उत्तम विधि से भरें ॥४॥

७६८.आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥५॥

प्रिय शिशु के समान मोहक इस स्वच्छ सोमरस को सभी प्रकार वेगपूर्वक हाथों से जल धारा में मिलाते हैं, जैसे द्रुतगामी रथ युद्ध में जाता है ॥५॥

७६९.प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥६॥

आनन्ददायक यह सोम, शोधित होने के बाद यज्ञ में कीर्ति एवं अन्नादि प्रदान करने में सहायक होता है ॥६॥

७७०.आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥७॥

हंस जिस प्रकार (अपने गण की ओर) अपने समूह में (गतिपूर्वक) जाता है, उसी गति के साथ यह सोमरस, विवेकवानों की बुद्धि को प्रभावित करता है ॥७॥

७७१. आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥

इस शुद्ध हरितवर्ण सोम को साधक अपनी अंगुलियों से निचोड़कर इन्द्रदेव के पीने योग्य बनाता है ॥८॥

७७२.अया पवस्व देवयू रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ॥९॥

हे सोमदेव ! देवताओं के निमित्त आप शब्द से शोधित होते समय, अभिलषित पात्र के चारों ओर शब्द-नाद करते हुए, मधुर होकर, आप स्वयं पात्र में स्थापित हों ॥९॥

७७३.पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१०॥

गतिमान तथा मनोहारी हे सोमदेव ! साधकों के लिए यह शोधित हरित सोमरस, कुटिलता में व्याप्त होता है ॥१०॥

७७४.प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥११॥

शोधित होते समय सोम के शब्द-नाद को श्रेष्ठ कर्मों की इच्छा वाले न सुनें । हे साधको ! अधोगामी (श्वान-वृत्ति वालों) को हम सेवा कार्य से दूर रखें ॥११॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

१

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible]

देवता- [illegible]

छन्द- [illegible]

॥इति द्वितीयोऽध्यायः॥

॥अथ तृतीयोऽध्यायः॥

॥प्रथमः खण्डः॥

७७५. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः। अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

हे सोमदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आप विभिन्न रक्षा साधनों से युक्त होकर, हमारी इन वचन की स्तुतियों को सुनकर उनके समक्ष पधारें ॥१॥

७७६. त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्। पवस्व विश्वचर्षणे ॥२॥

हे सर्व निरीक्षक सोमदेव ! आप आगे होकर इन सब स्तुतियों से प्रेरित हुए, देवलोक के जल का आवाहन करें। यहाँ कथित जल सोमरस में मिलता है ॥२॥

७७७. तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे। तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥३॥

हे दूरदर्शी सोमदेव ! आपकी महत्ता के कारण ये सब लोक स्थित हैं। आपके लिए, दूध मिश्रित करने हेतु, देवगणों को तृप्त करने वाली गौएँ आपके पास आ रही हैं ॥३॥

७७८. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि ॥४॥

शक्तिमान, शोधित किये गये हे सोमदेव ! पवित्र होकर आप हमें यशस्वी बनाएँ। सभी शत्रुओं को आप पराजित करें ॥४॥

७७९. यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः। तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥५॥

हे सोमदेव ! जिस भाव से आपकी हमें मित्रता प्राप्त है, उस आपकी कृपा से आक्रमणकारी शत्रुओं से हम विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥५॥

७८०. या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे। रक्षा समस्य नो निदः ॥६॥

हे सोमदेव ! शत्रुओं का नाश करने वाले अपने तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा शत्रुओं की निन्दा से बचाकर होने से आप हमें बचाएँ ॥६॥

७८१. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः। वृषा धर्माणि दधिषे ॥७॥

हे सोमदेव ! आप तेजस्वी और बलशाली हैं। हे स्वामी ! आप कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, बलशाली हैं, ऐसे बली आप अपनी क्षमता से अनन्त पोषण धर्मों के धारणकर्ता हैं ॥७॥

७८२. वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः। स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥८॥

हे बलशाली सोमदेव ! आपकी शक्ति तो बलवानों के समान है। आपका पान करने वाले साधक, विशिष्ट रूप से उत्तम बल एवं उत्तम सामर्थ्य से युक्त होते हैं ॥८॥

७८३.अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥९॥

हे सोमदेव ! आप बलशाली हैं, पशुधन की वृद्धि करने वाले हैं। अतः आप हमें धन-धान्य से ऐश्वर्य दिलाएँ ॥९॥

७८४.वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥१०॥

हे सोमदेव ! आप निश्चित ही सामर्थ्यवान हैं। सूर्य के सदृश, पूर्ण तेजस्वी, हे शोधित सोमदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं ॥१०॥

७८५.यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥११॥

ऋत्विजों द्वारा शोधित हे सोमदेव ! जल में मिलाने के बाद आपको कलश में स्थापित किया जाता है ॥११॥

७८६.आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥१२॥

हे उत्तम आयुधों से युक्त सोम ! आनन्दवर्धक बनकर हमें श्रेष्ठ पराक्रम की क्षमता से युक्त करें और हमारे यज्ञ में आकर सुशोभित हों ॥१२॥

७८७.पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥१३॥

हे सोमदेव ! पवित्रता और शोधित होने वाले आपकी, हम मित्र के रूप में सहयोग पाने की कामना करते हैं ॥१३॥

७८८.ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ॥१४॥

हे सोमदेव ! आपकी लहरों में से जो धारा शोधित हो रही है, उससे हमें उल्लसित करने का अनुग्रह करें ॥१४॥

७८९.स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥१५॥

हे सोमदेव ! आप जगत् नियन्ता हैं। शोधित होने के बाद आप हमें धन-धान्य के साथ सुसन्तति प्रदान करें ॥१५॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

७९०.अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

देवों का आवाहन करने वाले, श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले, ऐश्वर्यवान, इस यज्ञ को उत्तम विधि से सम्पन्न कराने वाले, सर्वज्ञाता अग्निदेव का हम आवाहन करते हैं ॥१॥

७९१.अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२॥

हव्यवाहक, देवों तक हवि पहुँचाने वाले, प्रजापालक, सबको प्रिय, पुकारने योग्य हे अग्निदेव ! हम याजक हवनीय मंत्रों से आपको सदा पुकारते हैं ॥२॥

७९२.अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३॥

[illegible] ॥३॥

५९३. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४॥

[illegible] ॥४॥

५९४. ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥५॥

[illegible] ॥५॥

५९५. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥६॥

[illegible] ॥६॥

५९६. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥७॥

[illegible] ॥७॥

५९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८॥

[illegible] ॥८॥

५९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥९॥

[illegible] ॥९॥

५९९. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥१०॥

[illegible] ॥१०॥

६००. इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥११॥

[illegible] ॥११॥

६०१. ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥१२॥

[illegible] ॥१२॥

६०२. ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥१३॥

[illegible] ॥१३॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥तृतीयः खण्डः ॥

८०३.वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥१॥

हे सोमदेव ! आप आनन्दवर्धक धारा रूप में शोधित हों । सभी ऐश्वर्यों सहित मरुतों के सखा इन्द्रदेव को आप आनन्द प्रदान करें ॥१॥

८०४.तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२॥

हे शोधित सोमदेव ! आप आनन्ददायी पवमान, द्युलोक से पृथ्वीलोक तक सभी को प्रकाश प्रदान करने वाले हैं । ऐसे सोम को हम संग्राम (जीवन संघर्ष) के लिए प्रेरित करते हैं ॥२॥

८०५.अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥३॥

हे हरे रंग वाले सोम ! अँगुलियों से परिष्कृत किये गये आप दिव्य कलश में शोधित होने के लिए, धारित हों और अपने सखा इन्द्रदेव को संग्राम में जाने के लिए प्रेरित करें ॥३॥

८०६.वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥४॥

शब्द करने वाले, बलशाली, सुखों की वर्षा करने वाले, हे दिव्य सोमदेव ! द्युलोक से पृथ्वी तक विचरते हुए, मेघ जैसे गर्जन (शब्दध्वनि) करते हुए आप गतिमान हैं । सब इन्द्रदेव (युद्ध में) की तरह आपके निर्घोष को सुनते हैं । आप भी अपनी वाणी का घोष करते हुए हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हैं ॥४॥

८०७.रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥५॥

रसीले अन्न में मधुर, गाय के दूध में मिश्रित होने के बाद अधिक पुष्टकारक हुए हे सोमदेव ! पानी में शोधित होकर पात्रों में (स्थित हो) आप इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥५॥

८०८.एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥६॥

हे हर्षवर्द्धक सोमदेव ! रुके हुए मेघों को जल वृष्टि के लिए प्रेरित करते हुए आप आनन्ददायी बनें । पानी के साथ शोभायमान आप, गाय के दूध के रूप में, हमको पायें और सिञ्चित हों ॥६॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

८०९.त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोता आपको अन्न प्राप्ति के लिए आमन्त्रित करते हैं । हे इन्द्रदेव ! विद्वज्जन शत्रुओं से समय आपको ही मदद के लिए बुलाते हैं ॥१॥

८१०.स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

हे विपुल धनवाले, वज्रधारी, बलशाली इन्द्रदेव ! आपकी अद्भुत भारी शक्ति से महान् हुए आप, हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर इन याजकों को प्रचुर गौ तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२॥

८११.अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव स्तोताओं को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न करते हैं, अतः उत्तम धन की प्राप्ति के लिए, जिस प्रकार भी सम्भव हो उनकी अर्चना करें ॥३॥

८१२.शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥४॥

जिस प्रकार शूरवीर शत्रु सेना पर चढ़ाई करते समय अपनी सेना का संचालन करता है, उसी प्रकार, देव कार्यों में अपने साधन लगाने वालों का इन्द्रदेव संरक्षण करते हैं। ऐसे उदार लोगों को इन्द्रदेव के दान पर्वत से निकलने वाले जल के समान लाभदायक होते हैं ॥४॥

८१३.त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥५॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! पूर्व में ही हवि देने वाले यजमान आपके लिए सोम प्रस्तुत करते हैं। इस यज्ञ में स्तवन करने वाले याजकों की प्रार्थना को सुनकर आप यज्ञवेदी में प्रतिष्ठित हों ॥५॥

८१४.मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥६॥

हे शिरस्त्राण धारक, अश्ववाहक, स्तुति के योग्य इन्द्रदेव ! अनुष्ठान करने वाले विविध साधनों से हम आपको प्रतिष्ठित करते हैं। आप सोमपान से तृप्त हों। हे स्तुति योग्य इन्द्रदेव ! सोमयाग के बाद आपके अनुरूप अन्न (हविष्य) को याजक प्रदान करते हैं ॥६॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः॥

८१५.यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१॥

हे सोमदेव ! आपका रस देवताओं के योग्य, अत्यन्त हर्षित करने वाला तथा आनन्द देने वाला है। इसी शक्ति के साथ आप पात्र में शोधित हों ॥१॥

८१६. जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषातिरश्वसा असि ॥२॥

हे सोमदेव ! आप अमित्र (अहितकारी) वृत्र (अज्ञानरूपी वृत्ति) के नाशक हैं। आप सतत सत्कर्मशील रहते हैं। आप गो-धन और अश्वों की भी वृद्धि करते हैं ॥२॥

८१७.सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदं छ्येनो न योनिमा ॥३॥

हे सोमदेव ! जैसे बाज पक्षी अपने घोंसले पर [illegible] होता है, उसी प्रकार आप [illegible] गाय के दूध में मिलने वाले [illegible] हैं ॥३॥

८१८.अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥४॥

पुष्टिकारक, सौभाग्य को प्रदान करने वाला, ऐश्वर्य रूप सोमरस शोधित होकर [illegible] में स्थापित होता है । समस्त प्राणियों का पालनकर्त्ता यह सोम सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करता है ॥४॥

८१९.समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥५॥

हे सोमदेव ! आनन्द प्राप्ति के लिए तेज और बल को प्रदर्शित करने वाली गौएँ आपकी स्तुति करती हैं । शोधित हुआ ऐश्वर्यवान् सोमरस भी आनन्द के लिए संचरित होता है ॥५॥

८२०.य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥६॥

हे सोमदेव ! पाँचों जनों (समाज के चारों वर्णों अर्थात् सम्पूर्ण समाज) [illegible] प्रशंसा के योग्य धन, [illegible] हमें प्रदान करें ॥६॥

८२१.वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥७॥

मेधावर्धक, विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न, दिन, उषा एवं द्युलोक का [illegible], नदियों में जीवन का संचार करने वाला, विद्वानों द्वारा [illegible] यह सोमरस, इन्द्रदेव के [illegible] के लिए, [illegible] कलश में शोधित होता है ॥७॥

८२२.मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥८॥

[illegible] सोम [illegible] द्वारा [illegible] में प्रवाहित किया जाता है । [illegible] इन्द्रदेव की [illegible] मधुर सोमरस इन्द्रदेव को [illegible] करने के लिए, [illegible] में स्थापित होता है ॥८॥

८२३.अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥९॥

[illegible] यह सोम [illegible] उषा को प्रकाशित करता है, [illegible] नदियों को बढ़ाने वाला है और [illegible] इक्कीस [illegible] (७ [illegible] + १० इन्द्रियाँ + ४ [illegible] = २१) को [illegible] हुआ शोधित होता है ॥९॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

x x x

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

८२४. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥१॥

[illegible] हे इन्द्रदेव ! आप शूरवीर हैं, [illegible] इसलिए आपका [illegible] के योग्य है ॥१॥

८२५. एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥२॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! [illegible] इन्द्रदेव ! आप हमें [illegible] ॥२॥

८२६. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

हे [illegible] इन्द्रदेव ! [illegible] हों । [illegible] ॥३॥

८२७. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥४॥

समुद्र के समान [illegible] इन्द्रदेव [illegible] स्तुतियों द्वारा [illegible] ॥४॥

८२८. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥५॥

हे [illegible] इन्द्रदेव ! आपकी मित्रता में हम [illegible] । हे [illegible] इन्द्रदेव ! हम [illegible] करते हैं ॥५॥

८२९. पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥६॥

[illegible] इन्द्र की [illegible] है । [illegible] नहीं होता ॥६॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible]

देवता- [illegible]

छन्द- [illegible]

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

॥प्रथमः खण्डः॥

८३०.एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

छन्ने की ओर दुग्धादि से बने हुए सोमरस को, सभी सौभाग्यों की प्राप्ति के लिए, ऋत्विजों द्वारा शोधित किया जाता है ॥१॥

८३१.विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥२॥

बलशाली, पापनाशक यह सोमरस प्रजा व हमारी सन्तति के लिए, अनुकूल मार्ग बनाता है ॥२॥

८३२.कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥

हमारे लिए एवं हमारी गौओं के लिए उत्तम धन तथा पौष्टिक अन्न के प्रदाता सोमदेव, हमारी सुन्दर प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हैं ॥३॥

८३३.राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥४॥

मनुष्यों द्वारा किये गये यज्ञों में शुद्ध होने वाला यह राजा (प्रकाशमान) सोम, विचारपूर्वक की गयी स्तुतियों के प्रभाव से अन्तरिक्ष में संचरित होता हुआ कलश (धारण करने वाले पात्रों) की ओर बढ़ता है ॥४॥

८३४.आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥५॥

दैवी शक्तियों के लिए शोधित हे सोमदेव ! आप बलशाली धनादि हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हमारी तेजस्विता बढ़े ॥५॥

८३५.आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥६॥

हे सोम आप सैकड़ों गौओं एवं किरणों की शक्ति और उत्तम पोषण करने में समर्थ हैं । आप हमें सौभाग्य प्रदान करें ॥६॥

८३६.तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥७॥

देवलोक में व्याप्त नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त, सुन्दर हे सोमदेव ! उत्तम कर्मों (यज्ञों) के द्वारा आपको प्राप्त करने की हमारी कामना है ॥७॥

८३७.संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥८॥

हे अनुपम सोमदेव ! आप उत्तम कर्म करने वाले आनन्ददायी तथा शत्रुओं के सैकड़ों नगरों को ध्वंस करने वाले हैं । आपसे हम ऐश्वर्य की कामना करते हैं ॥८॥

८३८.आतस्त्वा रयिमभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥९॥

हे सत्य कर्मों के अधिपति, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी सोमदेव ! कष्ट एवं पीड़ा को महसूस न होने वाले गरुड़ आपको द्युलोक से पृथ्वी पर लाएँ ॥९॥

८३९.अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥१०॥

इसके बाद (पृथ्वी पर आकर) ज्ञानसम्पन्न एवं [illegible] सोम, प्रेरित होकर अपनी सामर्थ्य को, और अधिक बढ़ाकर, और भी श्रेष्ठ बन जाता है ॥१०॥

८४०.विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥११॥

यह सोम, [illegible] सर्वसाधारण हेतु [illegible] को [illegible] होने वाला दिव्य सोम आकाश को [illegible] कर लेता है ॥११॥

८४१.इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१२॥

ज्ञानवान् लोगों द्वारा शोधित हे सोमदेव ! आप अपने तेज से दीप्तिमान अन्न तथा सुन्दर गौएँ प्रदान करने के लिए प्रवाहित हों ॥१२॥

८४२.पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥१३॥

हे हरितवर्ण, स्तुत्य सोमदेव ! दुग्ध के साथ मिलकर शोधित होकर, याजकों को अन्नादि से परिपूर्ण करें ॥१३॥

८४३.पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥१४॥

दिव्य शक्तियों से युक्त तेजस्वी हे सोमदेव ! देवशक्तियों के लिए शोधित होकर, आप इन्द्रदेव को प्राप्त हों ॥१४॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

८४४.अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥१॥

यज्ञादि कर्म के ज्ञाता, दूरदर्शी, युवा, आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले ज्वालायुक्त अग्निदेव, [illegible] द्वारा उत्पन्न अग्निदेव से प्रज्वलित किया जाता है ॥१॥

८४५.यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥२॥

हे अग्निदेव ! देवताओं तक हविष्यान्न पहुँचाने वाले जो याजक, आप (देव-दूत) की उत्तम रीति से अर्चना करते हैं, आप उनकी भली-भाँति रक्षा करें ॥२॥

८४६.यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥३॥

हे शोधक अग्निदेव ! देवों के लिए हवि प्रदान करने वाले यजमान आपकी अर्चना करते हैं । आप उन्हें सुखी बनाएँ ॥३॥

८४७.मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥४॥

हम पवित्रता प्रदान करने वाले मित्र और वरुणदेव का आवाहन करते हैं । [illegible] हिंसक शत्रुओं का नाश करें ॥४॥

८४८.ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥५॥

सत्य की कामना करने वाले, सत्य पथ के पुष्टिकर्ता हे मित्रावरुणो ! आप दोनों हमारे बृहत्कर्म (यज्ञ) को सत्य से परिपूर्ण करें ॥५॥

८४९.कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥६॥

अनेक कर्मों को सम्पन्न करने वाले, विवेकशील, अनेक स्थानों में निवास करने वाले मित्रावरुण हमारी सामर्थ्यों और कर्मों को पुष्ट बनाते हैं ॥६॥

८५०.इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥७॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, तेजस्वी, मरुद्गण, निर्भय रहने वाले पराक्रमी इन्द्रदेव के साथ (संगठित हुए) अच्छे लगते हैं ॥७॥

[विभिन्न कर्मों के संचालक शक्ति-प्रवाह एकीकृत होकर उत्तम परिणाम उत्पन्न करते हैं ।]

८५१.आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥८॥

हे मरुतो, यज्ञ धारण करने में समर्थ मरुत्, स्वधा (पोषक पदार्थों) को धारण करके, पुनः गर्भ को प्राप्त करके (जलयुक्त बादलों) ग्रहण करते हैं ॥८॥

[यह सूक्त प्रकृति के चक्र को स्पष्ट करता है । पदार्थ प्रकृति के चक्र में विभिन्न रूपों (रूप-परिवर्तन) से गुजरते हैं । यही है प्रकृति चक्र में घूमता हुआ जल प्रकृति के रूप में प्रकट हो जाता है ।]

८५२.वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ किलेबंदी को ध्वस्त करने में समर्थ, तेजस्वी मरुतों ने अदृश्य किरणों को प्राप्त किया ॥९॥

८५३.ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥१०॥

सनातन पराक्रमी, सत्पुरुषों, स्तोताओं के कष्टों को दूर करने वाले, इन्द्र और अग्निदेवों का हम आवाहन करते हैं ॥१०॥

८५४.उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥११॥

शत्रुनाशक, पराक्रमी, इन्द्र और अग्निदेवों का संग्राम (जीवन-समर) में सहायता के लिए हम आवाहन करते हैं, वे हमें सुखी बनायें ॥११॥

८५५.हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ॥१२॥

श्रेष्ठ पुरुषों के पालनकर्ता हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप रिपुओं को दूर करें, दुष्टों और द्वेष करने वालों का विनाश करें और समस्त शत्रुओं को नष्ट करें ॥१२॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

८५६.अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१॥

... आनन्दवर्धक, रसयुक्त सोम ... आनन्द प्राप्त करने तथा उत्साह बढ़ाने के लिए ... पर स्थापित करने से ये हर्षित होते हैं ॥१॥

८५७. तत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥

देदीप्यमान दिव्य पवित्र सोम ... मित्र और वरुण के ... द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिए स्थापित किया जाता है ॥२॥

[[illegible]]

८५८. नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥३॥

[illegible] ॥३॥

८५९. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥४॥

[illegible] ॥४॥

[[illegible]]

८६०. सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥५॥

[illegible] ॥५॥

८६१. एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति।
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम् ॥६॥

हे सोमदेव ! [illegible] ॥६॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

८६२. यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों देव-लोक, सैकड़ों भूमियाँ तथा हजारों सूर्य भी यदि उत्पन्न हो जाएँ, तो भी आपकी बराबरी नहीं कर सकते। आपकी बराबरी का कोई पैदा नहीं हुआ। [illegible] करने वाला कोई भी नहीं है ॥१॥

८५३.आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से सभी की इच्छा पूरी करते हैं । हे बलवान्, वज्रिन्, धनवान् इन्द्रदेव ! अनेक संरक्षण के साधनों सहित गौओं से भरी हुई गौशालाएँ हमें प्रदान करें ॥२॥

८५४.वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥३॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! हम जल प्रवाह के समान सोमरस आपके पास लाते हैं । शोधित सोमरस लेकर स्तोतागण आसन देकर आपकी उपासना करते हैं ॥३॥

८५५.स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥४॥

हे सबको वास देने वाले इन्द्रदेव ! सोमरस निकालकर याजक आपकी स्तुति करते हैं । सोमरस की इच्छा वाले आप, वृषभ जैसा नाद करते हुए कब हमारे यहाँ पधारोगे ? ॥४॥

८५६.कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५॥

हे बलवान्, धर्षक इन्द्रदेव ! शत्रुनाशक, मुक्त एवं विपुल, गाय के समान पीला धन हम आपके पास से शीघ्र पाने के इच्छुक हैं । हे सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव ! कण्ववंशियों (मेधावी पुरुषों) द्वारा स्तुति किये जाने के बाद, आप सबको हजारों अन्न के बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥५॥

८५७.तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥६॥

(यज्ञ कर्मों में) शीघ्रता करने वाले याजक, विशाल (व्यापक) बुद्धि के संयोग से विशेष बल प्राप्त करने का प्रयास करते हैं । हे याजको ! तुम्हारे लिए इन्द्रदेव को स्तुतियों के माध्यम से हम वैसे ही नमनशील करते हैं, जैसे बढ़ई (शिल्पी) चक्र निर्माण करने के लिए लकड़ी (पहिये) पर चढ़ाने वाली धातु की पट्टी को झुकाकर गोलाई प्रदान करता है ॥६॥

८५८.न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥७॥

श्रेष्ठ कर्मों में मन लगाने वाले, उत्तमों की निन्दा करने वालों की प्रशंसा कोई भी नहीं करता । ऐसे दान-कर्मादि की अवहेलना न करने वालों को धन नहीं मिलता । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! सोमयज्ञ के समय उत्तम शक्तिशाली याजकों को ही आपसे देने योग्य धन प्राप्त होता है ॥७॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः॥

८६९.तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत् ॥१॥

यज्ञकर्ता के द्वारा तीन वाणियों (ऋक्, यजु, साम) का उच्चारण करने पर हरितवर्ण सोमरस, दुधारू गौओं के रंभाने की भाँति शब्दनाद करता हुआ क्षरित होता है ॥१॥

८७०.अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः। मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥२॥

अन्तरिक्ष से उत्पन्न सोम को शोधित करने के लिए यज्ञ में विशिष्ट वेदमंत्रों द्वारा स्तवन किया जाता है ॥२॥

८७१.रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥३॥

हे सोमदेव! हमारी हजारों इच्छाओं की पूर्ति के लिए, चारों दिशाओं से परिपूर्ण, धनादि के चारों समुद्र (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि ऐश्वर्य) हमें प्रदान करायें ॥३॥

८७२.सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४॥

अत्यन्त मधुर, आनन्ददायक, शुद्ध हुआ सोमरस, कलश में इन्द्रदेव के लिए संचित होता है। हे सोम रस! आपका रस देवशक्तियों के लिए आनन्ददायक हो ॥४॥

८७३.इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥५॥

देवताओं के अनुसार सोमरस इन्द्रदेव के लिए शोधित किया जाता है। ज्ञानवान, सर्वसमर्थ सोम, बल से प्रवृत्त होता है ॥५॥

८७४.सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

वाणी का प्रेरक, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का मित्र, जल में शोधित सोम सहस्रों धाराओं से प्रतिदिन कलश में शोधित होता है ॥६॥

८७५.पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥७॥

हे मंत्र के स्वामी सोमदेव! आपका शुद्ध हुआ भाग सब जगह व्याप्त है। सर्वव्यापक, शरीरों को भी आप उपलब्ध होते हैं। परिपक्व आपकी साधना करते हुए आपको प्राप्त करते हैं। शरीर को तप से बिना तपाये आपको कोई नहीं प्राप्त कर सकता ॥७॥

८७६.तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥८॥

सोम के पवित्र तेज शत्रु को नष्ट करने के लिए द्युलोक में फैले हैं। इनकी चमकती हुई रश्मियाँ द्युलोक के पृष्ठ भाग पर स्थित होने के लिए जाती हैं। ये रश्मियाँ याजकों की रक्षा करती हैं ॥८॥

८७७.अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥९॥

[illegible] ॥९॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः॥

८७८.प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।

उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

[illegible] ॥१॥

८७९. आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।

कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२॥

[illegible] ॥२॥

८८०.तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३॥

[illegible] ॥३॥

८८१.येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४॥

[illegible] ॥४॥

८८२.तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥५॥

[illegible] ॥५॥

८८३.श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।

सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥६॥

[illegible] ॥६॥

४६५. यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।

चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! जो भी साधक नवीन आनन्ददायी स्तुतियों से आपका स्तवन करता है, उस स्तोता को उत्तम यज्ञ से वृद्धि को प्राप्त हुई उस सत्य को पोषित करने वाली बुद्धि प्रदान करें ॥७॥

४६६. तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।

पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥८॥

जिन इन्द्रदेव की महिमा, मंत्र और स्तोत्रों द्वारा गायी गई है, उन महान् पराक्रमी इन्द्रदेव की हम पवित्र भाव से स्तुति करते हैं ॥८॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible] काण्व ४३०-४३३ । [illegible] काण्व ४३४-४३८ । ऋजु [illegible] अथवा [illegible] काण्व ४३९-४४१ । [illegible] काण्व ४४२-४४४ । मेधातिथि काण्व ४४५-४४६ । [illegible] वैयश्व ४४७-४४९ । [illegible] आङ्गिरस ४५१-४५२ । [illegible] ४५३-४५५ । पर्वत काण्व ४५१-४५३ । पुरुहन्मा आङ्गिरस ४५२-४५६ । देवातिथि काण्व ४५७-४५८ । [illegible] वैयश्व ४५७, ४५८ । [illegible] ४५९-४६० । [illegible] ४५४-४५८ । [illegible] आङ्गिरस ४५९-४६० । सोभरि काण्व ४६०-४६१ । गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन ४६०-४६२ । तिरश्ची आङ्गिरस ४६५-४६६ ।

देवता- [illegible] सोम ४३०-४३१, ४४०-४४२, ४४९-४५४ । अग्नि ४४०-४४१, ४४८, ४४९ । विश्वेदेवा ४४०-४४२ । इन्द्र ४४०, ४४२, ४४५-४५८, ४६०-४६६ । मरुद्गण ४४३ । [illegible] ४४८-४५५ ।

छन्द- गायत्री ४३०-४३४, ४३९-४४७ । [illegible] (विकल्प बृहती, पथ्या [illegible]) ४४६, ४४७, ४४२, ४४४, ४४५, ४४८ । [illegible] ४४८ । त्रिष्टुप् ४४९-४५२ । बृहती ४५३-४५८ । अनुष्टुप् ४४०-४४४, ४४३-४४५ । [illegible] ४५०-४५७ । [illegible] (विकल्प ककुप्, तथा [illegible]) ४५८, ४५९ । उष्णिक् ४६०-४६६ ।

॥इति चतुर्थोऽध्यायः॥

॥अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

८८६.प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥१॥

हे पवित्र सोमदेव ! दिव्य रस से परिपूर्ण आपकी धाराएँ गायों के दुग्ध के साथ कलश में पहुँचती हैं । संस्कारित करने वाले विद्वान् ऋषि आपको ऊपर के पात्र से नीचे के पात्र में रखते हैं ॥१॥

८८७.उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥२॥

पवित्रता को प्राप्त हुआ, शोधनीय, हरितवर्ण सोम पात्रों में स्थित होता है । उसकी सुन्दर ज्योतियुक्त किरणें सभी दिशाओं का घोषणा करती हैं ॥२॥

८८८.विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३॥

हे सर्वदर्शी, व्यापक प्रभाव वाले सोमदेव ! आपकी तीव्र रश्मियों का प्रभाव सर्वत्र फैला हुआ है । आप स्वाभाविक धर्म से शुद्ध होने वाले तथा सम्पूर्ण विश्व के स्वामी के रूप में सुशोभित हो रहे हैं ॥३॥

८८९.पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥४॥

पवित्रता को प्राप्त हुआ सोम, द्युलोक में तेजस्वी वैश्वानर की विलक्षण शक्ति को विद्युत् की तरह प्रकट करता हुआ, देदीप्यमान होता है ॥४॥

८९०.पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥५॥

हे सुशोभित होने वाले पवित्र सोमदेव ! दुष्टात्माओं के लिए दुर्गम, उत्साह बढ़ाने वाला आपका दिव्य रस ऊन के छन्ने से भलीप्रकार शुद्ध किया जाकर, संस्कारित होता है ॥५॥

८९१.पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥६॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाले हे सोमदेव ! आपका शक्तिवर्द्धक एवं तेजस्वी रस सुशोभित होता है । आपका विश्व में अपनी प्रकाश किरणें दिखाई देती हैं ॥६॥

८९२.प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥७॥

सूर्य की किरणों की तरह तेजस्वी गतिमान् सोम, जो त्वचा की कालिमा दूर करता है, कलशों में संगृहीत होकर प्रवाहित हुआ करता है ॥७॥

८९३. सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥८॥

हे सुख प्रदान करने वाले सोमदेव ! कल्याण मार्ग को पुष्ट करने तथा (विकास में विघ्न) दुष्कर्मों में लिप्त शत्रुओं का दमन करने के लिए हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥८॥

८९४. शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥९॥

[illegible] (सोम) से निकली हुई धार से उत्पन्न होने की ध्वनि, वर्षा के समय होने वाली वायु की ध्वनि के समान मधुर है । उस तेजस्वी सोम की बिजली आकाश में प्रकाश फैलाती है ॥९॥

८९५. आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावत्सोम वीरवत् ॥१०॥

[illegible] हे सोमदेव ! आप अन्न के भण्डार [illegible], साथ ही हमें पुत्र-पौत्र, गौएँ, स्वर्ण एवं [illegible] अश्व वैभव भी प्रदान करें ॥१०॥

८९६. पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥११॥

[illegible] के साथ अपनी ज्योतिर्मय रश्मियों से जगत् को प्रकाशित करने वाले सूर्यदेव की भाँति हे विश्व द्रष्टा सोमदेव ! अपने पुष्टिदायक रस से आप धरती और आकाश को भर दें । [illegible] संसार में [illegible] का पोषण करें ॥११॥

८९७. परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥१२॥

हे सोमदेव ! जल के मिले हुए दूध की भाँति आप अपनी सुखद धारा से हमें चारों ओर से घेर लें । (जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आपकी अनुकम्पा से सुखद अनुभूति का लाभ मिले) ॥१२॥

[[illegible]]

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

८९८. आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रुवन् ॥१॥

हे महिमावान् सोमदेव ! आप अपनी [illegible] प्रिय धारा से [illegible] हैं । जहाँ देवताओं का निवास है, वहाँ [illegible] में [illegible], ऐसा [illegible] है ॥१॥

८९९. परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥

हे सोमदेव ! [illegible] को [illegible] करते हुए, मनुष्यों के निमित्त अन्न आदि उत्पन्न करने के लिए, आप आकाश से वर्षा करें । [illegible] ॥२॥

९००. अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३॥

आकाश में [illegible] से [illegible] पवित्र किया जाता हुआ सोमरस, [illegible] आदि की लहरों को प्राप्त होता है ॥३॥

९०१. सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥४॥

[illegible], [illegible], [illegible] सोम [illegible] में [illegible] करने से [illegible] हुआ सोमरस [illegible] होता है ॥४॥

१०२.आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥

तैयार किया हुआ सोमरस, दूर एवं समीप से (अनुचित रीति से) संकलित (एकत्रित) करके, इन्द्रदेव को समर्पित किया जाता है ॥५॥

१०३.समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥

पत्थरों के द्वारा पीसकर निकाले गये, हरे रंग वाले सोमरस को, पान करने हेतु, देवराज इन्द्र को समर्पित किया जाता है । ऋत्विग्गण एक स्थान पर एकत्रित होकर उसकी स्तुति करते हैं ॥६॥

१०४.हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥७॥

बहिनों की तरह साथ-साथ रहने वाली दसों अँगुलियाँ, अपने स्वामी सोमरस को निचोड़ने का प्रयत्न करती रहती हैं ॥७॥

१०५.पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ॥८॥

शुद्ध किये गये हे तेजस्वी सोमदेव ! आप देवगणों को समर्पित करने के लिए तैयार किये गये हैं । सब प्रकार की (भौतिक एवं दैवी) सम्पदाएँ आप हमें प्रदान करें ॥८॥

१०६.आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥९॥

हे पवित्र सोमदेव ! जिस प्रकार से देवगणों के आशीर्वाद मिलते हैं, उसी प्रकार स्तुति करने योग्य अन्न (अपने रस की) वर्षा करें । आप भरपूर अन्न प्रदान करने वाले हों ॥९॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

१०७.जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥

प्रजा की रक्षा करने वाले, जागृत एवं उत्तम बल वाले, अग्निदेव याजकों की प्रगति का नवीन पथ प्रशस्त करने के लिए प्रकट हुए हैं । घृत की आहुतियों से अधिक प्रदीप्त होकर, विशाल आकाश का स्पर्श करने में समर्थ तेज से युक्त, पवित्रता प्रदान करने वाले अग्नि याजकों के लिए (अनुदान देने हेतु) प्रकाशित हैं ॥१॥

१०८.त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२॥

गुफा के अन्दर (गुप्त रूप) में अदृश्य ऊर्जा के रूप में व्याप्त हे अग्निदेव ! अङ्गिरा ऋषियों ने गुफा रूप में स्थित आपको प्रत्येक वन में अनुसन्धान करके प्राप्त किया । आप बलपूर्वक अरणि मंथन (काष्ठ मंथन) द्वारा उत्पन्न होते हैं, अतः हे अंगिरः ! आपको बल का पुत्र कहा जाता है ॥२॥

१०९.यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥३॥

यज्ञ की रक्षा करने वाले रथ पर, देवताओं के साथ बैठने वाले, द्युलोक और पृथिवी को धारक बनाने वाले (आकाशवाला, गुरु पर्यटक एवं यज्ञशाला) में अपनी गति प्रवर्तित करते हैं। सत्कर्म में स्थित, यज्ञ करने के इच्छुक अग्निदेव अपने स्थान पर (यज्ञकुण्ड में) यज्ञ करने के लिए स्थित होते हैं ॥३॥

९१०.अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥

यज्ञ को (अर्थात् सत्कर्म की पुष्टि को) बढ़ाने वाले हे मित्र और वरुण देवो! उत्तम रीति से तैयार व शुद्ध किया गया यह सोमरस आपके निमित्त प्रस्तुत है। आप इसे ग्रहण करें, ऐसी हमारी प्रार्थना है ॥४॥

९११.राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आशाते ॥५॥

आकाश में कभी द्रोह न करने वाले हे तेजस्वी मित्र और वरुण देवो! हजारों स्तम्भों पर टिके, मजबूत, श्रेष्ठ यज्ञ मण्डप में आप विराजें ॥५॥

९१२.ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम् ॥६॥

आज्याहुति के रूप में प्राप्त होने वाला घृत ही जिनका आहार है, ऐसे अदिति पुत्र, ऐश्वर्य के स्वामी सम्राट्, मित्र और वरुणदेव, कुटिलता से रहित, सरल हृदय वाले याजकों (यजमानों) की ही सहायता करते हैं ॥६॥

९१३.इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥७॥

शत्रुओं द्वारा जिन्हें रोका और हटाया न जा सके, जिनका किसी से भी विरोध नहीं, ऐसे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ने ऋषि दधीचि की हड्डियों से निर्मित वज्र से, बाधाएँ उत्पन्न करने वाले ९९ शत्रुओं का नाश किया ॥७॥

९१४.इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥८॥

अन्तरिक्ष में स्थित मेघों के अन्दर विद्यमान विद्युत् शक्ति को इन्द्रदेव ने प्राप्त किया और उसको शर्यणावती (जलवाहिनी) में प्राप्त किया ॥८॥

९१५.अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥९॥

गतिशील चन्द्रमण्डल में गोपनीय रूप से विद्यमान सूर्य की तेजस्वी किरणें ही रात्रि में प्रकाशित होती हैं— ऐसी मान्यता है ॥९॥

[चन्द्रमा में अपना प्रकाश न होने और सूर्य द्वारा उसके प्रकाशित होने का विज्ञान स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है।]

९१६.इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः। अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१०॥

हे इन्द्र और अग्निदेव! श्रेष्ठ मननशील ऋषियों द्वारा, आप दोनों की प्रथम बार की गई यह स्तुति, मेघों से होने वाली वर्षा की भाँति (सहज रूप से) उत्पन्न हुई है ॥१०॥

९१७.शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥११॥

हे इन्द्राग्नी! स्तुति करने वाले साधकों की प्रार्थना को आप सुनें। आप दोनों समर्थ स्वामियों के रूप में उनके (स्तोता के, देवता) कर्मों को (विशेष) फल प्रदान करें ॥११॥

९१८.मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये। मा नो रीरधतं निदे ॥१२॥

पापकर्म की ओर ले जाने वाले हेय प्रसंग, हे इन्द्र और अग्निदेव! आप हमें हिंसा और पाप कर्मों से बचाएँ। निन्दनीय कर्मों से हमें दूर रखें ॥१२॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

९१९.पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१ ॥

शक्ति व उल्लास बढ़ाने वाले, हे हरितवर्ण सोम ! आप वायु एवं मरुत् देवताओं को तृप्त करने के लिए क्षरित हों ॥१ ॥

९२०.सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । पवमानो अदाभ्यः ॥२ ॥

ज्ञान और बल से सम्पन्न, शुद्ध-संस्कारित होने से यजन कर्मों के फलप्रद, किसी के दबाव में न आने वाले सोमदेव, देवताओं के साथ शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ॥२ ॥

९२१.पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमारुह ॥३ ॥

कर्म- शक्ति विचारपूर्वक स्थापित किये गये, हे संस्कारित सोम ! आप अपने धारणशील गुणों से वायुदेव के साथ संयुक्त होकर, कलश में प्रतिष्ठित हों ॥३ ॥

९२२.तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥४ ॥

हे दीप्तिमान् सोम ! आपसे मित्रता करने के लिए हम नित्य लालायित हैं । दुष्ट-दुराचारी हमें पीड़ित कर रहे हैं । आप उन शत्रुओं का विनाश करें ॥४ ॥

९२३.तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥५ ॥

हे बभ्रुवर्ण सोम ! हमें दिन-रात आपका सान्निध्य प्राप्त हो । हम, दूर तक तपने वाले सूर्यदेव तथा आपको, पक्षी की भाँति (उसके गतिशील) देखते हैं ॥५ ॥

९२४.पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥६ ॥

पवित्रकारक, शुद्ध होने वाले, सबकी परीक्षा करके शत्रुओं का विनाश करने वाले, सोमदेव को विभिन्न स्तुतियों से शोभा बढ़ाते हैं ॥६ ॥

९२५. आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥७ ॥

विभिन्न रंगों वाला अरुणवर्ण सोम, कलश में स्थित होता है । इसके बाद यज्ञ स्थान में श्रेष्ठ स्थान पर बैठने वाले बलशाली इन्द्रदेव, उस सोमरस के पास होने के लिए जाते हैं ॥७ ॥

९२६.नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥८ ॥

हे तृप्तिदायक सोम ! आप हमें शीघ्र ही, हजारों प्रकार का महान् वैभव, सभी ओर से प्रदान करें ॥८ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

२३७. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

हे अश्ववाले इन्द्रदेव ! याजक द्वारा अपने हाथों से, पत्थर के सहयोग से निकाला गया सोमरस, लगाम से नियन्त्रित अश्व जैसे गुणों से युक्त एवं आनन्ददायक सिद्ध हो । आप इसका पान करें ॥१॥

२३८. यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

घोड़ों के स्वामी, हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! जिस सोमरस के उल्लास द्वारा आप वृत्रासुर (शत्रु) का हनन करते हैं, वह श्रेष्ठ रस आपको आनन्द प्रदान करे ॥२॥

२३९. बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! वसिष्ठ याजक (ऋत्विज) गुणगान करते हुए, जिन श्रेष्ठ वाणी से आपकी अर्चना कर रहे हैं, उसे आप भली-भाँति ध्यानपूर्वक स्वीकार करें । यज्ञस्थल पर इन (स्तोत्ररूपी) हवियों को आप ग्रहण करें ॥३॥

२४०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥४॥

युद्धस्थल पर अपने पराक्रम साहस द्वारा शत्रुओं का विनाश कर, उन पर विजय प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव की, सभी स्तुति करते हैं । मनुष्यों के बल का उत्कर्ष प्राप्त करने वाले, ओजस्वी गति से कार्य सम्पन्न करने वाले, इन्द्रदेव की महिमा का गान करके उनकी सामर्थ्य को बढ़ाते हैं ॥४॥

२४१. नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥५॥

शक्तिशाली इन्द्रदेव की उपमाओं से स्तुति करने वाले ऋत्विज आदि विप्र हैं, इन्द्रदेव को देखते ही पहले नमस्कार करते हैं । किसी से द्रोह न करने वाले हे श्रेष्ठ तेजस्वी ऋत्विजो ! आप भी इन्द्रदेव के कानों को प्रिय लगने वाली वाणियों से उनकी स्तुति करो ॥५॥

२४२. समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वःपतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥६॥

सोमरस की अतिशीघ्र अभिलाषा वाले, देवलोक के स्वामी, बल एवं वैभवशाली इन्द्रदेव, यजमानों को मंगलमय जीवन प्रदान करना चाहते हैं । ऋत्विग्गण ऐसे इन्द्रदेव की विधिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥६॥

२४३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥७॥

जो रथ के द्वारा सेनापति से आगे चलने वाले हैं, शत्रुओं का विनाश कर अपने भक्तों की रक्षा करने वाले हैं, उन प्रजा के स्वामी श्रेष्ठ इन्द्रदेव का हम गुणगान करते हैं ॥७॥

९६४.इन्द्रं ते शुष्म पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥८॥

हे [illegible] ॥८॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

९६५.परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१॥

[illegible] ॥१॥

९६६.स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥२॥

[illegible] ॥२॥

९६७.प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥३॥

[illegible] ॥३॥

९६८.त्वं ह्यङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥४॥

[illegible] ॥४॥

९६९.येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥५॥

[illegible] ॥५॥

९७०.सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥६॥

[illegible] ॥६॥

९७१.धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥७॥

[illegible] ॥७॥

९४२.असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥८ ॥

[illegible] ॥८ ॥

९४३.सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥९ ॥

[illegible] ॥९ ॥

[illegible]

९४४.ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१० ॥

[illegible] ॥१० ॥

[illegible]

९४५.प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥११ ॥

[illegible] ॥११ ॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

९४६.अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१ ॥

[illegible] ॥१ ॥

९४७.अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥२ ॥

[illegible] ॥२ ॥

९४८.अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥३ ॥

[illegible] ॥३ ॥

१४९. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञशाला में आनन्दवर्द्धक दिव्य सोमरस की धाराएँ, आपको प्राप्त करने के लिए प्रवाहित हो रही हैं । अतः इस तेजस्वी सोमरस का पान करें ॥४ ॥

१५०. न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥५ ॥

अश्वशक्ति से चालित रथ में बैठने वाले हे इन्द्रदेव ! आपसे अधिक पराक्रमी कोई दूसरा वीर नहीं है । आप जैसा कोई अन्य शक्तिशाली, अश्व पालक, योद्धा या स्वामी नहीं है ॥५ ॥

१५१. इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! आनन्ददायक, पवित्र सोमरस अर्पित करके विविध स्तोत्रों से गुणगान करते हुए सब इन्द्रदेव की ही पूजा करो । बलशाली उन इन्द्रदेव को नमस्कार करो ॥६ ॥

१५२. इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥७ ॥

हे अश्ववान् शूरवीर इन्द्रदेव ! यज्ञशाला में पधार कर आप हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को ग्रहण करें । आनन्दवर्द्धक, श्रेष्ठ, मधुर सोमरस का इच्छानुसार पान करें ॥७ ॥

१५३. इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्व३र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार अन्तरिक्ष से प्रचलित दिव्य स्तुतियों को सुनकर, आप अनुपम स्वर्ग के आनन्द से लाभान्वित होते हैं, उसी प्रकार इस मधुर, पवित्र सोमरस को पीकर तृप्त हों ॥८ ॥

१५४. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥९ ॥

शत्रुओं का शीघ्र विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! सूर्य की तरह मेघ (वृत्र) को, संयमी यति की भाँति बल राक्षस को एवं सोमपान की शक्ति से सम्पन्न आप भृगु की तरह हमारे शत्रुओं का विनाश करें ॥९ ॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible] । अमहीयु आङ्गिरस [illegible] । [illegible] काश्यप [illegible] । बृहन्मति आङ्गिरस [illegible] । भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव [illegible] । सुतंभर आत्रेय [illegible] । गृत्समद शौनक [illegible] । गोतम राहूगण [illegible] । [illegible] । दृढच्युत आगस्त्य [illegible] । सप्तर्षिगण [illegible] । रेभ काश्यप [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] अथवा [illegible] । [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । अग्नि [illegible] । [illegible] । [illegible] अथवा [illegible] अथवा [illegible] अथवा [illegible] । [illegible] [illegible] ।

देवता - पवमान सोम [illegible] । अग्नि [illegible] । [illegible] । इन्द्र [illegible] । [illegible] ।

छन्द- जगती [illegible] । गायत्री [illegible] । [illegible] (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) [illegible] । [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । [illegible] ।

॥इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- अङ्गुत पाम ८८६-८८८ । सव्यईषु आङ्गिरस ८८९-८९२ । नेमार्गिम काण्व ८९३-८९७ । बृहस्पति आङ्गिरस ८९८-९०४, ९२०-९२६ । पृथु वासि अथवा वमदीय पार्थ ९०५-९०७ । सुहस्त्य घोषेय ९०८-९०९ । गृत्समद शौनक ९१०-९१९ । गौतम राहूगण ९३३-९३६, ९४७-९५१ । [illegible] ९३८-९३८, ९२७-९२९ । बृहस्पति आङ्गिरस ९३९-९४१ । सप्तर्षिगण ९४२-९४३ । ऐश काश्यप ९६०-९६३ । पुरहन्मा आङ्गिरस ९६३-९६४ । [illegible] काश्यप [illegible] ९६५-९७७ । [illegible] ९६८ । [illegible] आङ्गिरस ९६९ । अग्नि चाक्षुष ९७०-९७२ । [illegible] ९७३-९७४ । [illegible] अथवा पावक अग्नि अथवा अग्नि [illegible] अथवा [illegible] ९७६-९८० । [illegible] ९८२-९८४ ।

देवता - पवमान सोम ८८६-९०७, ९११-९२८, ९३१-९७० । अग्नि ९०८-९०९, ९३८-९३८ । विश्वकर्मा ९१०-९१२ । इन्द्र ९१३-९२४, ९३०-९३४, ९४१-९५४ । इन्द्राग्नी ९६६-९६८ ।

छन्द- जगती ८८६-८८८, ९०७-९०९ । गायत्री ८८९-९०७, ९१०-९२२, ९३१-९३६, ९३७-९३७, ९३९-९४४ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ९२२-९२६, ९३१-९३४ । विराट् ९२०-९२९ । अतिजगती ९४० । उष्णिक् ककुप् ९४१-९४२ । ककुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) ९३८, ९३९ । अनुष्टुप् ९४०-९४२ । त्रिष्टुप् ९४४-९४५ । अनुष्टुप् ९४६-९५१ । पुरउष्णिक् ९५२-९५४ ।

॥इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥अथ षष्ठोऽध्यायः॥

॥प्रथमः खण्डः॥

९५५.गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥१॥

[illegible] सभी भुवनों में व्याप्त हे [illegible] सोम ! आप पवित्र हों । हे सोमदेव ! आप [illegible] [illegible] स्तुतियों द्वारा उपासना करते हैं ॥१॥

९५६.त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२॥

हे [illegible] पवित्र सोम ! [illegible] । आपके अनुग्रह से हम सभी धन-सम्पदा से सम्पन्न होकर सुखी जीवन जियें ॥२॥

९५७.ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३॥

[illegible] सभी लोकों में [illegible], हे तेजस्वी [illegible] सोम ! [illegible] । हे दिव्य सोम ! आपके [illegible] में स्थित रहें ॥३॥

९५८.पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥४॥

हे विश्व के ज्ञाता दिव्य सोम ! पवित्र होती हुई आपकी धाराएँ सूर्य की रश्मियों की भाँति तीव्र वेग से नीचे आ रही हैं ॥४॥

९५९.केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥५॥

हे विश्वव्यापी सोम ! अन्तरिक्ष में [illegible] (विचार-तरंगों) के रूप में [illegible] के रूप में [illegible] विभिन्न प्रकार का वैभव प्रदान करते हैं ॥५॥

९६०.जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दन्देवो न सूर्यः ॥६॥

सूर्य रश्मियों की भाँति प्रकाशित होने वाले हे सोमदेव ! स्तुति-गान के साथ पवित्र होते हुए, आप ध्वनिपूर्वक [illegible] में स्थित हो रहे हैं ॥६॥

९६१.प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥७॥

दुग्ध आदि पोषक तत्त्वों से युक्त, [illegible] सोमरस पवित्र होते समय, जल के साथ [illegible] हुए, [illegible] हो रहा है ॥७॥

९६२.अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥८॥

शुद्धता को प्राप्त होने वाला सोमरस अधः पात्र (द्रोण कलश) में बहकर जल की भाँति मिल रहा है। देवराज इन्द्र इस पवित्र रस का पान करते हैं ॥८॥

९६३.प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥९॥

इन्द्रदेव का आनन्दवर्द्धन करने वाले, हे पवित्र सोम! ऋत्विग्गण की अंगुलियों के द्वारा आप कलशों (पात्रों) द्वारा यज्ञ वेदी पर पहुँचाए जाते हैं ॥९॥

९६४.इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥१०॥

हे सोमदेव! पत्थरों से कूटकर निचोड़ने के बाद आपको छन्नी द्वारा शुद्ध किया जाता है, तब आप इन्द्रदेव के लिए पीने योग्य होते हैं ॥१०॥

९६५.त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥११॥

मनुष्यों के योग्य हे संस्कारित सोम! मनुष्य मात्र के आनन्द को बढ़ाने वाले, याजकों के द्वारा धारण किये जाने, आप पवित्रता को प्राप्त करें ॥११॥

९६६.पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥१२॥

अलौकिक रीति से शत्रुओं का विनाश करने वाले, श्रेष्ठ मन्त्रों द्वारा स्तवन करने योग्य हे सोमदेव! आप शुद्धता और पवित्रता को प्राप्त करें ॥१२॥

९६७.शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥१३॥

विधिपूर्वक सेवन किया गया, शुद्ध, संस्कारित और मधुर सोमरस, देवताओं को तृप्ति देने वाला एवं दुष्टों का विनाश करने वाला (पापियों का नाश करने वाला) कहा गया है ॥१३॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* *

॥द्वितीयः खण्डः॥

९६८.प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥

देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यह क्रान्तदर्शी सोम उत्तम रीति से संस्कारित किया जाता है। विजयशील वह सोम सभी शत्रुओं को परास्त करता है ॥१॥

९६९.स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥२॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाले दिव्य सोम, स्तुति करने वाले याजकों को धन-धान्य प्रदान करने की इच्छा से संयुक्त करते हैं ॥२॥

९७०.परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥

हे संस्कारित हुए मननीय सोम! आप हमें विचारपूर्वक अन्न के भण्डार प्रदान करें ॥३॥

९७१.अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

हे दिव्य सोम! स्तुति करने वाले धनवान् याजकों के लिए भी आप महान् यश, अक्षय निधि एवं अन्न के भण्डार प्रदान करें ॥४॥

९७२.त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५ ॥

उत्तम कर्मों के लिए, राजा के समान उत्तम व्रत वाले, वहन करने वाले, जलों के धारक हे दिव्य सोम ! याजकों द्वारा पवित्र होकर वाणियों (स्तुतियों) को आप स्वीकार करें ॥५ ॥

९७३.स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥६ ॥

यज्ञ सम्पन्न कराने वाला, हथेलियों की उंगलियों से शुद्ध किया जाता हुआ, जल मिश्रित सोम, पात्र में स्थित होता है ॥६ ॥

९७४.क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७ ॥

यज्ञ की भाँति विजय कामनाओं में निरत, क्रीड़ा करने वाले हे सोमदेव ! आप स्तोताओं को श्रेष्ठ सामर्थ्य प्रदान करते हुए शुद्धता को प्राप्त होते हैं ॥७ ॥

९७५.यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥८ ॥

हे सोमदेव ! आप दिव्य पोषक रस को, अन्न एवं वनस्पतियों के साथ हमें उपलब्ध कराते रहें । हमें सम्पूर्ण वैभव प्रदान करें ॥८ ॥

९७६.इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥९ ॥

देवताओं के प्रिय आहार, हे सोमदेव ! याजकों द्वारा जिस भावना से आपकी स्तुति की जाती है, उसी स्नेह के साथ आप यज्ञशाला में श्रेष्ठ आसन ग्रहण करें ॥९ ॥

९७७.उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आप हमें गाय, घोड़े, अन्न आदि के रूप में अपार वैभव शीघ्र प्रदान करें ॥१० ॥

९७८.यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥११ ॥

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले, हे सोमदेव ! अपने उपायों से असुरों का विनाश करके आप उन पर विजय प्राप्त करते हैं । कभी पराजित न होने वाले आप बलिष्ठता को प्राप्त हों ॥११ ॥

९७९.या ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥१२ ॥

आपकी मधुर रस की धाराओं से सभी को संरक्षण देने वाले, हे सोमदेव ! आप उन धाराओं के साथ शुद्धता को धारण करें ॥१२ ॥

९८०.सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥१३ ॥

ऊन के छन्ने द्वारा शुद्ध होने वाले हे सोमदेव ! यज्ञ के मूल स्थान पर स्थापित होकर, आप इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए प्रवाहित हों ॥१३ ॥

९८१.त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद्घृतं पयः ॥१४ ॥

धन-वैभव प्रदान करने वाले हे स्वादिष्ट सोम ! आप अंगिरा ऋषियों के लिए घृत दुग्धयुक्त पोषक आहार प्रदान करें ॥१४ ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥ तृतीयः खण्डः ॥

९८२. तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥१॥

हे अग्निदेव ! जब आप मुख में डाले गये अन्न (आहुति) के रूप में ओषधियों, वृक्ष-वनस्पतियों को चबाते हैं, तब आपकी रश्मियाँ वर्षणशील की विद्युत् अथवा उषाकाल के प्रकाश की भाँति प्रदीप्त होती हैं ॥१॥

९८३. वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥२॥

हे अग्निदेव ! वायु के द्वारा प्रकम्पित, आप अपने लिए आहार वनस्पतियों की ओर प्रेरित होकर, तब उन्हें लपटों द्वारा चारों ओर से घेर लेते हैं, उस समय आपका अजस्र तेज सब कुछ भस्म कर देने की इच्छा से, सभी दिशाओं में उसी प्रकार फैलता है, जैसे कोई रथ का दस्ता मुड़ मोड़ ले ॥२॥

९८४. मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३॥

विवेक बुद्धि को बढ़ाने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, यज्ञ एवं देवताओं के आवाहनकर्ता साधक अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं। हे अग्निदेव ! (थोड़ा अथवा बहुत) हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए, हम आपका समान रूप से आवाहन करते हैं। आपके अतिरिक्त किसी अन्य का नहीं ॥३॥

९८५. पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥४॥

हे सूर्य और वरुण देवता ! आप दोनों के पास प्रचुर मात्रा में उपयोगी साधन उपलब्ध हैं। आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की अनुकूलता हमें सदैव प्राप्त हो ॥४॥

९८६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥५॥

द्वेष न करने वाले आप दोनों (सूर्य और वरुण) की हम भली-भाँति वन्दना करते हैं। हमें आपकी मित्रता का लाभ मिले तथा धन-धान्य को प्राप्त हों ॥५॥

९८७. पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
साह्याम दस्यून् तनूभिः ॥६॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आप श्रेष्ठ संरक्षक के रूप में अपने साधनों से हमारा संरक्षण एवं पालन करें। तथा सामर्थ्य के बल पर हम भी शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥६॥

९८८. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! पात्र में रखे हुए सोमरस को ग्रहण करें तथा बलशाली होकर उठें और ठोढ़ी को हिलाएँ, अर्थात् अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए तैयार हो जाएँ ॥७॥

९८९. अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥८॥

शत्रुओं के प्रति स्पर्धा का भाव रखने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा शत्रुओं का नाश किये जाने पर, द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों ही आनन्द को प्राप्त करते हैं ॥८॥

९९०.वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! सत्य को बढ़ाने वाली, नवीन कल्पनाओं वाली, आठ पदों वाली, हम आपकी स्तोत्र की स्तुति करते हैं ॥९॥

९९१.इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥१०॥

हे सुख प्रदाता इन्द्र और अग्निदेव ! ये स्तोत्रगण आप दोनों की वन्दना करते हैं । आप दोनों सोमरस का पान करें ॥१०॥

९९२.या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥११॥

जगत् के नायक हे इन्द्र और अग्नि देवो ! याजकों द्वारा आकांक्षित किये जाते हुए, आप दोनों उनके प्रदत्त हविष्यान्न के लिए, यज्ञशाला में अपने द्रुतगामी वाहनों (अश्वों) की सहायता से पधारें तथा कामनाओं की सहायता करें ॥११॥

९९३.ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥१२॥

हे यज्ञ के नायक इन्द्र और अग्नि देवो ! विधिपूर्वक अभिषुत किये गये इस सोमरस के पास उसका पान करने के लिए, आप अपने वाहनों के साथ पधारें ॥१२॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

९९४.अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥१॥

हे अति तेजस्वी सोम ! वर्षित हुए आप, जल के साथ मिश्रित (अथवा काष्ठ-पात्र में पहले से विद्यमान) शब्द (ध्वनि) करते हुए द्रोण कलश में स्थित हों ॥१॥

९९५.अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२॥

जल मिश्रित शुद्ध सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् एवं विष्णुदेवों की तृप्ति के लिए कलश में स्थित हो ॥२॥

९९६.इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

हे दिव्य सोम ! हमारी सन्तानों के लिए आप सहस्रों प्रकार का अन्न, धनादि ऐश्वर्य सभी ओर से लाकर प्रदान करें ॥३॥

९९७.सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥४॥

ऋत्विजों द्वारा निचोड़ा गया, आनन्ददायक, हरितवर्ण सोमरस, अश्व के समान वेगपूर्वक चलते हुए, कलश में स्थित होता है ॥४॥

९९८.अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥५॥

उत्तम कर्म के लिए तैयार किया जाने वाला, पवित्र, सुख देने वाला, आनन्ददायक यह सोमरस, अपने पोषक तत्त्वों के साथ पात्र में उसी प्रकार स्थित हो रहा है, जिस प्रकार सभी नदियाँ अपने सहायक समुद्र के पास पहुँचकर स्थिर होती हैं ॥५॥

९९९. यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥६॥

शक्तिवर्धक को प्राप्त होने वाले हे दिव्य सोम ! इस पृथ्वी पर जो भी अद्भुत प्रशंसनीय दिव्य वैभव है, वह सब आप हमें प्रदान करें ॥६॥

१०००. वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदः ॥७॥

मनुष्यों के जीवन को पवित्र करने वाले हे बलिष्ठ सोम ! गर्जनशील होते हुए, आप अपने आसन (कुश) पर स्थित हों ॥७॥

१००१. युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥८॥

गौओं के स्वामी, ऐश्वर्यशाली, हे सोम और इन्द्र देवो ! आप दोनों विशिष्ट रूप से इस जगत् के स्वामी हैं । हम सबकी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग में नियोजित करें ॥८॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पंचमः खण्डः॥

१००२. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

सुख-सामर्थ्य की कामना से याजकों द्वारा स्तुति से बढ़ाये गये, वृत्रों का नाश करने वाले इन्द्रदेव को हम छोटे अथवा बड़े युद्धों में अपनी सुरक्षा का आवाहन करते हैं । वे युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥१॥

१००३. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

शत्रुओं का विनाश कर उनका वैभव नष्ट करने वाले, वीर सैनिक हे इन्द्रदेव ! आप याजकों को अपार वैभव प्रदान करें, आप महान् ऐश्वर्यशाली हैं ॥२॥

१००४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

युद्धस्थल में विजेता को अपार वैभव प्राप्त होता है । शक्तिशाली एवं गतिशील अश्वों को युक्त कर रथ जोतने वाले हे इन्द्रदेव ! संग्राम में किसको मारना है और किसको नहीं ? इसका विचार करते हुए हमको (याजकों को) महान् वैभव प्रदान करें ॥३॥

१००५. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥४॥

स्वादिष्ट और मधुर सोमरस का पान करती हुई उज्ज्वल किरणें, इन्द्रदेव (सूर्य) के साथ सुशोभित होती हैं । ये स्वराज्य इन्द्रदेव के साथ आनन्दपूर्वक रहने वाली किरणें स्वराज्य में ही निवास करती हैं ॥४॥

१००६.ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥५ ॥

इन्द्र (सूर्य) देव को स्पर्श करने वाली धवल किरणें, इन्द्रदेव की प्रिय किरणें वज्र को प्रेरणा देती हैं और सोमरस प्रदान करती हुई स्वराज्य में रहती हैं ॥५ ॥

१००७.ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥६ ॥

प्रकृष्ट ज्ञान से (किरणें) इन्द्र (देव) के बल का पूजन करती हैं । पूर्व में जो पुरुष को समझने वाली थी, इन्द्र देव द्वारा पहले किये गये कर्मों का स्मरण दिलाती हैं और स्वराज्य के अनुशासन में ही रहती हैं ॥६ ॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१००८.असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥१ ॥

पर्वत शिखरों पर उत्पन्न होने वाला, आनन्दवर्द्धक सोमरस, जल में मिश्रित होकर बाज पक्षी की भाँति वेगपूर्वक पात्र में स्थित होता है ॥१ ॥

१००९.शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥२ ॥

याजकों द्वारा अभिषुत, देवों के श्रेष्ठ आहार, जल मिश्रित, पवित्र सोमरस को गौएं अपना दुग्ध मिलाकर अधिक स्वादिष्ट बना रही हैं ॥२ ॥

१०१०.आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसं सधमादे ॥३ ॥

ऋत्विज अमरत्व, अश्व के समान स्फूर्तिदायक इस सोमरस को यज्ञस्थल में आनन्द प्राप्ति के लिए मधुर रस का प्रवाहित करते हैं ॥३ ॥

१०११.अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥४ ॥

अन्नसमृद्धि के स्वामी हे सोमदेव ! देवताओं के द्वारा वांछित महान् ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें और मध्यकलश (मध्य कोश) में सोम रस को स्थिर करें ॥४ ॥

१०१२.आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥५ ॥

प्रजा की भाँति समाज पालन करने वाले, कुशलताओं के हे सोमदेव ! याजकों की बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हुए, अन्तरिक्ष से बरसने वाले वर्षण की तरह गौओं के पात्र में स्थित होने की कृपा करें ॥५ ॥

१०१३.प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥६ ॥

जल से उत्पन्न होने वाले हे दिव्य सोम ! यज्ञ के अवसर पर आप अपने रथ को प्रेरित करें । सर्वप्रिय वृष्टि को उत्पन्न करते हुए पृथ्वी और अन्तरिक्ष को प्रकाशित करें ॥६॥

१०१४.उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद्गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥७॥

त्रित (पाषाण) पत्थरों की गुहा में पहुँचने के समान, कठोर दो फलकों के मध्य में प्रकट होने वाले सोमरस की ऋत्विजों ने गायत्री आदि सात छन्दों से स्तुति की ॥७॥

१०१५.त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥८॥

त्रित (तीन भुवनों) के तीनों स्थानों (पक्षों) में व्याप्त हे दिव्य सोम ! अपनी रस की धारा से इन्द्रदेव को प्रेरित करें । श्रेष्ठ कर्मवान् साधक (इन्द्र हेतु) उत्तम स्तोत्रों से सुशोभित करते हैं ॥८॥

१०१६.पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥९॥

रस रूप में निकलने हे सोमदेव ! अपनी मधुर-मीठी धारा से इन्द्र तथा विष्णु आदि सभी देवताओं की तृप्ति के लिए पवित्र होकर अन्न सुलभ में स्थित हों ॥९॥

१०१७.त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥१०॥

संस्कारित होने वाले (छाने जाने) हे पवित्र सोमदेव ! आपसे जो द्रोह न करने वाली अँगुलियाँ आपको उसी प्रकार निचोड़ती हैं, अर्थात् साफ करती हैं, जैसे गौ माता नवजात बछड़े को प्यार से चाटती है ॥१०॥

१०१८.त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥११॥

पवित्रता को धारण करने वाले हे महान् व्रती सोमदेव ! अन्तरिक्ष और पृथ्वी को भली-भाँति धारण करते हुए, आप अपनी महिमा के अनुरूप कवच को धारण करते हैं ॥११॥

१०१९.इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१२॥

अपनी शक्तिरूप संस्कार से इन्द्रदेव के मानस को बढ़ाते हुए, उन्हें आनन्दित करने वाला सोमरस पवित्र होता है । शक्तिशाली यह सोमरस दुराचारी शत्रुओं को पीड़ित करते हुए उनका नाश करता है तथा साधकों को वैभव प्रदान करता है ॥१२॥

१०२०.अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥१३॥

पत्थरों की सहायता से निकाला गया, तेजस्वी, सुखदायी, सोमरस, अपनी मधुर धार से पवित्रता को प्राप्त हो रहा है । इन्द्रदेव का सान्निध्य पाने की इच्छा वाला, यह सोमरस उनके उत्साह को बढ़ाते हुए सभी को तृप्त कर रहा है ॥१३॥

१०२१.अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१४॥

ऋतुओं को धारण करने वाला, यज्ञीय, तेजस्वी सोम, अपने मधुर रस से देवताओं को तृप्त करता है। इस प्रकार अंगुलियों द्वारा पवित्र होते हुए पात्र में स्थित हो रहा है ॥१४॥

॥इति षष्ठः खण्डः॥

* * *

॥सप्तम खण्डः॥

१०२२.आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

हे अजर-अमर तेजस्वी अग्निदेव ! हम याजकगण आपको उत्तम समिधाओं से प्रज्वलित करते हैं। जब आपकी दिव्य प्रकाश से गगन आलोकित करती है, तो स्तुति करने वालों को भी अन्न वैभव प्रदान करें ॥१॥

१०२३.आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

प्रजा का पोषण करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, आनन्दवर्धक, सुप्रकाशित हे अग्निदेव ! ऋचाओं का उच्चारण करते हुए याजकगण आपकी ज्वालाओं में आहुति दे रहे हैं, आप इन स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२॥

१०२४.ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

प्रजा का पालन करने वाले, शक्ति-सम्पन्न, तेजस्वी हे अग्निदेव ! आहुति प्रदान करते समय दोनों पात्र आपके मुख तक पहुँचते हैं। हविष्यान्न द्वारा आपको प्रसन्न करने वाले स्तोताओं को आप महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३॥

१०२५.इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥४॥

ज्ञान की साधना एवं ज्ञान का विस्तार करने वाले हे विद्वान् उद्गाताओ ! प्रशंसनीय इन्द्रदेव के लिए विस्तारपूर्वक साम गायन करें ॥४॥

१०२६.त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥५॥

सूर्य को प्रकाशित करने वाले, दुष्ट-दुराचारियों को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप विश्वकर्मा और देवताओं की तरह महान् हैं ॥५॥

१०२७.विभ्राजं ज्योतिषा स्वऽरगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥६॥

अपने तेज का विस्तार करते हुए सूर्य को प्रकाशित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप [illegible] । समस्त देवगण आपसे मित्रतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं ॥६॥

१०२८.असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥७ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप पधारें, आपके लिए सोमरस प्रस्तुत है। जैसे सूर्यदेव अपनी रश्मियों से अन्तरिक्ष को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही (इस सोम का पान करके) आप महान् शक्ति को प्राप्त करें ॥७ ॥

१०२९.आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥८ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप मंत्रों द्वारा जोड़े गये घोड़ों वाले अपने रथ पर बैठें। सोम कूटते हुए पत्थर की ध्वनि आपके मन को हमारी ओर आकर्षित करे। (अर्थात् आप सोमरस पीने की इच्छा से यहाँ आयें) ॥८ ॥

१०३०.इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥९ ॥

अप्रतिम शक्ति से सम्पन्न इन्द्रदेव को उनके अश्व यज्ञशाला में पहुँचायें, जहाँ मानवों-ऋषियों द्वारा स्तुति-गान हो रहा है ॥९ ॥

॥इति सप्तमः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- (अनुक्त गानादि) [illegible] । कश्यप मारीच [illegible] । असित काश्यप अथवा देवल [illegible], [illegible], अवत्सार काश्यप [illegible] । जमदग्नि भार्गव [illegible], [illegible] । [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । कुत्स आङ्गिरस [illegible] । भरद्वाज बार्हस्पत्य [illegible] । [illegible] । [illegible] । गोतम राहूगण [illegible], [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । त्रित आप्त्य [illegible] । रेभसूनू काश्यप [illegible] । मनु [illegible] । [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] ।

देवता- पवमान सोम [illegible], [illegible], [illegible] । अग्नि [illegible], [illegible] । मित्रावरुण [illegible] । इन्द्र [illegible], [illegible], [illegible] । इन्द्राग्नी [illegible] ।

छन्द- जगती [illegible], [illegible] । गायत्री [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] । बृहती [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible], [illegible] । [illegible], [illegible] । [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । [illegible] ।

॥इति षष्ठोऽध्यायः ॥

॥अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१०३१.ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१ ॥

यज्ञों के प्रकाशक, देवताओं के लिए प्रिय, मधुर रस उत्पादक, पोषक, जनक, वैभवशाली, आनन्दवर्धक, उत्साहवर्धक, इन्द्रिय को प्रिय, इन गुणों से युक्त है सोमदेव । आप अन्तरिक्ष और भूलोक के गुप्त वैभव को यजमानों के लिए प्रदान करते हैं ॥१ ॥

१०३२.अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२ ॥

दिव्यलोक के अधिपति सैकड़ों धाराओं (मार्गों) द्वारा शोधित, बुद्धिवर्धक और बलशाली हरितवर्ण सोमरस ध्वनियुक्त होकर कलश में स्थापित होता है । ऊर्णामिश्रित होकर जलप्रवाह से शोधित, ऐसा वीर्यवान् सोम अभीष्ट पूर्ति हेतु मित्र के समान यज्ञ के घर में प्रतिष्ठित होता है ॥२ ॥

१०३३.अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३ ॥

हे सोमदेव ! जल मिश्रित होने से पूर्व शोधित होने के लिए और स्तुतियों को प्राप्त करने के लिए आप पुरुषार्थ के आकांक्षी किये जाते हैं । श्रेष्ठ आयुधों से युक्त होकर, आप गौओं का संरक्षण करते हुए जाते हैं और प्रचुर वैभव प्रदान करते हैं । हे सोमदेव ! आप याजकों द्वारा शोधित किये जाते हैं ॥३ ॥

१०३४.असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥४ ॥

तेजस्वी, बलशाली और वेगवान् सोमरस भी, अश्वादि एवं गवादि प्राप्ति हेतु याजकों द्वारा परिशोधित किया जाता है ॥४ ॥

१०३५.शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥५ ॥

याजकों द्वारा अपने हाथों से तैयार किया गया विशेष शोभायमान, सोमरस शोधक पात्र द्वारा सम्पादित किया जाता है ॥५ ॥

१०३६.ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥६ ॥

दिव्य सोम हविदाता को स्वर्गीय, अन्तरिक्षीय और पार्थिव सभी प्रकार की विभूतियों से युक्त करें ॥६ ॥

१०३७. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥७ ॥

हे सोमदेव ! देवशक्तियों का सान्निध्य पाने की इच्छा वाले आप अति परिशोधित स्थिति में शोधित हों । हे सोमदेव ! बलवर्धक आप इन्द्रदेव के लिए प्रतिष्ठित हों ॥७ ॥

१०३८.आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥८ ॥

हे सोमदेव ! तेजस्वी, शक्तिमान् और धारणशक्ति गुणों से युक्त आप हमें प्रचुर मात्रा में अन्न और बल प्रदान करें एवं निर्धारित स्थान पर पधारें ॥८ ॥

१०३९.अदुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥९॥

शोधित सोमरस की धाराएँ, जिस मधुर रस को यज्ञ में संगृहीत करती हैं । सत्कर्मों से युक्त याज्ञिक, सोमरस को जल में मिश्रित करते हैं ॥९॥

१०४०.महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१०॥

हे सोमदेव ! जिस समय आप में गाय का दूध मिश्रित करते हैं, उसमें पूर्व, मिश्रित गुणों से युक्त नदियों का जल अथवा अन्य शुद्ध जल मिलाने का प्रावधान है ॥१०॥

१०४१. समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥११॥

जलयुक्त, देवलोक का धारक, आधारभूत, इच्छित सोम, यज्ञ के जल में बार-बार शोधित किया जाता है ।

१०४२.अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥१२॥

शक्तिवर्द्धक, हरितवर्ण, महानता युक्त तथा मित्र के समान दर्शन योग्य सोम, शब्द करते हुए सूर्य की तरह प्रकाशित होता है ॥१२॥

१०४३.गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥१३॥

हे सोमदेव ! आपकी शक्ति-सामर्थ्य से ही कर्मों को प्रेरणा देने वाले स्तोतागण वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं और स्तुति-मन्त्रों द्वारा आनन्दप्राप्ति के लिए आपको सुशोभित करते हैं ॥१३॥

१०४४.तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥१४॥

संसार के कल्याण की इच्छा से शत्रुओं का संहार करने वाले हे सोमदेव ! महान् स्तोत्रों से युक्त हम, आनन्दवृद्धि के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥१४॥

१०४५. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥१५॥

हे सोमदेव ! यज्ञ के मूल तथा प्रमुख आत्मा के रूप में आप गौ, अश्व, अन्न और सुसन्तति प्रदान करने वाले हैं ॥१५॥

[वैदिक कालीन यज्ञों में सोम को अनिवार्य माना गया था । सोम न हो तो यज्ञ भी सम्भव नहीं, इसलिए इसे यज्ञ की आत्मा कहा गया है ।]

१०४६.अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥१६॥

हे सोमदेव ! जल-पर्जन्य की वर्षा के समान हमारी इन्द्रियों की शक्ति-सामर्थ्य को आप अपनी अमृत रूपी मधुर धारा से बढ़ाएँ ॥१६॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१०४७.सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१॥

ओजस्वी, पवित्र हे सोमदेव ! आप देवशक्तियों को अर्पणशील हों तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के बाद हमें श्रीमान् बनाएँ ॥१॥

१०४८.सना ज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२॥

हे सोम ! हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । यज्ञों द्वारा उत्तम सुख और सौभाग्य देते हुए हमारा कल्याण करें ॥२॥

१०४९.सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

हे सोमदेव ! आप हमें बल और पवित्र कर्म-शक्ति प्रदान करें, शत्रुओं को पराजित करके आप हमारा कल्याण करें ॥३॥

१०५०.पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

हे सोमरस शोधित करने वाले याजको ! इन्द्रदेव के पान हेतु सोमरस को पवित्र करो । (जिससे सोमदेव) हमारा कल्याण करें ॥४॥

१०५१.त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

हे सोमदेव ! आप अपने सत्कर्मों और संरक्षण युक्त साधनों से हमें सूर्य प्रकाश की ओर प्रेरित करें, जिससे हमारा श्रेय सिद्ध हो ॥५॥

१०५२.तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

हे सोमदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त संरक्षण से एवं आपके कौशल से युक्त हम बहुत वर्षों तक सूर्य दर्शन से लाभान्वित हों अर्थात् दीर्घायुष्य प्राप्त करें और हमें कल्याण की प्राप्ति हो ॥६॥

१०५३.अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

हे श्रेष्ठ आयुधधारी सोमदेव ! लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के धन से आप हमें सम्पन्न करें, जिससे हम सुख प्राप्त करें ॥७॥

१०५४.अभ्यर्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

हे शक्ति-सम्पन्न सोमदेव ! युद्धभूमि में विजयी होने वाले और वीरों को पराजित करने वाले आप कलश में स्थापित हों और हमें कल्याण की प्राप्ति हो ॥८॥

१०५५.त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

हे पवित्रता से युक्त सोमदेव ! याजकगण यज्ञ में सम्मान सहित उत्तम स्तोत्रों का गान करते हुए आपकी महिमा को बढ़ाते हैं, इसलिए हमें आप कल्याण से युक्त बनाएं ॥९॥

१०५६.रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥

हे सोमदेव ! हमें विविध अश्वों से सम्पन्न और सर्वतोमुखी (विलक्षण) वैभव पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें, जिससे हम सुख को प्राप्त करें ॥१०॥

१०५७.तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥१॥

हर्षप्रदायक, उत्तम पोषक धारों से युक्त सोमरस सदा, सोमपान द्वारा शोधित होकर तीव्र वेग से प्रवाहित होता है । आनन्द से युक्त वह सोमरस शोधित स्थिति में प्रवाहित होता है ॥१॥

१०५८.उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥२॥

सभी प्रकार के वैभव से युक्त, देदीप्यमान उषा याजक का इस प्रकार से संरक्षण करना जानती हैं; ऐसी आनन्द प्रदायक धाराएँ वेग गति से प्रवाहित होती हैं ॥२॥

१०५९.ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥३॥

ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक दो राजर्षियों के अपार वैभव को हम प्राप्त करें। ऐसा करने में समर्थ आनन्ददाता सोम अभिषव से प्रवाहित हो रहा है ॥१३॥

[इस ऋचा के ऋषि ने ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक दोनों राजा दान और धन सम्पन्न थे, जिन्होंने ऋषि को बहुत सा धन प्रदान कर दिया था।]

१०६०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥१४॥

ध्वस्र और पुरुषन्ति के दान की तरह हजार वस्त्रों को (अधिक मात्रा में आवश्यक हेतु) हम ग्रहण करते हैं। आनन्ददाता सोम अभिषव से पात्र में प्रवाहित हो रहा है ॥१४॥

[यहाँ तीन सौ और हजार वस्त्रों का अर्थ बहुत मात्रा में वस्त्रों को ग्रहण करना लिया गया है।]

१०६१. एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥१५॥

यज्ञमानपूर्वक यह सोमरस स्तुतियों के साथ हमें श्रेष्ठ शक्ति प्रदान करने के लिए धारा के साथ कलश-पात्र में गिरता है ॥१५॥

१०६२. अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥१६॥

मानव मात्र को सुख देने वाले हे सोमदेव! आप देवताओं के सेवन हेतु गोदुग्धादि मिश्रण से पवित्र गुणों से युक्त होकर पात्र में जाते हैं। अन्न प्रदान करते हुए आप कलश में गिरते हैं ॥१६॥

१०६३. उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥१७॥

हे सोमदेव! जमदग्नि ऋषि द्वारा की गई स्तुति से युक्त होकर आप हमें गौओं के साथ अन्न सभी स्तोत्रोपयोगी पोषक अन्न प्रदान करें ॥१७॥

१०६४. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१८॥

स्तुति के योग्य अग्निदेव की महिमा के विस्तार हेतु, विचारपूर्वक की गई स्तुतियों को हम उसी तरह समर्पित करते हैं जैसे गन्तव्य-स्थान पहुँचाने के लिए रथ को सज्जित करते हैं। इन अग्निदेव की स्तुति से हमारी बुद्धि प्रखर होती है। हे अग्निदेव! आपकी मित्र भावना से हम विनाश को प्राप्त न हों ॥१८॥

१०६५. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१९॥

हे अग्निदेव! प्रत्येक शुभ अवसर पर हम समिधाएँ एकत्र कर आपको प्रज्वलित करते हैं एवं आहुतियाँ प्रदान करते हैं। आप हमारे दीर्घायुष्य की कामना से यज्ञ सम्पन्न करें। आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट न पाएँ।

१०६६. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२०॥

हे अग्निदेव! आपको समिधाओं आदि से भली-भाँति प्रज्वलित कर, हम देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान करते हैं। आप हवि ग्रहण करने हेतु देवों को बुलाएँ और हमारा यज्ञ भलीप्रकार सम्पन्न करें। यहाँ हम उनके आगमन के लिए उत्सुक हैं। हे अग्निदेव! आपकी मित्रता से हमें कष्ट की प्राप्ति न हो ॥२०॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१०६७. प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥१ ॥

(हे मित्र और वरुणदेव !) हम सूर्योदय के अवसर पर आप दोनों मित्र और वरुण तथा शत्रु-संहारक अर्यमा के साथ-साथ समस्त देवताओं की स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१०६८. राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥२ ॥

हे विद्वान् मित्र और वरुणदेव ! कल्याणकारी श्रेष्ठ धन तथा दुःखरहित बल एवं यज्ञानुष्ठान करने के लिए हम आपकी वन्दना करते हैं । आप इसे स्वीकार करें ॥२ ॥

१०६९. ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥३ ॥

हे वरुणदेव ! ज्ञानवानों के साथ आपकी स्तुति करते हुए हम ऐश्वर्ययुक्त हों । हे मित्र ! आपकी स्तुति से हम अन्न, धन और स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करें ॥३ ॥

१०७०. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी दुष्टजनों का संहार करें । हिंसकों के रक्षोपक्ष शत्रुओं का विनाश करें और इच्छित धन से हमें पुष्ट करें ॥४ ॥

१०७१. यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप द्वारा प्रदत्त जिस वैभव को सभी मनुष्य उचित ढंग से जानते हैं, उस वांछित ऐश्वर्य को हमें पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें ॥५ ॥

१०७२. यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुरक्षित अभेद्य क्षेत्र में रखे गये, स्थिर स्थान पर रखे गये, गिरियों के पार्श्वों से सुदृढ़ स्थान पर रखे गये तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके लाये गये, ऐसे उत्तम धन को जो हमारे द्वारा वांछनीय है, उसे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराएँ ॥६ ॥

१०७३. यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥७ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आप ही यज्ञ के ऋत्विज् हैं । युद्ध और यज्ञ कर्मों में भी आपकी पवित्रता रहती है, अतएव हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को दृष्टिगत करके आप पधारें ॥७ ॥

१०७४. तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥८ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! आप शत्रुनाशक, रथ से गमन करने वाले, वृत्र आदि असुरों के संहारक और कभी पराजित न होने वाले हैं, ऐसे आप हमारी स्तुति को स्वीकार करें ॥८ ॥

१०७५. इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥९ ॥

हे इन्द्राग्ने ! ऋत्विजों ने आपके लिए आनन्दप्रद मधुर सोमरस तैयार किया है । उसके लिए आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें ॥९ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१०७६.इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥१ ॥

हे मधुर सोमदेव ! यज्ञशाला के श्रेष्ठ स्थान पर आसीन होने के लिए, मरुद्गणों के साथ आने वाले इन्द्रदेव के निमित्त, आप पवित्र होकर निचुड़ें ॥१ ॥

१०७७. तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२ ॥

अखिल विश्व को धारण करने वाले, हे सोमदेव ! वाणी के विशेषज्ञ याजक, स्तुतियों से आपकी शोभा बढ़ाते हुए, भली-भाँति पवित्र करते हैं ॥२ ॥

१०७८.रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥३ ॥

हे मेधावी सोम ! पवित्रतायुक्त आपके रस को मित्र,वरुण,अर्यमा और मरुद्गण सेवन करें ॥३ ॥

१०७९. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥४ ॥

श्रेष्ठ हाथों से शोधित सोमरस कलश में शब्द करते हुए गिरता है । हे पावन सोमदेव ! आप स्वर्ण-रंग से युक्त तथा अनेक लोगों द्वारा वांछित प्रचुर धन को प्रदान करते हैं ॥४ ॥

१०८०.पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥५ ॥

बलवर्द्धक, पवित्रतायुक्त, छन्ना द्वारा शोधित हुआ सोमरस, जल में आलोडन से प्रवाहित होता है । हे शुद्धता से युक्त सोमदेव ! आप देवों के लिए गो-दुग्ध के साथ मिश्रित किये जाते हैं और पवित्र पात्र (द्रोण कलश) में स्थापित किये जाते हैं ॥५ ॥

१०८१.एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥६ ॥

जिस सोम की जननी नदी है, ऐसे सोम को शुद्ध करने में दसों अंगुलियाँ संलग्न हैं । ऐसा सोम, देवताओं को उपलब्ध होता है ॥६ ॥

१०८२. समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७ ॥

सूर्य रश्मियों से प्रकाशित हे सोम ! छन्ना से निचोड़े हुए आप इन्द्रदेव और वायुदेव को प्राप्त होते हैं ॥७ ॥

१०८३.स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥८ ॥

हे मधुर और मनोहर सोम ! हमारे कल्याण के लिए भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुण देवों के लिए आप शुद्ध हों ॥८ ॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः ॥

१०८४.रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१ ॥

जिन गौओं के सान्निध्य में रहकर हम अन्न से युक्त सुखोपभोग करते हैं । इन्द्रदेव के अनुग्रह से हमारी वे गौएँ, दुग्ध-घृतादि प्रदान करने वाली और शक्ति से युक्त हों ॥१ ॥

१०८५. आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२॥

हे पौरुषवान् इन्द्रदेव ! आप कल्याणकारी बुद्धि से स्तुति करने वाले स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ अवश्य प्रदान करें। आप स्तोताओं को धन देने के लिए, रथ के दोनों पहियों को मिलाने वाली धुरी के समान ही सहायक हैं ॥२॥

१०८६. आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं द्वारा इच्छित धन आप उन्हें प्रदान करें। जिस प्रकार रथ की गति से उसकी धुरी को भी गति मिलती है, उसी प्रकार स्तुति करने वालों को धन की प्राप्ति हो ॥३॥

१०८७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥४॥

जिस प्रकार दूध निकालने के अवसर पर गोपालक गौओं को बुलाते हैं, उसी प्रकार सुन्दर रूपवान हे इन्द्रदेव ! हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४॥

१०८८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥५॥

सोमपान करने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस पान हेतु आप हमारे यज्ञों के सवनों में पधारें। सोमपान करके यज्ञ करने वालों के लिए वैभव, प्रसन्नता और गौएँ प्रदान करें ॥५॥

१०८९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥६॥

सोमपान के पश्चात् आपकी श्रेष्ठ बुद्धियों का हम दर्शन करें। आप हमारे यहाँ पधारें। हमसे विमुख होकर अन्य दुराचारियों को ऐसे ज्ञान से कुमार्ग न करें अर्थात् हमें अज्ञान से आच्छादित न करें ॥६॥

१०९०. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! उषा जिस प्रकार द्युलोक और भूलोक को अपने प्रकाश से ओतप्रोत करती है, उसी प्रकार आप भी दोनों को भर देते हैं। महानता के पुञ्ज, मनुष्यों के अधिपति हे इन्द्रदेव ! कल्याणकारिणी, देवमाता अदिति ने आपको जन्म दिया है ॥७॥

१०९१. दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः । पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा
यमः । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥८॥

हे ज्ञानविद् इन्द्रदेव ! मङ्गलकारी के रक्षक आप शक्ति-सामर्थ्य को धारण करते हैं। (हे इन्द्र) जैसे अज-पुत्र (बकरा) आगे के पैरों से अपने आगे के पत्तों को खींचता है, वैसे आप भी अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं को नियंत्रित करते हैं। आपको देवमाता अदिति ने जन्म दिया है, कल्याणकारी माता ने उत्पन्न किया है ॥८॥

१०९२. अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् । अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ
अभिदासति । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! जो हमें त्रास देने वाले हैं, उन दुष्कर्मी शत्रुओं को आप पैरों तले कुचल दें। आपको अदिति माता ने उत्पन्न किया है, कल्याण करने वाली माता ने प्रादुर्भूत किया है ॥९॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१०९३.परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्। मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

गिरि- शिखरों पर रहने वाले, आनन्दप्रदायक पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ हे सोमदेव ! आपकी रस धारा शोधन-पात्र द्वारा पवित्र होकर स्थित हो रही है ॥१॥

१०९४.त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः। मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

हे सोमदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, दूरदर्शी हैं तथा आप अन्न से पैदा हुए पोषक-तत्त्वों को देते हैं। आनन्दप्रद रसों में आपका स्थान सर्वोपरि है ॥२॥

१०९५.त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत। मदेषु सर्वधा असि ॥३॥

हे सोमदेव ! संगठन-शक्ति से क्रियाशील, सभी देवता आपके रस का सेवन करने की कामना करते हैं। आनन्द-प्रदाताओं में आप ही सर्वोत्कृष्ट हैं ॥३॥

१०९६. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्। सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥४॥

जो सोम, धन-धान्य, गौएँ एवं श्रेष्ठ मनुष्यों के रूप में अपार वैभव प्रदान करने वाले हैं, उस सोम के रस को हम निचोड़ते एवं पवित्र करते हैं ॥४॥

१०९७.यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥५॥

हे सोम ! आपके दिव्य रस को इन्द्र, मरुद्गण, अर्यमा, भग आदि देवगण सेवन करते हैं। जिस प्रकार सोम द्वारा सुरक्षा के लिए मित्र और वरुण देवों को बुलाया जाता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव को भी आमंत्रित करते हैं ॥५॥

१०९८. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत। शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥६॥

हे ऋत्विजो ! आप देवताओं की प्रसन्नता के लिए शुद्ध होने वाले सोमरस का गुणगान करें। जिस प्रकार मातृ-शक्ति बालक को शोभायुक्त करती है। उसी प्रकार सोम को आहुतियों और प्रार्थनाओं द्वारा सुस्वादु (स्वादयुक्त) बनाओ ॥६॥

१०९९.सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते। देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥७॥

देव-संरक्षक, हर्षप्रदायक, स्तुतियों से शोधित और प्रवाहों के प्रेरक सोमरस को जल से मिश्रित करते हैं। माता के द्वारा शिशु को नहलाने-धुलाने की तरह, सोमरस जल के द्वारा शुद्ध किया जाता है ॥७॥

११००.अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये। अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥८॥

बलवृद्धि के साधनरूप इस मधुरतम सोमरस को देवताओं के प्रीति हेतु निष्पन्न निकालते हैं। वे अभीष्ट-सम्पादन करने के लिए इसका पान करते हैं ॥८॥

११०१.सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः। मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥

मित्र के सदृश हितैषी, शोधित हुए, पापरहित और श्रेष्ठ ओजस्व से देवत्व, आत्मप्रकाशवाले, स्तुति योग्य, दीप्तिमान्, सोमरस हमारे लिए, पात्र में पवित्र होता है ॥९॥

११०२.ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१०॥

देवों ने सूर्य के सदृश तेजस्वी, शुद्ध, मिश्रण योग्य सोम को पूजन कलश में लिया है। यह रस की स्निग्ध धारा के मिश्रण से [illegible] होने वाला है ॥८॥

११०३. सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि । इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥१॥

पृथ्वी के ऊपर निचोड़े जाते समय, अनेक पत्थरों से पीसे जाकर, धनदायक सोम, हमें अन्न प्रदान करने [illegible] शब्द करता है ॥१॥

११०४. अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥२॥

हे सोमदेव! अपनी इस पावन धारा से आप हमें धन से अभिपूरित करें। हे सोमदेव! [illegible] जल में मिश्रित [illegible] सूर्य की [illegible] के समान गतिशील होते हैं। [illegible] इन्द्रदेव सोमपान करके हमें [illegible] प्रदान करते हैं ॥२॥

११०५. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥३॥

हे सोम! हमारे लिए शुद्ध, अन्न, [illegible] हमारे यज्ञ में [illegible] धारा के साथ शुद्ध हों। हे [illegible]! पेड़ से गिरने वाले पके फल की भाँति साठ हजार धन शत्रुओं से [illegible] करने के लिए हमें प्रदान करें ॥३॥

११०६. महीमे अस्य वृष नाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥४॥

[illegible] या पृथ्वी को [illegible] करना और दुष्टकर्मियों को [illegible] करके सुलाना — ये दो आपके सुखदायी कार्य हैं। हे सोम! आप [illegible] द्वारा [illegible] अथवा [illegible] द्वारा [illegible] क्रोध आदि [illegible] पहुँचाने वाले शत्रुओं को शक्तिहीन करके नष्ट करें। [illegible] (पृथ्वी को) हमसे दूर करें ॥४॥

॥इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः ॥

११०७. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१॥

हे श्रेष्ठ अग्निदेव! आप हमारे पास रहते हुए हमारी रक्षा करें तथा हमारे कल्याण के निमित्त बनें ॥१॥

११०८. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

धनों को आश्रय देने वाले, [illegible] अग्निदेव! आप हमारे पास [illegible] से आएँ और तेजस्वितापूर्ण होकर हमें धन प्रदान करें ॥२॥

११०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥

हे तेजस्वी और प्रकाशवान् अग्निदेव! [illegible] मित्रों के लिए सुख की कामना करते हुए निश्चित ही हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥३॥

१११०. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥४॥

ये सारे लोक हमारे आनन्द के साधन हों। इन्द्र सहित सभी देवता हमारे लिए सुखकर हों ॥४॥

१११९. यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥५॥

आदित्यों सहित हे इन्द्र! हमारे यज्ञकर्म, शरीर और सन्तानादि को अपना श्रेष्ठ सहयोग दे पुष्ट करें ।५॥

१११२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥६॥

आदित्यों, मरुद्गणों एवं अपने अन्य सहायक शक्तियों के साथ इन्द्र (सूर्य) देव हमारे लिए ओषधि (सूर्य-चिकित्सा के आरोग्य प्रदायक किरणें) तैयार करें ।६॥

१११३. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥७॥

हे मनुष्यो! वृत्रहन्ता, विद्वान् इन्द्रदेव के लिए सामगान का गान करें, जिसे वे प्रसन्नता से सुनते हैं ।७॥

१११४. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥८॥

आहरणीय, स्तोत्रवान मरुद्गण इन्द्रदेव की सामगान द्वारा स्तुति करते हैं। बलवान् एवं यशस्वी इन्द्रदेव उनकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं ।८॥

१११५. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥९॥

हे इन्द्रदेव! आपके संरक्षण में निवास करने वाले हम याजक बलवान् हों और धन-सम्पदा धारण करें ।९॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि (अज्ञात भार्गव) नेम ऋषि १०३१-१०३३ । काश्यप मारीच १०३४-१०३६, १०७७-१०७८ । मेधातिथि काण्व १०३७-१०३९ । हिरण्यस्तूप आङ्गिरस १०४०-१०४२ । अवत्सार काश्यप १०४३-१०५० । जमदग्नि भार्गव १०५१-१०५२ । कुत्स आङ्गिरस १०५३-१०५५, ११०७-११०९ । भारद्वाज बार्हस्पत्य १०५६-१०५९ । त्रिशोक काण्व १०६०-१०६२ । श्यावाश्व आत्रेय १०६३-१०६५ । पावकाग्नि १०६६-१०६८ । अमहीयु आङ्गिरस १०६९-१०७१ । शुनःशेप आजीगर्ति १०७२-१०७६ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १०७९-१०८१ । मान्धाता यौवनाश्व १०८४, १०८५ । मान्धाता यौवनाश्व (पूर्वार्द्ध का), गोधा ऋषिका (उत्तरार्द्ध का) १०८६ । असित काश्यप अथवा देवल १०८७-१०९० । अम्बरीष वार्षागिर १०९२ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १०९४ । प्रस्कण्व काण्व १०९८-११०० । मनु सांवरण ११०१-११०६ । बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन ११०७-११०९, भुवन आप्त्य अथवा साधन भौवन ११९०-१११२ । वामदेव १११३-१११५ ।

देवता- पवमान सोम १०३१-१०३३, १०४७-१०५४, १०५६-१०७६ । अग्नि १०५०-१०७९, ११०७-११०९, आदित्य १०८७-१०८९ । इन्द्र १०७०-१०७२, १०८२-१०९१ । इन्द्राग्नी १०९३-१०९७ । विश्वेदेवा १११०-१११२ । इन्द्र १११३-१११५ ।* वैदिक यन्त्रालय, अजमेर के संस्करण के अनुसार ।

छन्द- जगती १०३१-१०३३, १०४७-१०४९ । गायत्री १०३४-१०४६, १०५४-१०६८, १०७१-१०७९, १०७२-१०७५ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १०८४-१०८७ । महापंक्ति १०९०-१०९३ । वर्धमाना गायत्री १०९९ । प्रतिष्ठा गायत्री १०९४ । उष्णिक् १०९८-११०० । अनुष्टुप् ११०१-११०३ । त्रिष्टुप् ११०४-११०६ । द्विपदा विराट् गायत्री ११०७-११०९ । द्विपदा त्रिष्टुप् १११०-१११२ । द्विपदा विराट् गायत्री १११३-१११५ ।

॥इति सप्तमोऽध्यायः॥

॥अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१११६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१ ॥

उशना के समान [illegible] सोम, देवताओं की [illegible] करते हैं । [illegible] तेजस्वी, [illegible] शब्द करते हुए पात्र में स्थित होता है ॥१ ॥

१११७. प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२ ॥

[illegible] ॥२ ॥

१११८. स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३ ॥

[illegible] ॥३ ॥

१११९. प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥४ ॥

[illegible] ॥४ ॥

११२०. हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥५ ॥

[illegible] ॥५ ॥

११२१. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥६ ॥

[illegible] ॥६ ॥

११२२. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥७ ॥

[illegible] ॥७ ॥

११२३. आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८ ॥

[illegible] ॥८ ॥

११२४. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥९ ॥

प्रवीण, शक्तिशाली सोम का आवाहन करने वाले ऋत्विज् स्तोता, यज्ञ द्वारों को उद्घाटित करते हैं ॥९ ॥

११२५. समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥१० ॥

उत्कृष्ट जाति के, एक मात्र सोम को पूर्णता प्रदान करते हुए, सात याज्ञिक, यज्ञ- कर्मानुष्ठान के लिये उपस्थित होते हैं ॥१० ॥

११२६. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥११ ॥

नेत्रों से सूर्य दर्शन के निमित्त, नाभ की नाभि स्वरूप सोम को, निज नाभि के निकट अर्थात् हृदय के समीप स्थापित करते हैं। हम क्रान्त सोम के सत्त्व रस को हम दुहकर प्राप्त करते हैं ॥११ ॥

११२७. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२ ॥

बलवान् इन्द्रदेव अपने नेत्रों से दिव्यलोक में प्रिय और अध्वर्युओं द्वारा गुहास्थ सोम को देखते हैं ॥१२ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

११२८. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥१ ॥

पवमान एवं तेजस्वियों के उपकार में भली-भाँति जानते हुए, गतिमान् सोम धर्म-मार्गों की तरह यज्ञ मार्ग में अग्रसर होता है ॥१ ॥

११२९. प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥२ ॥

हवियों में सर्वश्रेष्ठ प्रार्थनीय अग्रिम सोम, जल में मिश्रित होते हुए मधुर रसधार के रूप में स्थित हो रहा है ॥२ ॥

११३०. प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३ ॥

आहुतियों में अग्रिम, वाणी के उत्पादक, शक्तिशाली, सत्ययुक्त और अहिंसक यह सोमदेव जल के साथ यज्ञशाला में प्रविष्ट होता है ॥३ ॥

११३१. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४ ॥

क्रान्तदर्शी सोम नित्य कवि-कर्मों से, ऋत्विजों में बलशाली का संचय करते हुए, स्तुतियों को जैसे ही स्वीकार करता है, वैसे ही शक्तिशाली इन्द्रदेव स्वर्ग से यज्ञस्थल पर आने के लिए उद्यत होते हैं ॥४ ॥

११३२. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५ ॥

संघर्षशील सोम शत्रुओं को देखता है, प्रजा की रक्षा के लिए, राजा की भाँति शत्रुओं का संहार करने के लिए, तैयार होता है ॥५ ॥

११३३. अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६ ॥

जल मिश्रित प्रीतिप्रद सोम, छन्नी द्वारा पवित्र होते हुए, ऋत्विजों द्वारा की गई स्तुतियों को स्वीकार करते हुए, ध्वनि के साथ पात्र में स्थित हो रहा है ॥६ ॥

११३४. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥

जो याजक इस सोम को निकालने एवं शुद्ध करने में संलग्न रहते हैं, वे आनन्दपूर्वक सोम के साथ वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों का सान्निध्य प्राप्त किया करते हैं ॥७॥

११३५. आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

जिन सोमों द्वारा मधुर सोम की धाराएँ मित्र, वरुण और भग देवों के निमित्त प्रवाहित होती हैं, ऐसे सोम की महिमा से परिचित याजक आनन्द को प्राप्त करते हैं ॥८॥

११३६. अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥

हे पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता ! सोमयाग रूपी श्रेष्ठ पोषक आहार को प्राप्त करने के लिए आप हमें, धन-धान्य के रूप में प्रचुर वैभव प्रदान करें ॥९॥

११३७. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥

हे सोमदेव ! आपकी सुखदायक, शक्ति प्रदान करने वाली, संरक्षण करने वाली बहु प्रशंसित शक्ति को आज हम (याजक) प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ॥१०॥

११३८. आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥

आनन्दवर्द्धक, श्रेष्ठ, ज्ञानी, विचारक, संरक्षक और सबके द्वारा प्रशंसनीय, हे सोमदेव ! हम (याजकगण) आपकी उपासना करते हैं ॥११॥

११३९. आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥

उत्तम कर्मवान् हे सोम ! धन, उत्तम ज्ञान, श्रेष्ठ पुत्र पौत्र (सन्तति), सबका संरक्षण और प्रशंसा के योग्य शक्ति-सामर्थ्य पाने के लिए हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥१२॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

११४०. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

द्युलोक के मूर्धा स्थान पर स्थित, पृथ्वी पर विचरणशील, संसार के नायक, यज्ञ हेतु प्रकट होने वाले, ज्ञानशील और सम्राटस्वरूप, देवगणों के पूज्य और सबके पालक, पूजनीय अग्निदेव को सर्वप्रथम यज्ञस्थल में ऋत्विग्गणों ने मन्थन द्वारा पैदा करते हैं ॥१॥

११४१. त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२॥

हे अमृत स्वरूप अग्ने ! समस्त देवगण उत्पन्न होते समय आपकी, बालक के समान अभ्यर्थना करते हैं । हे विश्व के नायक ! जब द्युलोक और भूलोक के मध्य आप दीप्तिमान् हुए, तब यजमानों ने आपके द्वारा सम्पादित यज्ञ से देवत्व के पद को प्राप्त किया ॥२॥

११४२. नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३॥

यज्ञ के केन्द्र स्थल, धन के आश्रय, महान्, आहुतियों के ग्राहक, समस्त विश्व के नेता, अविनाशी, यज्ञ के संचालक, यज्ञ की पताकारूपी अग्नि को ऋत्विजों ने नमन द्वारा उत्पन्न किया, उनकी सभी वन्दना करते हैं ॥३॥

११४३. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥४॥

हे ऋत्विजो ! आप मित्र और वरुणदेव हेतु तेज ध्वनि से गायन करें। महानतायुक्त, प्रजाजनों से सम्पन्न वे दोनों, यज्ञस्थल पर विस्तृत स्तोत्रगान के श्रवण हेतु उपस्थित हों ॥४॥

११४४. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥५॥

तेजस्विता के स्वामी राजा, मित्र और वरुण दोनों ओजस्वियों की देवताओं के बीच प्रशंसा होती है ॥५॥

११४५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥६॥

देवताओं में प्रसिद्ध, सामर्थ्यवान् हे मित्र और वरुण देवताओ ! आप हमें पृथ्वी एवं द्युलोक का अपार वैभव प्रदान करें ॥६॥

११४६. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥७॥

हे अद्भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! अँगुलियों द्वारा शोधित, श्रेष्ठ पवित्र शुद्ध, यह सोम आपके निमित्त है। आप आएँ और यहाँ आकर सोमरस का पान करें ॥७॥

११४७. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा जानने योग्य आप सोमरस प्रस्तुत करते हुए ऋत्विजों द्वारा बुलाये गये हैं। उनकी स्तुति सुनने के लिए आप यज्ञशाला में पधारें ॥८॥

११४८. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥९॥

हे अश्ववाहक इन्द्रदेव ! आप स्तोत्रों के श्रवणार्थ एवं इस यज्ञ में हमारी हवियों का सेवन करने के लिए यज्ञशाला में शीघ्र ही पधारें ॥९॥

११४९. तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०॥

जिन अग्निदेव की उन्नत ज्वालाएँ, सब वनों को अपनी चपेट में लेकर धूम्रयुक्त कर काला कर देती हैं, उन शक्तिशाली अग्निदेव की हम स्तुति करें ॥१०॥

११५०. य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥

जो मनुष्य प्रज्वलित अग्नि में इन्द्रदेव के लिए आनन्ददायक आहुति अर्पित करते हैं, उनकी तेजस्विता के लिए [illegible] और महत्ता से अन्न प्राप्ति हेतु इन्द्रदेव जल वर्षा करते हैं ॥११॥

११५१. ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥१२॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों हम (देवगणों) को अश्व (गतिशीलता) की प्राप्ति के लिए बलवर्द्धक अन्न और वेगवान् अश्व प्रदान करें ॥१२॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

११५२. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१॥

अनेक प्रकार से शुद्ध किया गया सोमरस इन्द्रदेव के उदर में प्रविष्ट हुआ । मधुर (मित्ररूप) सोमरस अपने मित्र इन्द्रदेव के उदर में पहुँचकर उन्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचाता । (वरन् उनका मित्र हो जाता है ।) जैसे पुरुष तरुण स्त्रियों के साथ मिलाप करता है, उसी प्रकार सोम कलशों आदि में अभिषुत होकर अनेक मार्गों (धाराओं) से कलश में जाता है ॥१॥

[यज्ञ के कुछ दिन पूर्व, जिस सोम को मिट्टी में दबाकर रखना पड़ता है बाद, यज्ञ में प्रयुक्त किया जाता था, उसे कलशीगत कहते थे ।]

११५३. प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ॥
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥

हे सोमदेव ! स्तवन का ध्यान करने वाले, आदरपूर्वक स्तुति करने के अभिलाषी याजक, यज्ञ मण्डप में गमन करते हुए, क्रीडा करते सोमरस की प्रशंसा करते हैं, उस समय गौएँ अपने दुग्ध से (पोषक देकर) इस सोम को तोषित करती हैं । (गो-दुग्ध सोम में मिलाया जाता है ।) ॥२॥

११५४. आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥३॥

हे पवित्र होने वाले तेजोमय सोमदेव ! दिन के तीनों प्रहरों में प्रचुर जो अन्न, यशस्वी, बलवर्धक, मधुर तथा उत्तम गुण प्रदान करने वाला है, हमारे उस पोषक अन्न को आप अपनी तरंगों से युक्त करें ॥३॥

११५५. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥४॥

वृद्धिप्रदाता, यज्ञों के द्वारा, महान्, तेजस्वी, अपराजेय, शत्रुओं को पराभूत करने वाले इन्द्रदेव का, जो याजकगण यज्ञ द्वारा यजन (सत्कार) करते हैं, उन्हें अपने प्रभाव-पुरुषार्थ (कर्म) से कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥४॥

११५६. अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥५॥

जिन इन्द्रदेव के प्रकट होने पर (उनके प्रताप से) महान् वेगवाली (नदी) गौएँ उनके समक्ष नमन करती हैं, और पृथ्वी तथा आकाश भी उनके समक्ष झुककर अभिवादन करते हैं, उन उग्र, शत्रु विजेता और पराक्रमी इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥५॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः॥

११५७. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१॥

हे मित्रो ! पवित्र होने वाले सोम के लिए स्तुतिगान करो । जिस प्रकार पुत्र को अलंकृत करने के समान सोम को दधि आदि पदार्थों द्वारा यज्ञ में विभूषित करो ॥१॥

११५८. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्। देवाव्यं मदमभि द्विशवसम्॥२॥

हे ऋत्विग्गण ! जल के समान पूज्य, दिव्य गुणों से युक्त, आनन्ददायक, दोनों प्रकार (दैहिक और मानसिक) से बलवर्द्धक इस सोम को उसी प्रकार जल से मिश्रित करें, जैसे माताओं के साथ बच्चे मिलाए जाते हैं ॥२॥

११५९. पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये। यथा मित्राय वरुणाय शंतमम्॥३॥

(हे ऋत्विजो !) शक्तिशाली बल प्राप्त करने के लिए, देवों (विश्वेदेवा) को तृप्त करने के लिए, अधिकाधिक सुखकर बनाने के लिए, बल वृद्धि के लिए तथा मित्र और वरुण देवों के लिए सोम का शोधन करें ॥३॥

११६०. प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम्॥४॥

बलयुक्त और अनेक धाराओं से प्रवाहित होने वाला सोम, ऊन के शोधक छन्ने से छनकर टपकता है ॥४॥

११६१. स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः॥५॥

असंख्य बलों से युक्त, जल से शोधित किया हुआ, गो-दुग्ध आदि से मिश्रित बल बढ़ाने वाला सोम छनता हुआ (कलश में) जाता है ॥५॥

११६२. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः॥६॥

पाषाणों से कूटकर निष्पादित हुआ, ऋत्विजों द्वारा विधिपूर्वक शोधित किया हुआ सोमरस, इन्द्रदेव के उदर (रूप कलश) में प्रविष्ट हो ॥६॥

११६३. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वादः शर्यणावति॥७॥

जो सोम दूरस्थ देशों में, या समीपस्थ देशों में शर्यणावत् सरोवर के निकट (उत्पन्न होते और) संस्कारित होते हैं। (उन्हें हम प्राप्त करें।) ॥७॥

[सायण के अनुसार 'शर्यणावत्' कुरुक्षेत्र के 'जघनार्ध' भाग में स्थित (सरोवर) भी एक तीर्थ का नाम है।]

११६४. य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्। ये वा जनेषु पञ्चसु॥८॥

जो सोम आर्जीक देश में, कर्म करने वालों के देशों में, नदियों के किनारे या पंचजनों के बीच में उत्पन्न होता और संस्कारित किया जाता है, वह हमारे लिए सुखकारक हो ॥८॥

[निरुक्तकार के अनुसार आर्जीक व्यास नदी के एक प्रदेश है]

११६५. ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्। स्वाना देवास इन्दवः॥९॥

निचोड़कर निष्पादित हुआ, दीप्तिमान् दिव्य सोम, हमें द्युलोक से वृष्टि और उत्तम बलयुक्त श्रेष्ठ अन्न प्रदान करे ॥९॥

॥इति नवमः खण्डः॥

* * *

॥दशमः खण्डः॥

११६६. आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वां कामये गिरा॥१॥

हे अग्ने ! जब हम स्तुतियों द्वारा आपकी कामना करते हैं कि आप अति उत्तम स्थान (द्युलोक) से भी हमारे पास (यज्ञस्थान में) आएँ ॥१॥

११६७. पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥२॥

हे अग्ने ! आप सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाले, सभी दिशाओं के अधिपति हैं, अतः युद्ध में अपनी सुरक्षा के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं ॥२॥

११६८. समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।
वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥

हम संग्राम में अपने संरक्षण के लिए, अपने बलों को प्रयुक्त करने के निमित्त, अद्भुत ऐश्वर्यवान् अग्नि देव का आवाहन करते हैं ॥३॥

११६९. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥४॥

हे शतकर्मा, विशिष्टद्रष्टा इन्द्रदेव ! आप हमें तेजस्वितायुक्त बल प्रदान करें और युद्ध में शत्रुओं का नाश कर, वीरपुत्र देने वाले हों ॥४॥

११७०. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥५॥

हे सबको आश्रय देने वाले शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप पितातुल्य पालन करने वाले और मातातुल्य धारण करने वाले हैं । अतः हम आपके पास सुख माँगने के लिए आते हैं ॥५॥

११७१. त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥६॥

हे बलशालिन्, शक्तिशाली, अनेकों द्वारा स्तुत्य बलवान् इन्द्रदेव ! हम आपकी स्तुति करते हुए कामना करते हैं कि आप हमें उत्तम तेजस्वी सामर्थ्य प्रदान करें ॥६॥

११७२. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥७॥

हे वज्रधारी विलक्षण शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव ! जो आपके द्वारा प्रदत्त धन-सामर्थ्य हमारे पास नहीं है, उस धन को दे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दोनों हाथों (मुक्त हस्त) से हमें भरपूर प्रदान करें ॥७॥

११७३. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! जिस धन-सामर्थ्य को आप श्रेष्ठ और तेजस्वितायुक्त मानते हैं, वह धन हमें भरपूर प्रदान करें, साथ ही हम उस धन को (लोक कल्याणार्थ) दान देने की स्थिति में भी हों ॥८॥

११७४. यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥९॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपका जो मन दानदाताओं में प्रसिद्ध, पोषक और व्यापक है (मानसिक शक्ति, इच्छा शक्ति), उसी से स्थिर धन और सामर्थ्य प्रदान करें ॥९॥

॥इति षष्ठः खण्डः॥

* * *

देवता, ऋषि, छन्द-विवरण

ऋषि- शुनःशेप आजीगर्ति ११५४-११६० । अवत्सार काश्यप अथवा ... ११६१-११६६ । भृगु वारुणि अथवा जमदग्नि भार्गव ११७०-११७५, ११६३-११६५ । भरद्वाज बार्हस्पत्य ११७०-११७२, ११७३-११७८ । कवष ऐलूष ११८७-११९० । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ११९६-११९८ । विरूप आंगिरस ११९९-१२०४ । कुत्स आंगिरस १२०५-१२०८ । ... अथवा ... १२०७-१२१२ । अग्निश्चाक्षुष ऐश्वर १२१४-१२१२ । सप्त ऋषयः १२१६-१२१८ । नृमेध आंगिरस १२२९-१२३० । अग्नि धौम्य १२७२-१२७४ ।

देवता- पवमान सोम ११३७-११३९, ११४२-११४४, ११५७-११६५ । अग्नि ११७४-११७५, ११६६-११६८ । मित्रावरुण ११७७-११७९ । इन्द्र ११८२-११८८, ११९५, ११९६, ११९१-११९४ ।

छन्द- त्रिष्टुप् ११६६-११६८, ११४०-११४२ । गायत्री ११३९-११४१, ११७३-११७५, ११६३-११६८ । जगती ११५२-११५४ । ... ११५५, ११५६ । उष्णिक् ११५७-११६२ । द्विपदा विराट्, गायत्री ११७४-११७२ । ककुप् ११६९, ११७० । पुर उष्णिक् ११७१ । अनुष्टुप् ११७६-११७७ ।

॥इति अष्टमोऽध्यायः ॥

॥अथ नवमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

११७५. शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥

नवजात शिशु के सदृश कान्ति से स्तुत्य करने वाले सोमरस को मरुद्गण शुद्ध करते हैं । मरुद्गणों से पूजा यह मेधावी सोमरस स्तुतियों के साथ शब्द करता हुआ शुद्ध हो जाता है ॥१॥

११७६. ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ॥
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥२॥

ऋषियों को मन से उत्साह देने वाला, ऋषित्व प्रदान करने वाला, सहस्र, आनन्ददायी, सोम सबसे महान् है । यह तृतीय धाम (द्युलोक) स्वर्गलोक में रहने वाले तेजस्वी इन्द्रदेव को और अधिक तेज सम्पन्न बनाता है ॥२॥

११७७. चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥

यह चमसों में रहने वाले, शस्त्रों से युक्त, ह विभिन्न, समुद्र की तरंगों के समान गतिमान, गो-दुग्ध में मिलाया जाने वाला, तपस्वी सोम चतुर्थ (तुरीय) लोक में विराजित होता है ॥३॥

११७८. एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥४॥

इन्द्रदेव की सामर्थ्य में वृद्धि करने वाला यह सोम इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले रसों की वर्षा करता है ॥४॥

११७९. पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥५॥

हे शुद्ध सोम ! आप वायु और अश्विनीकुमारों के साथ मिलकर हमें श्रेष्ठ वीर्य प्रदान करें ॥५॥

११८०. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥६॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप इन्द्रदेव की आराधना के लिए हमारे हृदय में प्रेरणा उत्पन्न करें । हम देवों के अनुकूल यज्ञ कर्म हेतु प्रस्तुत हुए हैं ॥६॥

११८१. मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥७॥

हे सोमदेव ! आपको दसों अँगुलियाँ संयुक्त होकर परिशोधित करती हैं । सात होतागण आपको तृप्त करते हैं । श्रेष्ठ पुरुष आपके अनुगामी बन कर आपकी स्तुतियाँ प्रकट करते हैं ॥७॥

११८२. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥८॥

शोधित होने वाले सुखकारी, आनन्ददायक हे सोमदेव ! आपको देवताओं को आनन्दित करने के लिए हम गो-दुग्ध में मिलाते हैं ॥८॥

११६३. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥९॥

शुद्ध होकर कलश में स्थापित होने वाले हरितवर्ण सोम को गो-दुग्ध आदि का लेपन किया जाता है ॥९॥

११६४. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥१०॥

हे सोमदेव ! आप हमें धन-ऐश्वर्य से युक्त करने के लिए शोधित हों । द्वेष करने वालों का नाश करें और अपने इन्द्रदेव के साथ एकाकार हो जाएँ ॥१०॥

११६५. नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥११॥

हे सोमदेव ! समस्त प्राणियों का निरीक्षण करने वाले, सर्वज्ञ इन्द्रदेव के द्वारा पान किये जाने वाले आप हमें सन्तान, ज्ञान, अन्न और धन-धान्य आदि प्रदान करें ॥११॥

११६६. वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥१२॥

हे सोमदेव ! आप आकाश से पृथ्वी के ऊपर दिव्य वृष्टि करें । पृथ्वी पर पोषक अन्न उत्पन्न करें और हमें संग्रामों की शक्ति प्रदान करें ॥१२॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

x x x

॥द्वितीयः खण्डः॥

११६७. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

सहस्रधार बनकर पवित्र होने वाला, ऊनी छलनी के बालों की छलनी से छन कर शोधित सोम, वायु और इन्द्रदेवों के पान करने के लिए, देव पात्रों में स्थित होता है ॥१॥

११६८. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

अपने संरक्षण की कामना करने वाले हे याजको ! पवित्र करने वाले, विशेष आनन्द प्रदान करने वाले, देवों के पान के योग्य, शोधित सोम के लिए उत्साहपूर्वक स्तुतियों का गान करें ॥२॥

११६९. पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३॥

अन्न (पोषण) प्राप्त कराने के कारण स्तुत्य, ऐश्वर्ययुक्त हजारों प्रकार से बलशाली यह सोमरस शोधित किया जा रहा है ॥३॥

११७०. उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप जीवन-संग्राम की सफलता के लिए, हमें श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें, जो ऐश्वर्य एवं सामर्थ्यवान् करें ॥४॥

११७१. अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥५॥

जीवन-संग्राम का प्रेरक सोम छलनी द्वारा तीव्र गति से शोधित किया जाता है ॥५॥

११७२. ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥६॥

वह शोधित किया गया दिव्य सोमरस हमें अनेकों ऐश्वर्य और उत्तम सामर्थ्य को प्रदान करे ॥६॥

११९३. वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥

जैसे गौएँ बछड़ों की ओर रंभाती हुई जाती हैं, वैसे ही शब्द करते हुए सोम कलश में प्रवेश करता है और हाथों से धारण किया जाता है ॥७॥

११९४. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥

हे इन्द्रदेव को तृप्त करने वाले सोमदेव ! आप पवित्र होकर शब्द करते हुए सब शत्रुओं का विनाश करें ॥८॥

११९५. अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९॥

हे दिव्य सोमदेव ! दान न देने वाले शत्रुओं का नाश करते हुए, अपने तेजस्वी रूप में, आप यज्ञस्थल पर विराजमान हों ॥९॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

११९६. सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

यज्ञ के लिए सोमरस तैयार किये गये, मधुर रस-संयुक्त सोम को इन्द्रदेव के निमित्त प्रस्तुत करते हैं ॥१॥

११९७. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

हे ऋत्विजो ! जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों के लिए व्याकुल हो जाती हैं, उसी भाव से सोम पीने के लिए इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥२॥

११९८. मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

हर्ष बढ़ाने वाला सोमरस यज्ञ स्थल में प्रतिष्ठित होता है। नदी की लहरों के समान यह वाणी को आश्रित करता है ॥३॥

११९९. दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

श्रेष्ठकर्मा, ज्ञानयुक्त यह दिव्य सोम है, जो अन्तरिक्ष की नाभि के समान छन्ने में शुद्ध होकर महिमा-मण्डित होता है ॥४॥

१२००. यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥

पवित्र होकर कलशों में अवस्थित सोमरस में इन्दु के तेज गुणों का संचार होता है ॥५॥

१२०१. प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

मधुर रस सोम, अन्तरिक्ष में स्तोत्र का शब्द करता हुआ कलश को पूर्ण रूप से भर देता है ॥६॥

१२०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥

नित्य स्तुत्य, वन के स्वामी सोमदेव, श्रेष्ठ मनुष्यों को समर्पित होने की प्रेरणा प्रदान करें और मधुर वाणी की हार्दिक स्तुतियों को स्वीकार करें ॥७॥

१२०३. आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥

हे शुद्ध होने वाले सोमदेव ! आप हमें धारा रूप सहस्र आभा और ऐश्वर्य का अधिकारी बनाएँ ॥८॥

१२०४. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥९॥

श्रेष्ठ स्थान पर [illegible] सोम, दिव्य स्वर्ग (तेजस्वी) [illegible] और श्रेष्ठ देवताओं का संचार करता है ॥९॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१२०५. उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

हे सोमदेव ! आपके वेग से [illegible] समुद्र की लहरों जैसी ध्वनियाँ प्रकट होती हैं । [illegible] वाणी के [illegible] शब्दों को प्रेरित करें ॥१॥

१२०६. प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२॥

हे सोमदेव ! आपके प्रादुर्भाव के समय [illegible] ऋक्, यजु, साम के मंत्रों का गान करते हैं, तब आप उच्च आसीन होकर [illegible] होने के लिए [illegible] हो जाते हैं ॥२॥

१२०७. अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

[illegible] पत्थरों से कूटे गये, हरितवर्ण, सुन्दर, मधुर सोमरस को छलनी से [illegible] करने के [illegible] हैं ॥३॥

१२०८. आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

हे परम आनन्ददायी सोमदेव ! इन्द्रदेव को तृप्ति प्रदान करने के लिए, आप [illegible] से निर्झरित [illegible] के रूप में निकलें ॥४॥

१२०९. स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । इन्द्रस्य जठरं विश ॥५॥

हे आनन्ददायक सोमदेव ! गाय के दुग्धादि के मिश्रण से [illegible] आप इन्द्रदेव के उदर में प्रवेश करें ॥५॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पञ्चमः खण्डः॥

१२१०. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

हे सोमदेव ! इन्द्रदेव के सेवन के लिए, आप शुद्ध हों । आपका दिव्य रस [illegible] शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ है ॥१॥

१२११. पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

सोमरस पीकर इन्द्रदेव ने [illegible] दिवोदास (दिव्य गुणों के लिए समर्पित व्यक्ति) के लिए शम्बरासुर (अज्ञान [illegible] करने वाले) को, तुर्वश [illegible] और यदु [illegible] को [illegible] ॥२॥

१२१२. परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप हमें गौ, अश्व, सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और अभीष्ट पोषक अन्न प्रदान करें ॥३ ॥

१२१३. अपघ्नन्पवसे मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥४ ॥

यह सोमरस [illegible] करता हुआ, शत्रुओं को हटाकर, इन्द्रदेव के स्थान तक पहुँचने के लिए पवित्र होता है ॥४ ॥

१२१४. महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥५ ॥

हे पवित्रकर्ता सोमदेव ! आप हमें बहुत सा धन, पुत्रादि तथा यश प्रदान करायें और शत्रुओं का हनन करें ॥५ ॥

१२१५. न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥६ ॥

हे पवित्र सोमदेव ! यज्ञ करने वालों को जब आप ऐश्वर्य देने की इच्छा करते हैं, तो आपको सैकड़ों शत्रु भी रोक नहीं सकते ॥६ ॥

१२१६. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७ ॥

हे सोमदेव ! मनुष्यों के लिए हितकारी, जल की वर्षा करने वाले, आप सूर्यदेव को प्रकाशित करने वाली धारा से क्षरण को प्राप्त हों ॥७ ॥

[सोम [illegible] ।]

१२१७. अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥८ ॥

यह पवित्र सोम, [illegible] के लिए [illegible] सूर्य के अश्वों (किरणों) जैसा वेग प्रदान करने में समर्थ है ॥८ ॥

१२१८. उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥९ ॥

इन्द्रदेव सोम को पुकारते हुए, हरितवर्ण वाले अश्वों को सूर्य के रथ में जाने के लिए युक्त करते हैं ॥९ ॥

॥इति पञ्चमः खण्डः ॥

* * *

॥षष्ठः खण्डः ॥

१२१९. अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१ ॥

हे देवगणो ! [illegible] अग्नियों के साथ, उस यज्ञाग्नि को दूत बनाकर, [illegible] करो, जो अग्नि, देवता होकर भी मनुष्यों में [illegible] है, जो [illegible] है और जिसका तेज [illegible] एवं पवित्रता प्रदान करने वाला है ॥१ ॥

१२२०. प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२ ॥

[illegible] हिनहिनाते घोड़े जिस प्रकार घास को चरते चले जाते हैं, उसी प्रकार दावानल वृक्षों को [illegible] जाता है । उस अवस्था में वायु के प्रवाह से शिखा और ज्वाला बढ़ती जाती है, अतः मार्ग अग्नि का होता है ॥२ ॥

१२२१. उदस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

हे यज्ञाग्ने! आपकी [illegible] ज्वालाएँ [illegible] हैं। हे [illegible] अग्निदेव! [illegible] अपनी ऊर्जा सहित द्युलोक में [illegible] देवों को [illegible] करते हैं॥३॥

१२२२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥४॥

इन्द्रदेव [illegible] हैं। [illegible] के विनाश के लिए, [illegible] और अधिक [illegible] करते हैं॥४॥

१२२३. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥५॥

दान देने के लिए ही [illegible] इन्द्रदेव [illegible] हैं। [illegible] इन्द्रदेव [illegible] हैं॥५॥

१२२४. गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥६॥

[illegible] इन्द्रदेव [illegible] हैं॥६॥

॥इति षष्ठः खण्डः॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः॥

१२२५. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१॥

हे अध्वर्यु! पत्थरों द्वारा [illegible] सोमरस को इन्द्रदेव के पीने के लिए छलनी से शोधित करें॥१॥

१२२६. तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥२॥

हे सोम! [illegible] और मरुद्‌गण आपके मधुर और पवित्रकारी [illegible] का पान करते हैं॥२॥

१२२७. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥३॥

हे ऋत्विजो! इस अत्यन्त मधुर, द्युलोक के अमृत [illegible] श्रेष्ठ सोमरस को वज्रधारी इन्द्रदेव के लिए शोधित करें॥३॥

१२२८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥४॥

[illegible]॥४॥

१२२९. शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥५॥

युद्धों में शस्त्र धारण किये हुए शूरवीरों की तरह स्वर्गप्राप्ति की इच्छा से, गौ-प्राप्ति हेतु रथी के समान इन्द्रदेव का बल बढ़ाते हुए, यह दिव्य सोम, ऋत्विजों द्वारा प्रेरित होकर, गो-दुग्ध के साथ मिलाया जाता है ॥५॥

१२३०. इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥६॥

हे शक्तिवर्धक सोम! आप महान् [illegible] इन्द्रदेव के उदर में प्रवेश करें। मेघों को बरसाने के लिए प्रेरित करने वाली विद्युत् की तरह आप आकाश और पृथ्वी को फलदायी बनाएँ। [illegible] आप यज्ञ के माध्यम से हमारे लिए शाश्वत [illegible] अन्न प्रदान करें ॥६॥

१२३१. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥७॥

हे इन्द्रदेव! आप सभी दिशाओं में लोगों द्वारा बुलाये जाते हैं। शत्रु को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव! आप-संरक्षक एवं तुर्वश (लोगों) के नाश के लिए, आपकी स्तुति की जाती रही है ॥७॥

१२३२. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥८॥

हे इन्द्रदेव! आप रुम, रुशम, श्यावक और कृप के [illegible] कण्ववंशज आपको विभिन्न स्तोत्रों से प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। हे इन्द्रदेव! आप यहाँ पधारें ॥८॥

[[illegible]]

१२३३. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥९॥

हमारी दोनों प्रकार की प्रार्थनाओं को इन्द्रदेव हमारे सामने आकर श्रवण करें। बलवान् एवं ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर सोमपान करने के लिए हमारे निकट आएँ ॥९॥

१२३४. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥१०॥

आकाश और पृथ्वी, स्वराट् और तेजस्वी इन्द्रदेव को अपनी क्षमता से प्रकट करते हैं। हे इन्द्रदेव! आप उपमानों में श्रेष्ठ हैं। आप सोमपान की इच्छा से यज्ञों में विराजमान होते हैं ॥१०॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

॥अष्टमः खण्डः॥

१२३५. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥१॥

हे तेजस्वी सोमदेव ! शुद्ध होकर आपका आनन्ददायक रस इन्द्रदेव को मिले और शक्तियुक्त होकर वायुदेव को प्राप्त हो ॥१॥

१२३६. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
इन्दो समुद्रमा विश ॥२॥

हे पवित्र सोमदेव ! आप प्रशंसनीय ऐश्वर्य के लिये शत्रुओं को दण्डित करते हैं । हम पात्र (कलश) में आपका आवाहन करते हैं ॥२॥

१२३७. अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥३॥

हे यज्ञकर्म के ज्ञाता, आनन्ददायक सोम ! आप शुद्ध होकर आपने दिव्य प्रभाव से शत्रुओं एवं अहित करने वालों को दूर भगाएँ ॥३॥

१२३८. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥४॥

हे तेजस्वी सोमदेव ! आप हमें ऐसा श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें, जो सैकड़ों द्वारा प्रशंसनीय, सहस्रों का भरण-पोषण करने में समर्थ, तेजस्वी और पराक्रमी हो ॥४॥

१२३९. वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥५॥

हे उत्तम आश्रय देने वाले सोमदेव ! सबके द्वारा सराहनीय, सबको पोषण देने वाले आपकी विभूतियों का हम सान्निध्य चाहते हैं । हे सूर्य रश्मियों के साथ रहने वाले सोमदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त अन्नादि (पोषक पदार्थों) के उपयोग से हम सुखी हों ॥५॥

१२४०. परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥६॥

सूर्य रश्मियों की कामना करने वाला, आनन्दित करने वाला, ऊपर की ओर गतिशील सोम, यज्ञ में धारारूप से पवित्र होता है । याजकों को आनन्दित करने के लिए यह सोम छन्नी से परिष्कृत होता है ॥६॥

१२४१. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥७॥

हे सोमदेव ! आप अद्वितीय समुद्ररूप, सबका पालन करने वाले हैं । आप देवों के सभी स्थानों को अपने दिव्यरस से परिपूर्ण कर दें ॥७॥

१२४२. शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥८॥

हे प्रतिभावान् सोमदेव ! आप दिव्य पुरुषों के लिए पवित्र हों । आकाश, पृथ्वी तथा प्रजाओं (समस्त जीव-जगत्) को सुख प्रदान करें ॥८॥

१३५२. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥९॥

[illegible] अनुदान देने वाले, सम्पदाओं के स्वामी इन्द्रदेव की स्तुति करने लगे ॥९॥

॥इति नवमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि—[illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] [illegible] ।

देवता—[illegible] सोम [illegible] । अग्नि [illegible] । इन्द्र [illegible] ।

छन्द—त्रिष्टुप् [illegible] । गायत्री [illegible] । जगती [illegible] । [illegible] [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । [illegible] गायत्री [illegible] । [illegible] [illegible] ।

॥इति नवमोऽध्यायः॥

॥अथ दशमोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१२५३. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१॥

जल की वृष्टि करने वाला, सर्वरक्षक दिव्य सोम, विस्तृत आकाश में सर्वप्रथम प्रजाओं की उत्पत्ति करके श्रेष्ठतम महत्त्व को प्राप्त हुआ, तदनन्तर पृथ्वी के ऊपर स्थापित ऊर्णनिर्मित छन्ने के द्वारा शोधित होता हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५४. मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो* मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥२॥

हे दिव्य सोम ! हमें अन्न और धन की प्राप्ति कराने हेतु आप वायुदेव को सन्तुष्ट करें । शोधित किये जाते आप, मित्र और वरुण देवों को, मरुत् की सामर्थ्य को, इन्द्रादि देवों को, आकाश और पृथ्वी के हर्ष को बढ़ाने वाले हों ॥२॥

[* द्र. सामवेदभाष्य [illegible] - प्र. वैदिक यन्त्रालय, अजमेर - [illegible] - पीताम्बर (१८०७) - सं.]

१२५५. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥३॥

जल का गर्भरूप यह सोम देवताओं के सेवनार्थ प्रयुक्त होता है । शोधित होते हुए इस सोम ने इन्द्रदेव में बल भरा और सूर्यदेव में तेज उत्पन्न किया है ॥३॥

१२५६. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदन् ॥४॥

अमरणधर्मा यह दिव्य सोम वेग से आकाश में पक्षी के सदृश, कलशों में वेग से प्रविष्ट होता है ॥४॥

१२५७. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥५॥

श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा स्तुति किये जाकर यह दिव्य सोम, याजकों को धन प्रदान करता हुआ, जल में मिश्रित होता है ॥५॥

१२५८. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥६॥

यह शोधित, बलयुक्त सोम अपनी शक्तियों से उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करते हुए, उनके समुचित वितरण की इच्छा करता है ॥६॥

१२५९. एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥७॥

यह शोधित दिव्य सोम ध्वनि करते हुए यज्ञ स्थल में जाने हेतु उपयुक्त वाहन की कामना करता है और याजकों को इष्ट पदार्थ प्रदान करने की इच्छा रखता है ॥७॥

१२६०. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥८॥

इस शोधित किये गये सोम को स्तुतिगायक स्तुतियों द्वारा सभी तरह विभूषित करते हैं, फिर उसको युद्धोन्मुख शक्ति की एक प्रकार से परिष्कृत किया जाता है ॥८॥

१२६१. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥९॥

अँगुलियों द्वारा निचोड़कर शोधित किया गया सोम, स्वयं अहन्य रहकर शत्रुओं का दमन करता है ॥९॥

१२६२. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥

शोधित होकर शब्द करते हुए धारा रूप में प्रकट सोम, सत्यलोकों (प्रकृति चक्र से आने वाले आपदाओं) को लाँघकर यज्ञ के प्रभाव से पुनः ऊर्ध्वगति पाता है ॥१०॥

[यहाँ प्रकृति चक्र (इकोलॉजिकल सर्किल) को जीवन्त बनाये रखने का संकेत है।]

१२६३. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥११॥

उत्तम यज्ञवाला, शोधित दिव्य सोम, शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ हुआ, यह सोम इस प्रकार उच्चता से दिव्यलोक को गमन करता है ॥११॥

१२६४. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥१२॥

यह दिव्य हरितवर्ण सोम सदा से ही दैविक गुणों की अभिवृद्धि करने में पवित्र होकर उपयुक्त होता रहा है ॥१२॥

१२६५. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१३॥

विविध कर्मकुशलता का जनक और पोषक-आहार उत्पन्न करने वाला यह सोम, अपने रस प्रवाह से स्वाभाविकरूप से शुद्ध हो जाता है ॥१३॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१२६६. एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

अँगुलियों से निचोड़ा गया, शक्तिशाली यह सोम, तीव्र गतिशील रथ से निश्चयपूर्वक इन्द्रदेव के निकट पहुँच जाता है ॥१॥

१२६७. एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसत ॥२॥

देवों से अधिष्ठित विस्तृत यज्ञ स्थान में, यह सोम अमरत्व का सम्पादन करने की अभिलाषा रखता है ॥२॥

१२६८. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥३॥

याजकगण (ऋत्विक्) अन्नों के उत्पादक, शोधित होने योग्य सोमरस को अभिषवण करके संकलित करके पात्रों में एकत्र करते हैं ॥३॥

१२६९. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ।।४ ।।

अभिषवण के रूप में पहुँचा यह सोम पवित्र मार्ग से ले जाया जाता है, जहाँ से अध्वर्युगण उसे शुद्ध करते हुए देवताओं को समर्पित कर देते हैं ।।४ ।।

१२७०. एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ।।५ ।।

स्वर्ण रश्मियों से युक्त, जलों का अधिपति, बलवान्, शक्तिशाली सोम वेग से प्रवाहित होकर उपासकों के पास पहुँचता है ।।५ ।।

१२७१. एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ।।६ ।।

ऐश्वर्यवान्, यह सोम अपनी सामर्थ्य को उसी प्रकार प्रकट करता है, जिस प्रकार बलशाली वृषभ पशुओं के मध्य अपनी शक्ति को प्रकट करता है ।।६ ।।

१२७२. एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ।।७ ।।

अपनी सामर्थ्य से विरोधी दुष्टों को पीड़ित करता हुआ यह सोम, सभी मर्यादित रखता है और हिंसक दुष्टों का विनाश कर देता है ।।७ ।।

१२७३. एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ।।८ ।।

श्रेष्ठ धन-सम्पदा को धारण करने वाला हरिताभ सोम, दसों अँगुलियों द्वारा निचोड़ा जाकर समर्पित किया जाता है ।।८ ।।

।।इति द्वितीयः खण्डः ।।

* * *

।।तृतीयः खण्डः ।।

१२७४. एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरव्यत । गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ।।१ ।।

रथ के सदृश् वेगवान्, बलशाली अन्न-प्रदायक यह सोम, कलश में छलनी के द्वारा छाना जाता है ।।१ ।।

१२७५. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ।।२ ।।

इन्द्रदेव द्वारा ग्रहण किये जाने के लिए, यह हरिताभ सोम तीन (तीन स्थानों से - अंतरिक्ष में, पार्थिव स्थलों में तथा आदित्य लोक में) निचोड़ा जा रहा है ।।२ ।।

१२७६. एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितम् ।।३ ।।

जिस प्रकार बाज पक्षी अपने निवास के प्रति तथा प्रेमी अपनी प्रियतमा के प्रति वेगपूर्वक जाता है, उसी प्रकार यह सोम मनुष्यों के बीच वेगपूर्वक पहुँचकर प्रतिष्ठित होता है ।।३ ।।

१२७७. एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ।।४ ।।

द्युलोक में उत्पन्न हुआ यह आनन्ददायक सोम, सबको देखता हुआ (अध्यात्म प्रकृति) छलनी से शुद्ध होता है ।।४ ।।

१२७८. एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ।।५ ।।

सबको धारण करने वाला यह अविनाशी सोम, देवों के पीने के लिए तैयार किया गया है, जो ध्वनि करता हुआ अपने प्रिय निवास स्थान, कलश में प्रवेश करता है ।।५ ।।

१२७९. एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥८॥

इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए, सदाचारी दसों अँगुलियाँ उस सोम को शोधित करती हैं ॥८॥

[(i) हरित = [illegible] (ii) दसों अँगुलियाँ = [illegible] (iii) [illegible] = [illegible]]

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१२८०. एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यं वारं वि धावति ॥१॥

सर्वज्ञाता, मन का अधिपति, [illegible] एवं बलशाली दिव्य सोम, [illegible] द्वारा शुद्ध होकर [illegible] कलश में प्रतिष्ठित होता है ॥१॥

१२८१. एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

देवों के निमित्त निकाला हुआ यह सोम, शुद्ध होकर देवों के स्थानों में [illegible] है ॥२॥

१२८२. एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

देवताओं को अभीष्ट, [illegible], अविनाशी, शत्रुनाशक सोम, यह कलश में [illegible] शोभायमान होता है ॥३॥

१२८३. एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

दसों अँगुलियों द्वारा नियंत्रित [illegible], [illegible] यह सोमरस [illegible] करता हुआ, द्रोणकलश में पहुँचता है ॥४॥

१२८४. एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पवित्र करने वाले द्युलोक में [illegible] करने वाला शुद्ध सोम सूर्यदेव को प्रकाशित करता है ॥५॥

१२८५. एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥

किसी के दबाव में न रहने वाला, [illegible] यह सोम तेजस्वी सूर्यदेव द्वारा [illegible] में मिलाने के लिए छोड़ा जाता है ॥६॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पंचमः खण्डः॥

१२८६. एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥१॥

ऋषियों-ज्ञानियों के द्वारा स्तुत्य, शोधित, [illegible] नाशक यह सोमरस तृप्ति प्रदान करने वाला है ॥१॥

१२८७. एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

बलसंवर्द्धक एवं स्वर्गीय सुख को अपने [illegible] में रखने वाला दिव्य सोम, [illegible] में [illegible] इन्द्रदेव (देवों) और वायुदेव के निमित्त सींचा जाता है ॥२॥

१२८८. एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

यशस्वी, सबकुछ जानने वाला, द्युलोक (आदि) में प्रकाशित दिव्यरस रूप सोम, ऋत्विजों द्वारा लकड़ी के बने पात्रों में सवन (अभिषवन की ओर) ले जाया जाता है ॥३॥

१२८९. एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

द्युलोक में प्रतिष्ठित, सम्पत्तिवर्द्धक, उत्तम, विजयशील यह सोम गौओं (गव्य आहुतियों के माध्यम से) मनुष्यों द्वारा संयुक्त किया जाता है ॥४॥

१२९०. एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥५॥

यह प्रकाशित, शक्तिशाली, बलवर्धक, शुद्ध सोम, इन्द्रदेव एवं यजमानों (ऋत्विजों) को प्राप्त करने के लिए, शब्द करता हुआ अन्तरिक्ष में प्रवाहित होता है ॥५॥

१२९१. एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥६॥

देवताओं का रक्षक, पापकर्मियों का संहारक, नष्ट न होने वाला, शोधित हुआ, बलयुक्त, सोमरस कलश में पहुँचता है ॥६॥

॥इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

१२९२. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥१॥

ऋत्विजों से पूजित, इन्द्रादि देवों के लिए तैयार किया हुआ, अभीष्ट वर्षक सोम, विकारों को नष्ट करता हुआ शोधन पात्र से टपकता है ॥१॥

१२९३. स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

सबका संरक्षक, सबका धारक, दुष्टों का संहारक यह हरितवर्ण सोम, छन्ने से पवित्र होकर, शब्द करते हुए कलश में पहुँचता है ॥२॥

१२९४. स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

द्युलोक से प्रकाशमान, शक्तिसम्पन्न, दुष्टों का संहारक, शोधित होता हुआ यह दिव्य सोम अविरल प्रवाहित होता है ॥३॥

१२९५. स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥

यह सोम त्रिलोक (अंतरिक्ष, प्रकृति और जीवों के मध्य आदान-प्रदान करने वाले यज्ञ) में संस्कारित होकर अपने महान् तेज से सूर्यदेव को प्रकाशित करता है ॥४॥

१२९६. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

शत्रुओं का नाश करने वाला, बलवर्धक, निर्विकार, विजयशील, धन देने वाला सोम अश्व के वेग के समान कलश में प्रविष्ट होता है ॥५॥

१२९७. स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥९॥

द्युलोक में प्रकाशवान् यह सोम याजकों के द्वारा प्रवाहित होकर, इन्द्रादि देवों की महत्ता बढ़ाने के लिए, वेग पूर्वक, कलश (द्रोणकलश) में प्रविष्ट होता है ॥९॥

॥इति षष्ठः खण्डः॥

* * *

॥सप्तमः खण्डः॥

१२९८. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१॥

ऋषियों द्वारा संगृहीत (ओषध मूर्छों) में रस लेने वाला, पवित्र करने वाले सूक्तों का पाठ करने वाला, मातरिश्वा (प्राण के रूप में) वायु से स्वादिष्ट होकर अन्नादि का सेवन करता है ॥१॥

१२९९. पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥२॥

जो ऋषियों द्वारा वर्णित वेदों की ऋचाओं का अध्ययन करता है, उसके लिए (उसके अन्न को शुद्ध करने के लिए) देवी सरस्वती, दुग्ध, घृत, शहद जैसे पौष्टिक रस स्वयं उपलब्ध कराती हैं ॥२॥

१३००. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥३॥

ऋषियों द्वारा सम्पादित पावमानी (पवित्र करने वाली) रस कल्याण कारक, उत्तम फलदायक एवं स्नेह-वर्धक हैं। वेदपाठी ब्राह्मणों के बीच भावों उसीने स्थिरता अमृत को रखा किया है ॥३॥

१३०१. पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

देवताओं द्वारा सम्पादित देवी ऋचाएँ हमें इहलोक और परलोक में सुख पहुँचाएँ और हमारे अभीष्ट मनोरथ फलित हों ॥४॥

१३०२. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥५॥

देवगण अपने को पवित्र करने के लिए जिन साधनों का प्रयोग करते हैं, उन हजारों प्रकार के साधनों से पवित्र करने वाली यह ऋचाएँ हमें भी निर्मल बनाएँ ॥५॥

१३०३. पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥

पवित्रता प्रदान करने वाली एवं कल्याणकारी इन ऋचाओं से प्रेरित होकर साधक, आनन्द की स्थिति को प्राप्त करता है। वह पवित्र (पुण्यार्जित) अन्न खाता और अमरता प्राप्त करता है ॥६॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

॥ अष्टमः खण्डः ॥

१३०४. अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥

यज्ञ वेदिका में तरुण अग्नि के प्रदीप्त, आकाश और पृथ्वी के मध्य विशिष्ट तेजस्वी, चित्रभानु, सुन्दर आहुतियुक्त, सर्वव्यापी, जिनकी अग्निदेव की, हम नमस्कारपूर्वक वन्दन करते हुए, उनका आश्रय प्राप्त करते हैं ॥१॥

१३०५. स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥२॥

अपने महान् तेज से सब पापों को नष्ट करने वाले, ज्ञानरूपी प्रकाश के विस्तारक अग्निदेव, यज्ञशाला में प्रतिष्ठित होते हैं । वे स्तुत्य अग्निदेव हमें दोषयुक्त एवं निन्दित कर्मों से बचाते हैं और आहुतियाँ प्रदान करने वाले हमारी, धनवानों की भी रक्षा करते हैं ॥२॥

१३०६. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप वरुण (श्रेष्ठताओं) को पूर्ण करने वाले और मित्र (मित्रवत् सहयोग देने वाले) रूप हैं । वसिष्ठ श्रेष्ठगण श्रेष्ठ स्तुतियों से आपको संवर्धित करते हैं । आप श्रेष्ठ धन एवं कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥३॥

१३०७. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥४॥

वृष्टि करने वाले मेघों के सदृश महान् और तेजस्वी वे इन्द्रदेव वत्स ऋषि की स्तुतियों से, अत्यधिक बढ़ने वाले होते हैं ॥४॥

१३०८. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधा ॥५॥

जब कण्ववंशी ऋत्विगण स्तुतियों के माध्यम से इन्द्रदेव को यज्ञ साधक (सहायक) बना लेते हैं, तो (युद्ध रूपी) शस्त्रों की आवश्यकता नहीं रह जाती- ऐसा कहा गया है ॥५॥

१३०९. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥६॥

जब अग्रणी … दिव्य अग्नियाँ यज्ञ के लिए … हविष्य को … ले जाती हैं, तब … स्तुतियों से उनकी स्तुति करते हैं ॥६॥

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

* * *

॥ नवमः खण्डः ॥

१३१०. पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥१॥

शत्रुविनाशक, पवित्र … तेज वाले हरित सोमरस की … आह्लादकारी धाराएँ, शीघ्रगामी होकर प्रवाहित होती हैं ॥१॥

१३११. पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२॥

शुभ्र रथ्यों से सुशोभित, शुभ्र तेजों से प्रशंसनीय, मरुद्गणों की सहायता से युक्त हुआ यह हरित सोम सबके लिए आह्लादकारी है ॥२॥

१३१२. पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥

हे सोमदेव ! किरणों के द्वारा अन्न और सामर्थ्य प्रदान करने वाले आप, स्तोताओं को श्रेष्ठ पुत्र और ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३॥

१३१३. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वाऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥४॥

देवताओं का सर्वोत्कृष्ट पदार्थ (हव्य) मनुष्यों का हितैषी सोम, जल में सिंचित किया जाता है । अध्वर्यु उसे पत्थरों से कूटकर अभिषव करते हैं, ऐसे उस सोम को तथा उसका उत्तम स्थान निश्चित करें ॥४॥

१३१४. नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥५॥

हे अहिंसनीय, अति सुगन्धित, शोधित होने वाले सोम ! छन्ने के बाद आपको अन्तरिक्ष एवं गाय के दूध के साथ मिश्रित किया जाता है, तब आपको रस में आनन्द का पालन (सेवन-योग्य) किया जाता है ॥५॥

१३१५. परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥६॥

देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाला, यज्ञों के सम्पादक, ज्ञानसम्पन्न, तेजस्वितायुक्त सोम सबको देखने के लिए कलश में स्थित हो ॥६॥

१३१६. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥७॥

अभिषुत्यमान, बलवर्द्धक, हरिताभ, शोभित सोम राजा के समान शोभित है । गो-दुग्ध आदि में मिश्रित कर, पवित्र होने वाला सोम, छन्ने में छाना जाता है । श्येन पक्षी के समान घृतयुक्त पात्रों में स्थित होता है ॥७॥

१३१७. पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥८॥

पर्जन्य जो वर्षा करने वाले मेघ से बड़े-बड़े पत्तों वाले सोम के जनक हैं । ये सोमदेव पृथ्वी के नाभि स्थान में अवस्थित पर्वतों के निवासी हैं । ये सोमदेव गोदुग्ध, जल और स्तुतियों को प्राप्त करते हुए, यज्ञस्थल में स्थित होते हैं ॥८॥

१३१८. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥९॥

हे सोमदेव ! यज्ञ की इच्छा से जल में धुले, आप छन्ने में शोधित होकर, युद्धस्थल पर जाने वाले अश्व के सदृश, वेगपूर्वक स्थित होते हैं । हे सोमदेव ! आप हमें दुष्कृतियों से दूर कर सुखी करें ॥९॥

॥इति नवमः खण्डः॥

॥ दशमः खण्डः ॥

१३१९. आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१॥

हे पुरुषो ! किरणों के आश्रयदाता सूर्यदेव की भाँति ऐश्वर्यवान् इन्द्र, विश्व के समस्त वैभव को धारण करने वाले हैं। पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति का भाग प्राप्त करने के समान हम उनके (इन्द्र के) सामर्थ्य से प्रकट वैभव को प्राप्त करते हैं ॥१॥

१३२०. अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥

हे स्तोताओ ! याचकों को धनादि दान करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करो; क्योंकि इनके दान कल्याणकारक होते हैं। जब वे इन्द्रदेव अपने मन को (याचकों के निमित्त) देने की प्रेरणा करते हैं, तो उपासक की कामना को नष्ट नहीं करते ॥२॥

१३२१. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! जिनसे हम भय करते हैं, आप हमें निर्भयता प्रदान करें। आप अपनी सामर्थ्य से हमारी रक्षा करने में समर्थ, आप हमारे द्वेषियों और हिंसकों को नष्ट करें ॥३॥

१३२२. त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥४॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें देने के लिए आप अतुलित धन धारण करते हैं। हे स्तुति करने योग्य धनवान् इन्द्रदेव ! शुद्ध सोम का आस्वादन करने के निमित्त, हम (याजक) आपको बुलाते हैं ॥४॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

* * *

॥ एकादशः खण्डः ॥

१३२३. त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

हे सोमदेव ! आप धारणशील, आनन्दप्रद, सबसे उत्तम यज्ञ में अपनी धाराओं को ऐश्वर्ययुक्त बनाएँ। धन और ऐश्वर्यवान् हे सोमदेव ! आप कलश में शुद्ध हों ॥१॥

१३२४. त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥

हे सोमदेव ! शोधित हुए आप परम आनन्ददायक, शक्ति-सम्पन्न, यज्ञ के आधार, दीप्तिमान्, उत्साहवर्धक, शत्रु विजेता और अपराजेय हैं ॥२॥

१३२५. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३॥

हे सोमदेव ! पाषाणों से कूटकर, शब्द निनाद करते हुए कलश में प्रविष्ट हों और हमें तेजस्विता युक्त सामर्थ्य प्रदान करें ॥३॥

१३२६. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥४॥

हे शक्तिसम्पन्न, मधुर सोमरस! देवों की तृप्ति के लिए आप वेगपूर्वक धाराओं में हमारे कलश पात्र में आसीन हों ॥४॥

१३२७. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥५॥

(हे सोम!) जल में मिश्रित किया जाने वाला आपका रस, इन्द्रदेव के आनन्द हर्ष को बढ़ाने के लिए है। देवगण अमरत्व प्राप्त करने हेतु आपका पान करते हैं ॥५॥

१३२८. आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥६॥

आकाश से जल वर्षण की वृष्टि करने वाले, शोधित होकर स्वर्ग प्रदान करते हुए हे दिव्य सोमरस! आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६॥

१३२९. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥७॥

इस मनभावन, हरितवर्ण, कान्तिमान् सोम को छन्नी से शोधित करते हैं। यह सोमरस सब देवों को आनन्दित कर उन्हें प्राप्त होता है ॥७॥

१३३०. द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥८॥

पत्थरों द्वारा कूटकर निकाले, कान्तिमान्, स्वयं यशस्वी और इन्द्रदेव के प्रिय सोमरस को पाँचों अँगुलियाँ भलीप्रकार शोधित करती हैं और जल से युक्त करती हैं ॥८॥

१३३१. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥९॥

हे सोमदेव! वृत्रहन्ता इन्द्रदेव के पान के लिए, यज्ञ में दक्षिणा देने वाले वीर के लिए और यज्ञ करने वाले यजमान के लिए आप पात्र में संचित होकर सिक्त हों ॥९॥

१३३२. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१०॥

हे सोमदेव! अश्व के समान वेगवान्, जल से धोकर शुद्ध हुए आप शत्रुनाशक बल और ऐश्वर्य के लिए पात्र में आएँ ॥१०॥

१३३३. प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥

हे सोमदेव! याजकगण आपके रस को आनन्द वृद्धि के लिए शोधित करते हैं ॥११॥

१३३४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१२॥

नवजात शिशु को शुद्ध करने के सदृश ऋत्विग्गण, हरितवर्ण, दीप्तिमान् सोम को देवों के निमित्त छन्नी से शोधित करते हैं ॥१२॥

१३३५. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३॥

शत्रुनाशक, जल-गोदुग्धादि से मिश्रित, परिष्कृत, दीप्तिमान् सोमरस का देवगण पान करते हैं ॥१३॥

१३३६. तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥१४॥

हमारी वाणी इन्द्रदेव के हार्दिक प्रिय पात्र, ऐसे सोम की स्तुतियाँ करें। जिस प्रकार बालक को माता अपने दुग्ध से पुष्ट करती है, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ सोम की अभिवृद्धि करें ॥१४॥

१३३७. अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्। वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥१५॥

स्तुति करने योग्य हे सोम! हमारी गौओं को सुख प्रदान करने वाले, हमारे घर को पौष्टिक अन्न से भरने वाले आप जल से मिश्रित होकर, कुम्भ में स्थित हों ॥१५॥

॥इति एकादशः खण्डः॥

* * *

॥ द्वादशः खण्डः ॥

१३३८. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१॥

अग्नि को प्रदीप्त करने वाले याजकों के, युवा इन्द्रदेव सदा ही मित्र रहते हैं। वे याजक देवों के लिए क्रमबद्ध कुशाएँ (आसन) बिछाते हैं ॥१॥

१३३९. बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२॥

अग्नि के पास समिधाएँ पर्याप्त हैं। यज्ञ (शस्त्रादि) महान् हैं। स्तोत्र भी अनन्त हैं। युवा इन्द्रदेव उनके सदा ही मित्र रहते हैं ॥२॥

१३४०. अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥

इन्द्रदेव जिनके मित्र हैं, वह याजक युद्ध की इच्छा न रखते हुए भी सैन्यबल से युक्त शत्रु को पराजित करने में समर्थ होता है ॥३॥

१३४१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥४॥

जिनके स्वामी, युद्ध में अकेले होते हुए भी शत्रु के सामने पराजित न होने वाले इन्द्रदेव, याजकों को सम्पूर्ण वैभव प्रदान करते हैं ॥४॥

१३४२. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥५॥

अनेकों में से जो यजमान सोमरस अर्पित करके आपकी आराधना करता है, उसे हे इन्द्रदेव! आप अति श्रेष्ठ बल प्रदान कर देते हैं ॥५॥

१३४३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥६॥

हे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को कब सुनेंगे और आराधना न करने वालों को क्षुद्र पौधे की भाँति कब नष्ट करेंगे? ॥६॥

१३४४. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥७॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव! स्तोतागण आपका गुणगान करते और मंत्रों द्वारा अर्चना करते हैं। वंश की वृद्धि की भाँति ब्रह्मज्ञानी महिमा गान द्वारा आपको उच्च पद प्रदान करते हैं ॥७॥

१३०७. यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥८॥

जब यजमान सोमवल्ली के निमित्त पर्वत पर जाते हैं और यज्ञकर्म करते हैं, तब उनके मनोरथ को जानने वाले इन्द्रदेव, इस [illegible] यज्ञ में जाने को तत्पर होते हैं ॥८॥

१३०८. युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥९॥

हे सोम पीने वाले इन्द्रदेव ! पुष्ट और बलवान् अश्वों को रथ में जोड़कर आप हमारी स्तुतियाँ सुनने के लिए निकट आयें ॥९॥

॥इति द्वादशः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible] । शुनःशेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) [illegible] । [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] । [illegible] आङ्गिरस [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । प्रगाथ काण्व [illegible] । मनु आप्सव [illegible] । अम्बरीष वार्षागिर और ऋजिश्वा भारद्वाज [illegible] । [illegible] । अमहीयु आङ्गिरस [illegible] । [illegible] । [illegible] । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र [illegible] ।

देवता- पवमान सोम [illegible] । अग्नि [illegible] । इन्द्र [illegible] ।

छन्द- त्रिष्टुप् [illegible] । गायत्री [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । बार्हत प्रगाथ (बृहती, सतोबृहती) [illegible] । द्विपदा विराट् [illegible] । जगती [illegible] । उष्णिक् [illegible] ।

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

॥अथ एकादशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमखण्डः ॥

१३४७. सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१॥

हे पवित्रकर्ता, पावक अग्निदेव ! आप अच्छी तरह प्रज्वलित होकर यजमान के हित के लिए, देवताओं का आवाहन करें और उनके लिए यज्ञ का सम्पादन करें, अर्थात् देवों के पोषण के लिए हविष्यान्न ग्रहण करें ॥१॥

१३४८. मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥२॥

ऊर्ध्वगामी, मेधावी हे अग्निदेव ! हमारी रक्षा के लिए प्राणवर्द्धक, मधुर हवियों को देवताओं के निमित्त प्राप्त करें और उन तक पहुँचाएँ ॥२॥

१३४९. नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

इस यज्ञ में हम देवताओं के प्रिय और आह्लादक अग्निदेव का आवाहन करते हैं । वे हमारी हवियों को, देवताओं को प्राप्त कराने वाले तथा स्तुत्य हैं ॥३॥

१३५०. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥४॥

मानव मात्र के हितैषी हे अग्निदेव ! आप अपने श्रेष्ठ-सुखदायी रथ से देवताओं को लेकर (यज्ञस्थल पर) पधारें । हम आपकी वन्दना करते हैं ॥४॥

१३५१. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥५॥

सूर्योदय के पश्चात् निष्पाप मित्र, अर्यमा, भग तथा सविता देव हमारी ओर अभीष्ट धन के प्रेरक हों; अर्थात् हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करें ॥५॥

१३५२. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥६॥

हे कल्याणकारी देवो ! आप हमारे उत्तम रक्षक हों । पाप से पार करने वाले आप हमारी रक्षा करें और हमें पापों से मुक्त करें ॥६॥

१३५३. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥७॥

मित्रादि देवगण अपनी माता अदिति सहित हमारे सत्कर्मों के पोषक हैं । हमारा अभीष्ट पूर्ण करने में समर्थ हैं, अतः वे शासक हैं ॥७॥

१३५४. उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥८॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! सोमरस का पान करते हुए आप प्रमुदित हों । हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा ब्रह्मज्ञान से द्वेष करने वालों का नाश करें ॥८॥

१३५५. पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥९॥

हे इन्द्र ! आप महान् हैं । आपके समान सामर्थ्यवान् कोई नहीं । आप दान न देने वालों को पीड़ित करें ॥९॥

१३५६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥१०॥

हे इन्द्र ! आप रस-युक्त पदार्थों एवं रस विहीन पदार्थों के स्वामी हैं । आप समस्त प्राणियों के शासक हैं ॥१०॥

॥इति प्रथमखण्डः ॥

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

१३५७. आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१॥

चैतन्य, उत्तम स्तुतियों का ज्ञाता सोम शुद्ध होकर पात्र में स्थित होता है। उसको कर्म-कुशल, तेजस्वी, मनोकामी अध्वर्यु हाथों से सुशोभित रखते हैं ॥१॥

१३५८. स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२॥

पवित्र होने वाला, यह सोम इन्द्र को धारण करता है। आकाश और पृथ्वी को अपने तेज से पूर्ण करने वाला यह सोम है, जिसकी अत्यन्त प्रिय रक्षायुक्त धाराएँ उपासक को धन प्रदान करती हैं और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥२॥

१३५९. स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥

वृद्धि पाने वाला, देवत्व की वृद्धि करने वाला, शुद्ध होने वाला, शोधित सोम अपने तेज से हम यजमानों की रक्षा करे। पदज्ञ आत्मज्ञानी, हमारे पूर्वज अपनी गौओं (इन्द्रियों) को (सोमरस से पुष्ट) पर्वत से निकाल ले आते थे ॥३॥

१३६०. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥४॥

हे मित्रो! इन्द्रदेव की स्तुति छोड़कर अन्य की स्तुति उचित नहीं है। उससे शक्ति नष्ट न करो। सोम सोमिल करके समूहरूप से एकत्र होकर, बलशाली इन्द्रदेव की ही प्रार्थना करो ॥४॥

१३६१. अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननमुभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥५॥

सांड़ के सदृश संघर्षशील, तीव्रगामी, शत्रुओं का विरोध और उनका संहार करने वाले, उपासकों के अभीष्ट निर्माण करने वाले, महान्, दैविक और भौतिक ऐश्वर्यों के दाता इन्द्रदेव का ही स्तवन करो ॥५॥

१३६२. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥६॥

(सोमरस) संग्राम में आध्यात्मिक विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्य प्राप्ति के माध्यम, सतत रक्षा करने वाले इन्द्रदेव के लिए मधुर स्तोत्र, युद्ध के लिए उपस्थित रथ के समान, कहे जाते हैं ॥६॥

१३६३. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥७॥

भृगुओं ने भी कण्व की तरह ध्यान द्वारा, सूर्य किरणों की तरह संसार में संव्याप्त इन्द्रदेव का साक्षात्कार किया। वे भावनापूर्वक यज्ञ करने वाले याजकों के समान ही इन्द्रदेव की महत्ता का गान करने लगे ॥७॥

१३६४. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ।

हे सोम ! आप अनेक प्रकार के श्रेष्ठ अन्न प्रदान करने के लिए प्रस्तुत हों। प्राचीन काल में (इन्द्र) जैसे वृत्रासुर को पराजय करने के लिए आगे बढ़े थे, वैसे ही शत्रुओं के नाशक ! आप शत्रुओं के विनाश के लिये प्रेरित हों ॥८॥

१३६५. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥९॥

हे दिव्य सोम ! किरणों के माध्यम से ओषधियों और पृथ्वी में जीवन को गतिशील बनाने वाले, आपने अपनी क्षमता से जल को धारण करने वाले आकाश के ऊपर सूर्य को उत्पन्न किया ॥९॥

[वैज्ञानिक मनीषियों ने यह तथ्य प्रकट किया है कि [illegible] की उपस्थिति के कारण ही आकाश [illegible] है, [illegible] ऊँचाई के बाद [illegible] का प्रभाव न रहने से [illegible] हो जाता है। [illegible]]

१३६६. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये । वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥१०॥

हे सोमदेव ! श्रेष्ठ पुरुषों के इस महान् यज्ञ में, आपके अनुग्रह से हम सुख से रहते हैं। आप युद्धों में सम्पन्न होने वाले कार्य करते हैं ॥१०॥

१३६७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥११॥

हे सोमदेव ! आनन्द प्रदायक आप मित्र, पूषा, भग और इन्द्र आदि देवताओं के लिए प्रवाहित हों ॥११॥

१३६८. एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥१२॥

हे सोम ! दिव्य लोक में देवों के तेजस्वी रूप प्रकट हुए आप, अमरत्व एवं महान् [illegible] के लिए गतिशील हों ॥१२॥

१३६९. इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥१३॥

हे सोमदेव ! बल और [illegible] कर्म करने के इच्छुक इन्द्रदेव और [illegible] निष्पन्न आपके रस का पान करें ॥१३॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

॥ तृतीयः खण्डः ॥

१३७०. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥१॥

सूर्य रश्मियों के समान, [illegible], आनन्दप्रद, सोमधाराएँ [illegible] फैलती हैं। वे इन्द्रदेव के अतिरिक्त किसी अन्य को प्राप्त नहीं होतीं ॥१॥

१३७१. उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

मधुर एवं आनन्ददायक सोमरस, स्तुति [illegible] प्रदान किया जाता है। [illegible] द्वारा निकाला गया यह मधुर सोमरस बार-बार शुद्ध किया जाता है ॥२॥

१३७२. उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥

शब्द करते हुए [illegible] सोम की, दिव्य वाणी से स्तुति की जाती है और वह सोम शुद्ध होता हुआ दिव्य [illegible] को धारण कर लेता है ॥३॥

१३७३. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्। दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥४॥

स्तुत्य, दूर से दर्शनीय, गृहपालक, अगम्य एवं प्रशस्त अग्नि को हे ऋत्विजो! अरणि-मंथन से प्रकट करो ॥४॥

१३७४. तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्। दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥५॥

जो घर में प्रज्वलित किये जाने योग्य, नित्य दर्शनीय, सदैव ज्वालायुक्त अग्निदेव हैं, उन्हें याजकों ने अपने (रक्षा हेतु) यज्ञस्थल में स्थापित किया है ॥५॥

१३७५. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥६॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव! घृतादि से प्रज्वलित हुए आप, अखण्ड ज्वालाओं से हमारे निकट (यज्ञ वेदिका में) प्रदीप्त हों। ये आहुतियाँ निरन्तर आपको समर्पित की जाती हैं ॥६॥

१३७६. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥७॥

गतिमान् रश्मियों से युक्त, तेजस्वी सूर्यदेव पूर्व दिशा में उदित होकर, उभय लोकों में स्थित हो जाते हैं ॥७॥

१३७७. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥८॥

आकाश और पृथ्वी के मध्य इन सूर्यदेव का तेज प्राण से अपान तक संचरित रहता है। वे महान् सूर्यदेव आकाश को ज्वालायुक्त और तेजोमय बनाते हैं ॥८॥

१३७८. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥९॥

ये सूर्यदेव दिन की तीस घड़ियों में (३० घटी) अपने तेज से अत्यन्त प्रकाशमान रहते हैं। इस समय ऋक्, यजु, साम रूपी स्तुतियाँ सूर्यदेव को प्राप्त होती हैं ॥९॥

॥ इति तृतीय खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- मेधातिथि काण्व [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] काण्व [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] काण्व [illegible]। मेधातिथि काण्व [illegible]। [illegible] [illegible]। अग्नि [illegible] [illegible]। हिरण्यस्तूप आङ्गिरस [illegible]। सार्पराज्ञी १३७६-१३७८।

देवता- [illegible] (इन्द्र [illegible] अग्नि, [illegible])। [illegible]। [illegible] [illegible]। इन्द्र [illegible]। पवमान सोम [illegible]। अग्नि १३७३-१३७५। आत्मा अथवा सूर्य १३७६-१३७८।

छन्द- गायत्री [illegible]। त्रिष्टुप् [illegible]। [illegible] बृहती [illegible]। [illegible] अनुष्टुप् [illegible]। [illegible] विराट् [illegible]। [illegible] [illegible]। विराट् [illegible] [illegible]।

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

॥अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१३७९. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

श्रेष्ठ यज्ञ कर्म करने वाले याजकों की स्तुति सुनने को उद्यत अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं ॥१॥

१३८०. यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

सदा रक्षणशील, वे अग्निदेव पालक स्नेह-संगठनयुक्त प्रजाओं के एकत्र होने पर, दाताओं के ऐश्वर्य की रक्षा करते हैं ॥२॥

१३८१. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥३॥

अत्यन्त कल्याणकारी वे अग्निदेव हमारे धन की रक्षा में सहायक हों और हमें पापों से दूर करें ॥३॥

१३८२. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥४॥

सर्वसाधारण, युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर धन जीतने वाले अग्निदेव का प्राकट्य हुआ है, अतएव उनकी स्तुति करें ॥४॥

[अग्नि विग्रह के उल्लेख की प्रेरणा रूप में लिखित है।]

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* *

॥द्वितीय खण्डः ॥

१३८३. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तीव्रगामी और गतिमान अश्वों को रथ में जोड़ें ॥१॥

१३८४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥२॥

हे अग्निदेव ! हवि ग्रहण करने और सोम का पान करने के निमित्त हमारे और अनुकूल हों । देवों को भी प्रकट करें ॥२॥

१३८५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥३॥

संसार का भरण-पोषण करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रज्वलित होकर उन्नत हों । कभी क्षीण न होने वाले अपने तेज से प्रकाशित हों और जगत् में प्रकाश फैलाएँ ॥३॥

१३८६. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥४॥

सोमाभिषव करने वाले सोम के सम्बन्ध को (की गई स्तुति को) लोभी सुने न सुने । उसे अपमान के समान पीड़ित करें, जैसे भृगु ने मख (असुर) का हनन किया था ॥४॥

१३८७. आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥५॥

भाई के सदृश ... हितैषी होकर, माता-पिता की भुजाओं में स्थित पुत्र के तुल्य छन्ने में व्याप्त होकर कलश में उतरता है । जैसे कामी पुरुष स्त्री की ओर, या कन्या की ओर आकृष्ट होता है, वैसे ही सोम कलश में प्रविष्ट होता है ॥५॥

१५८८. स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥६॥

वीरोचित कर्मों और सामर्थ्य से युक्त यह सोम द्युलोक, आकाश और पृथ्वी को अपने तेज से व्याप्त कर देता है । यजमान के घर में प्रविष्ट होने के तुल्य शोधित हुआ हरितवर्ण सोम छन्ने में कलश को प्राप्त करता है ॥६॥

१५८९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप अजातशत्रु, स्वयं नियन्ता, बन्धु-बान्धवहीन हैं । बन्धु भाव की इच्छा से युद्ध में शत्रुओं का विनाश करके, आप केवल साधकों को ही अपना बन्धु मानते हैं ॥७॥

१५९०. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥८॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप धनाभिमानियों के मित्र नहीं होते । सुरा पीकर मदमत्त लोग आपको दुःख देते हैं । ज्ञान एवं गुण सम्पन्नों को मित्र बनाकर, आप उन्हीं पर धन बरसाते हैं, तब पिता-तुल्य सम्मान प्राप्त करते हैं ॥८॥

१५९१. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आपके स्वर्ण रथ में नियोजित सैकड़ों, सहस्रों मंत्र से गति पकड़ने वाले अश्व, आपको यज्ञस्थल में सोमरस का पान करने के लिए लाएँ ॥९॥

१५९२. आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! मधुर, अन्न-युक्त, स्तुत्य सोम के सेवनार्थ, स्वर्ण रथ में, मोर-पंखी, श्वेत पीठ वाले अश्व, आपको यज्ञस्थल पर लाएँ ॥१०॥

१५९३. पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥११॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! इस शोधित निचोड़े सोमरस का आप सर्वप्रथम पान करें । यह सोमरस आनन्द बढ़ाने वाले गुणों से युक्त है ॥११॥

१५९४. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥१२॥

हे ऋत्विजो ! अश्व के सदृश वेगपूर्वक जल के उत्पादक, तेज का विस्तार करने वाले, वेगों वाले सोमरस का शोधन करें और उसका जल में मिश्रण करें ॥१२॥

१५९५. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥१३॥

असंख्य धाराओं से क्षरित हुए, सुखवर्द्धक, दुग्ध मिश्रित किए सोमरस को देवताओं के निमित्त सम्पादित करें । यह दिव्य गुण से युक्त सोम रस में मिलकर शुद्धि पाता है ॥१२॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

१३९६. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१॥

उत्तम प्रकार से दीप्तिमान् और तेजस्वी, हवियों से युक्त होने वाले, धन दाता अग्निदेव अज्ञान रूपी शत्रुओं के नाशक हैं ॥१॥

१३९७. गर्भे मातुः पितुः पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पृथ्वी माँ के गर्भ में विद्योतन से देदीप्यमान एवं अन्तरिक्ष में पोषक की भूमिका में नियुक्त अग्निदेव यज्ञ वेदी पर विराजमान हैं ॥२॥

१३९८. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥

सब कुछ जानने वाले, विश्व-द्रष्टा, हे अग्निदेव ! अन्तरिक्षलोक में देवों को प्राप्त पुत्र, ऐश्वर्य और सन्तान आदि से हमें भी सम्पन्न करें ॥३॥

१३९९. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

इस सोम का प्रेरक, स्वर्ण के तुल्य तेज से परिशुद्ध हुआ, दीप्तिमान् सोम देवताओं से मिलता है । ऋत्विज् के पशु आदि से युक्त घरों में प्रविष्ट होने के समान, शब्दकर्ता विलक्षण सोम छलनी में प्रवाहित होता है ॥४॥

१४००. भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।

आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥५॥

तेजोमय दीप्ति एवं तेजोसम्पन्न, महान् ज्ञानी, स्तुत्य, पवित्र, विलक्षण हे सोमदेव ! आप पवित्र होकर यज्ञशाला के पात्रों में अधिष्ठित हों ॥५॥

१४०१. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।

अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

यशस्वियों में श्रेष्ठ, भूमि से प्रकट हुए, प्रिय, सोमरस छन्नी से शोधित होता है । हे पवित्र होने वाले सोम ! आप शब्द करते हुए, कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥६॥

१४०२. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥७॥

शुद्ध मन्त्रों से साम-गान करते हुए हम इन्द्रदेव का स्तवन करते हैं । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव शीघ्र आएँ । हम शुद्ध गोदुग्धादि से युक्त, आनन्ददायक सोमरस आपके लिए प्रस्तुत करते हैं ॥७॥

१४०३. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! शुद्ध हुए आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । हे सोम पीने वाले इन्द्रदेव ! शुद्ध हुए इस सोम से आप आनन्द- प्रसन्नता को प्राप्त हों ॥८॥

१४०४. इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! पवित्र हुए आप हमें ऐश्वर्य दें । उत्तम कर्मों में प्रवृत्त मित्रों को पुष्ट करें । ऐश्वर्य देने में समर्थ आप हमारे धनों में शुद्ध होकर शत्रुओं को विनष्ट करें ॥९॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥ चतुर्थः खण्डः ॥

१४०५. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥१॥

हव्य लाभ की कामना से, हम अविनाशकारी, तेजस्वी अग्निदेव का सिद्ध स्वरूप करने वाले स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते हैं ॥१॥

१४०६. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥२॥

यज्ञ के सम्पादक, मनुष्यों के बीच रहकर अग्निदेव, हमारी स्तुतियों को भली-भाँति सुनें और उन्हें दिव्यजनों से अभिपूरित करें ॥२॥

१४०७. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप हवि-वाहक, वरणीय, यज्ञ-साधक एवं महान् हैं । सब याजकगण आपके सहयोग से यज्ञ-अनुष्ठान पूर्ण करते हैं ॥३॥

१४०८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥४॥

तीनों स्थानों में बरसने वाले, अन्न प्रदाता, शब्द करने वाले सोमदेव की ओर हमारी स्तुतियाँ प्रेरित होती हैं । जल को आच्छादित करने वाला, प्रवाही, रत्नप्रदाता सोम, वरणीय धन देने वाला है ॥४॥

१४०९. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥५॥

शूरों के समूह और अनेक वीरों का नेतृत्व, शक्तिशाली, विजेता, धन-प्रदाता, आयुधों से युक्त, शीघ्रगामी धनुष वाला, संग्राम में अजेय, युद्ध में शत्रु को हराने वाला सोम धाराओं से शुद्ध हो ॥५॥

१४१०. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वर्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥६॥

हे सोम ! विस्तीर्ण पथ वाले, निर्भय बनाने वाले, आकाश-पृथ्वी को जोड़ने वाले, आप क्षरित होकर शुद्ध हों । जल, उषा तथा सूर्य किरणों का सेवन करने वाले; शब्द करते हुए आप सोम हमें प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६॥

१४११. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं के अभिभावक, सोम के उपभोक्ता, धनवान् और अपराजेय हैं। सब मनुष्यों के द्वारा आप शक्तिशाली दुष्टों का विनाश करने वाले हैं ॥७॥

१४१२. तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥८॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! जैसे पिता से पुत्र धन का भाग माँगता है, वैसे ही हम आपसे श्रेष्ठ ऐश्वर्य की याचना करते हैं। आप धन तथा ज्ञान सम्पन्न हैं, एवं सबके आश्रयदाता हैं। आपका श्रेष्ठ सुख हमें प्राप्त हो ॥८॥

१४१३. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप देवों में दिव्य, यज्ञ करने वाले, अमर, श्रेष्ठकर्मा तथा यजन योग्य हैं, अतः हम आपकी स्तुति करते हैं ॥९॥

१४१४. अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥१०॥

आकाशरूप जल के बालक, उत्तम ऐश्वर्यवान्, उत्तम दीप्तिमान्, श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव का हम वरण करते हैं। वे हमें द्युलोक में सर्वहितैषी मित्र और वरुणदेवों द्वारा मिलने वाला सुख दें, जल की सुखकारी धारा प्रदान करें ॥१०॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥ पंचमः खण्डः ॥

१४१५. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१॥

हे अग्ने ! आप संग्राम में जिस पुरुष को प्रेरित करते हैं, उसकी रक्षा आप स्वयं करते हैं। साथ ही उसके लिए श्रेष्ठ अन्न की पूर्ति भी करते हैं ॥१॥

१४१६. न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२॥

हे शत्रु-विजेता अग्निदेव ! आपके उपासक को कोई पराजित नहीं कर सकता, क्योंकि उपासक (आपके द्वारा प्रदत्त) तेजस्वी बल प्रसिद्ध है ॥२॥

१४१७. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३॥

सब मनुष्यों के कल्याणकारक वे अग्निदेव जीवन-संग्राम में अश्वरूपी इन्द्रियों द्वारा हमें विजयी बनाने वाले हों। मेधावी पुरुषों द्वारा प्रशंसित वे अग्निदेव हमें अभीष्ट फल प्रदान करें ॥३॥

१४१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥४॥

ये दसों अँगुलियाँ (दसों दिशाएँ) मिलकर दिव्य सोम को स्वच्छ शुद्ध करती हैं, फिर वह हरिताभ सोम सूर्य-रश्मियों से शुद्ध होता है। (तत्पश्चात्) अश्व के सदृश गतिमान् (वेगवान्) सोम कलश में जाता है ॥४॥

१४१९. सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥५॥

देवताओं का हृद्य, अभीष्ट, शक्तिशाली सोम, माता द्वारा शिशु में अथवा पुरुष द्वारा स्त्री से मिलने के तुल्य, जल द्वारा मिलकर धारण किया जाता है। फिर संस्कार (शोधित) किये जाने वाले स्थान में मेंढ़ादिक से निष्कृत होता है ॥५॥

१४२०. उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥६॥

गौओं के योग्य, पोषक पात्रों में संचित हुआ सोम, उनके दुग्धाशय को पूर्ण करता है। उत्तम मेधावी यह सोम दुग्ध-धाराओं से मिलाया जाता है। जिस प्रकार लोग स्वयं को वस्त्रों से आच्छादित करते हैं, उसी प्रकार वे गौएँ सोम के पात्र को दुग्ध से आच्छादित करती हैं ॥६॥

१४२१. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे द्वारा विशेषरूप से तैयार किये गये, गोदुग्ध मिश्रित सोमरस को पीकर आनन्दित हों। सोम के द्वारा अपने साथ हमारी वृद्धि करते हुए बुद्धि से रक्षा प्रदान करें ॥७॥

१४२२. भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अनुकूल उत्तम बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर हम सामर्थ्य प्राप्त करें। शत्रु हमें नष्ट न करें। आप अपने अभीष्ट और सामर्थ्ययुक्त रक्षा-साधनों से संरक्षित करें और हमारे सुख-वृद्धि करें ॥८॥

१४२३. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥९॥

परम व्योम में स्थित इस सोम को इक्कीस गौएँ उत्तम दुग्ध प्रदान करती हैं और जब यह सोम यज्ञादि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, तो अन्य चार प्रकार के जल को शोधनार्थ कल्याणकारी रूप में प्रकाशित करता है ॥९॥

[इक्कीस के लिए विशेष मंत्र नं ५८० की टिप्पणी देखें]

१४२४. स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥१०॥

श्रेष्ठ रस की इच्छा करने वालों की स्तुतियों से प्रकाशित दिव्यसोम द्युलोक और पृथ्वी को जल से परिपूर्ण कर देता है। ऋत्विग्गण जब देवों के स्थान को यज्ञ की शक्ति से पुष्ट करते हैं, तो यह (सोम) जल को अपनी महिमा से व्याप्त कर देता है ॥१०॥

१४२५. ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥११॥

अदम्य और अमरता प्राप्त इस सोमरस की किरणें दोनों प्रकार के (द्विपद एवं चतुष्पद) प्राणियों की रक्षक हैं। अपनी सामर्थ्य से यह सोम अन्न को देवों की ओर प्रेरित करता है; तत्पश्चात् राजा सोम की (मननकारी द्वारा) स्तुतियाँ की जाती हैं ॥११॥

॥ इति पंचमः खण्डः ॥

* * *

॥ षष्ठः खण्डः ॥

१४२६. अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

हे सोमदेव ! आप स्तुति के बाद वायु देवता के पान के लिए प्रस्तुत हों । पवित्र होकर मित्र और वरुण देवों को प्राप्त हों । वेगवान्, बुद्धि-प्रदाता, रथ में सवार अश्विनीकुमारों की ओर पहुँचें और अभीष्टवर्षक वज्रतुल्य भुजाओं वाले इन्द्रदेव के पास जाएँ ॥१॥

१४२७. अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥२॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप हमें उत्तम वस्त्र, तेजस्वी स्वर्ण और ऐश्वर्य प्रदान करें तथा गौओं के लिए प्राप्त हों । शुद्ध हुए आप हमें रथ-सहित दुधारू गौएँ प्रदान करें ॥२॥

१४२८. अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥

हे सोमदेव ! शुद्ध हुए आप हमें दिव्य धन एवं पार्थिव ऐश्वर्य से युक्त करें । जमदग्नि आदि ऋषियों की धनसंपदा (सम्पत्ति) प्रदान करें । हम तेज धन के अनुशीलन करने की सामर्थ्य प्राप्त करें ॥३॥

१४२९. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥४॥

हे अद्वितीय इन्द्रदेव ! शत्रुओं के विनाश के लिए जब आपका प्रादुर्भाव होता है, तब आपके प्रभाव से भूमि दृढ़ हुई और द्युलोक स्थिर हुआ ॥४॥

१४३०. तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपके प्रकट होने से ही श्रेष्ठ यज्ञ कर्मों की उत्पत्ति हुई । दिन का निर्माता सूर्य उत्पन्न हुआ । उत्पन्न हुए तथा आगे उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों को आप अभिभूत (पराजित) किये हुए हैं ॥५॥

१४३१. आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! कच्ची गायों से पूर्व ही आपने परिपक्व दूध उत्पन्न किया । आकाश में सूर्य को स्थापित किया । जिस प्रकार याजक यज्ञ (अग्नि) को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे स्तोतागण ! उत्तम स्तुतियों से इन्द्रदेव के हर्ष-उल्लास की वृद्धि करो । स्तुत्य इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए बृहत् साम (सामगान की एक विधि) का गान करो ॥६॥

१४३२. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥७॥

हे अन्नपालक इन्द्रदेव ! बड़े पात्र के समान आप महान् हैं । आप अन्नदायक, हर्षवर्द्धक, बलवर्द्धक, शक्तिशाली, अभीष्टों (श्रेष्ठ धन प्राप्ति आदि कार्यों के लिए) देने वाले सोमरस का पान करते हुए आनन्द की अनुभूति करें ॥७॥

१४३३. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त यह तैयार किया गया सोमरस आनन्ददायक, हर्षदायक, श्रेष्ठ, सामर्थ्ययुक्त, सेवन योग्य, अविनाशी, शत्रुविजेता, आनन्ददायी सोम है; वह आपको प्राप्त हो ॥८॥

१४३४. त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आप वीर और दानदाता हैं । मनुष्यों के रथों को आप प्रेरित करें । जैसे अग्नि अपनी ज्वाला से पात्र को तपाती है, वैसे ही आप हमारे कर्महीन दुष्टों और दस्युओं को नष्ट कर दें ॥९॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible] १३४६, [illegible] [illegible] १३४९-१३५०, [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

देवता- अग्नि [illegible] । [illegible] [illegible] । इन्द्र [illegible] ।

छन्द- गायत्री [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । [illegible] । बृहती [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible] । [illegible] ।

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

॥अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ प्रथमः खण्डः ॥

१४३५. पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

हे दिव्य सोम ! आप (हमारे लिए) द्युलोक से उत्तम रीति से वृष्टि करें । जल की अधिकता और आरोग्यकारी अन्न हमें प्रदान करें ॥१॥

१४३६. तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

हे सोमदेव ! आप उस (दिव्य) जलधारा से पवित्र हों (अर्थात् जल बरसायें), जिससे दुधारू गौएँ (पोषक तत्त्व-अन्नादि) हमारे घर पहुँचें ॥२॥

१४३७. घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

हे सोमदेव ! यज्ञ में देवों द्वारा चाहे गये आप घृत-रूप जल की वृष्टि करें । (पुष्टिदायक वर्षा करें) ॥३॥

१४३८. स न ऊर्जे व्यऽव्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥

हे सोमदेव ! हमें (पोषणयुक्त) अन्न प्रदान करने के लिए धारा रूप से [illegible] कलश में प्रविष्ट हों । देवगण आपके (नाद) शब्द सुनकर उल्लसित हों ॥४॥

१४३९. पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥५॥

राक्षसों का नाश करने वाला, तेज से देदीप्यमान, पवित्र होने वाला सोमरस कलश में प्रवाहित होता है ॥५॥

१४४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥६॥

हे याजको ! यज्ञसंचालन कर्ता, सर्वज्ञाता, [illegible] तथा सोम-पान की कामना वाले इन्द्रदेव के लिए सोमरस (रूपी पेय) भर दें ॥६॥

१४४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥७॥

हे ऋत्विजो ! [illegible] सोमरस को [illegible] पात्रों में ही [illegible] मात्रा में पान करने वाले इन इन्द्रदेव के पास जाकर प्रार्थना करो ॥७॥

१४४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते ॥८॥

हे ऋत्विजो ! [illegible] सोम को लेकर इन्द्रदेव की शरण में जाने पर, वे आपके मनोरथों को जानते हुए, [illegible] सभी इच्छाओं को पूर्ण कर देंगे ॥८॥

१४४३. अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥९॥

हे अध्वर्युगणो ! इन इन्द्रदेव के लिए रस-रूप सोमरस भली प्रकार प्रदान करो । वे इन्द्रदेव सभी जीतने योग्य, जीतने योग्य शत्रुओं को निरस्त करके आपकी रक्षा करेंगे ॥९॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

१४४४. बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥१॥

हे स्तुति करने वालो ! भूरे रंग के, बलशाली, अरुणिमायुक्त, आकाश में रहने वाले, दिव्य सोम की आप लोग स्तुति करें ॥१॥

१४४५. हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥२॥

हे ऋत्विजो ! पाषाणों से कूटकर निकाले सोमरस को शोधित करो । इस मधुर सोमरस में, मधुर गो-दुग्ध मिश्रित करो ॥२॥

१४४६. नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥३॥

हे ऋत्विजो ! इस सोमरस को नमस्कारपूर्वक दही में मिलाकर रखो । इस दीप्तिमान् सोमरस को इन्द्रदेव को पीने के लिए अर्पित करो ॥३॥

१४४७. अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४॥

हे दिव्य सोम ! शत्रुनाशक, सर्वद्रष्टा, देवों की इच्छानुसार कर्म करने वाले, आप हमारी गौओं को सुख दें (सुख पूर्वक रखें) ॥४॥

१४४८. इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५॥

यह सोम मनों में उत्तम चेतना, मनों के अधिपति हुए इन्द्रदेव के सेवनार्थ, उनके आनन्दवर्धन के निमित्त कलशादि होकर पात्र में एकत्रित होता है ॥५॥

१४४९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६॥

हे शोधित होने वाले पवित्र सोम ! आप उत्तम वीर्ययुक्त होकर अपने सहायक इन्द्रदेव के साथ में हमें अभीष्ट धन दिलाएँ ॥६॥

१४५०. उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥७॥

हे सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्रदेव ! यशस्वी धन से युक्त, बलशाली, मनुष्य हितैषी, शत्रु के संहारक आप प्रकट होते हैं ॥७॥

१४५१. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥८॥

अपने बाहुबल से शत्रु के निन्यानबे विशाल नगरों को ध्वस्त करने वाले और वृत्र नामक दुष्ट का नाश करने वाले इन्द्रदेव हमें अभीष्ट धन प्रदान करें ॥८॥

१४५२. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे लिए कल्याणकारी मित्ररूप गौओं की असंख्य दुग्ध-धार के समान हमें बहु-संख्यक धन प्रदान करें ॥३॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

१४५३. विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१॥

तेजस्वी सूर्यदेव, याजक को आरोग्य एवं दीर्घायुष्य देते हैं । वायु प्रवाहक, सर्वरक्षक, प्रजापालक, अनेक रूपों में शोभायमान इन्द्रदेव अमृततुल्य सोमरस मधु का पान करें ॥१॥

१४५४. विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

विशेष तेजयुक्त, महान्, उत्तम पोषक अन्न और बल प्रदायक, धर्म के आश्रय को धारण करने वाले, शत्रुनाशक, वृत्र संहारक, दुष्टों और असुरों के विनाशक सूर्यदेव अपना प्रकाश सभी ओर विस्तारित करते हैं ॥२॥

१४५५. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

यह सूर्य ज्योति, अनेक ज्योतियों की ज्योति, उत्तम विश्व-विजयिनी है । यह धनप्रदाता सूर्यरश्मि सब के विजेता, महान् सामर्थ्यवान्, सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक, अविनाशी, ओजस्वी बल को (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में) प्रसारित करते हैं ॥३॥

१४५६. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! हमें, उत्तम कर्मों (यज्ञों) का फल प्रदान करें । जैसे पिता, पुत्रों को धन आदि प्रदान कर, पोषित करता है, वैसे ही हमें पोषित करें । अनेकों द्वारा सहायता के लिए पुकारे जाने वाले हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में हमें दिव्य तेज प्रदान करें ॥४॥

१४५७. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! अज्ञात, पापी, दुष्ट, कुटिल, अमंगलकारी, हम पर आक्रमण न करें । हे श्रेष्ठ वीर ! आपके संरक्षण में हम निरन्तर, जलधाराओं के प्रवाहों से पार हों ॥५॥

१४५८. अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! वर्तमान और भविष्य में आपका संरक्षण प्राप्त हो । हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! सम्पूर्ण दिन और रात हमारी (स्तोताओं की) आप रक्षा करें ॥६॥

१४५९. अषाळ्हो शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥९॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव! आप अपने पराक्रम से शत्रुओं की सामर्थ्य को चूर-चूर करने वाले हैं। आप धन से सम्पन्न और ऐश्वर्यवान् हैं। हे शतकर्मा इन्द्रदेव! आपकी दोनों भुजाएँ, जो वज्र को धारण करती हैं, विशिष्ट सामर्थ्य से युक्त हैं॥९॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१४६०. जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥

स्त्री-पुत्र आदि की कामना करते हुए, धन-दानादि श्रेष्ठ कर्मों में अग्रणी हम सरस्वान् का आवाहन करते हैं॥१॥

१४६१. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥२॥

सात छन्द गायत्री आदि वाली छन्द और गंगा आदि सरिताएँ जिन देवी सरस्वती की बहिनें हैं, वे देवी सरस्वती हमारे लिए स्तुत्य हैं॥२॥

१४६२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३॥

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं, उन सविता देवता के वरण करने योग्य तेज को हम धारण करते हैं॥३॥

१४६३. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥४॥

हे ब्रह्मणस्पते! (ब्रह्मदेव!) सोमाभिषव करने वाले हमें, उसी प्रकार यशस्वी और ज्ञान-सम्पन्न बनाएँ, जिस प्रकार (पूर्वकाल में) उशिज पुत्र कक्षीवान् को बनाया था॥४॥

१४६४. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥५॥

हे अग्निदेव! विभिन्न प्रकार के पोषक तत्त्वों के साथ आप हमें बल और दीर्घायुष्य प्रदान करें। दुष्टों को हमसे पास से दूर करें॥५॥

१४६५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु ॥६॥

देवों में प्रशंसनीय, क्षात्र बल से सम्पन्न हे मित्र वरुण देव! आप हमें धरती और आकाश का सम्पदा वैभव प्रदान करें॥६॥

१४६६. ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते। अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥७॥

सत्य को सत्य का पालन करने वाले अभीष्ट बल को प्राप्त करते हैं। द्रोह न करने वाले मित्र और वरुण देव अपने सत्कर्मों से वृद्धि पाते हैं॥७॥

१४६७. वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः। बृहन्तं गर्तमाशाते ॥८॥

वर्षा के लिए जिनकी वंदना की जाती है, निमित्तानुसार सब कुछ प्राप्त करने वाले, जल की प्रकृति वाले, अन्नों के अधिपति वे मित्र और वरुण देव श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हैं॥८॥

१४७८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥९ ॥

आदित्यरूप, अग्निरूप, वायुरूप दीप्ति वाले, ... इन्द्रदेव की हम आराधना करते हैं । सूर्य के तुल्य इन्द्रदेव की प्रकाश-किरणें चमककर नक्षत्र-लोक में उजाला फैलाती हैं ॥९ ॥

[सूर्य के स्थिर रहने पृथ्वी के घूमने का सिद्धान्त वैदिक ऋषियों के लिए, अज्ञात नहीं था]

१४७९. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१० ॥

इन्द्रदेव सारथी को इच्छित स्थान पर ले जाने के लिए, कामना योग्य रथ, वर्ण में लालवर्णी अश्वों के द्वारा खींचा जाता है, बलवान् घोड़ों द्वारा चलाया जाता है ॥१० ॥

१४८०. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥११ ॥

हे मनुष्यो ! अज्ञानी को ज्ञानयुक्त करते हुए, कुरूप को रूपवान् करते हुए, उषाकाल में ये सूर्यदेव प्रकट होते हैं ॥११ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

॥पंचम खण्डः ॥

१४८१. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके निमित्त निष्पादित होकर शोधित किया जाता है । इस शोधित हुए सोम का आप पान करें । आप ही इसके उत्पादक हैं, इस दीप्तिमान् सोम को आनन्द के लिए, योग के लिए, आप धारण करें ॥१ ॥

१४८२. स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२ ॥

ये महान् इन्द्रदेव सोमरस का पालन किये हुए, रथ के समान, हमें अपार वैभव प्रदान करने के निमित्त, नियुक्त किये गये हैं और इनके निमित्त मनुष्यों की संतानें ... विचरण करती हैं ॥२ ॥

१४८३. शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥३ ॥

हे सोमदेव ! मरुद्गणों के तुल्य बल प्राप्त कराने के लिए आप पवित्र हों । जैसे दिव्य प्रजा पवित्र, ईर्ष्या मिटाते हुए अनवरत रहती है, वैसे ही आप जल के समान पवित्र होकर हमारे लिए उत्तम बुद्धि प्रदान करें । अनेक रूपों में विभूषित, शत्रुविजेता आप यज्ञ के सदृश पूज्य हैं ॥३ ॥

१४८४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सब यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले हैं । देवताओं ने आपको मानव-मात्र के कल्याण के लिए नियुक्त किया है ॥४ ॥

१४८५. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञ में हर्षदायक ज्वालाओं के द्वारा देवों का यजन करें । देवताओं का आवाहन कर उन्हें तृप्तिदायक हविष्यान्न अर्पित करें ॥५ ॥

१४७६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥६॥

हे विधाता, श्रेष्ठकर्मा अग्ने ! आप यज्ञ के निकटतम एवं सुगम्य मार्गों के ज्ञाता हैं । आप याजकों का उचित मार्गदर्शन करें ॥६॥

१४७७. होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७॥

यज्ञ करने वाले, अविनाशी, प्रकाशमान अग्निदेव, याजकों (साधकों) को सत्कर्मों की प्रेरणा देते हुए शीघ्र ही प्रकट होते हैं ॥७॥

१४७८. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥

संग्राम में बलशाली अग्निदेव को शत्रु-नाश करने के निमित्त स्थापित करते हैं । वे ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव यज्ञ-कर्मों को सिद्ध करने वाले साधनरूप हैं ॥८॥

१४७९. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९॥

वे अग्निदेव सब यज्ञ-कर्मों में प्रकट होने के कारण श्रेष्ठ हैं । सब प्राणियों में संव्याप्त हैं । विश्वव्यापक अग्निदेव को दक्ष-पुत्री (वेदी-रूप स्त्रियाँ) प्रजाति के निमित्त धारण करती हैं ॥९॥

॥इति पंचमः खण्डः॥

* *

॥षष्ठः खण्डः॥

१४८०. आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥१॥

हे अध्वर्युगण ! आकाश और पृथ्वी में देदीप्यमान सूर्य (किरण विस्तारी) से सोम का सिंचन करें । (क्योंकि) बाद में यह सूर्य (प्रकाश तेज) बलशाली सोम को आत्मसात् कर लेता है । (और उससे अत्यधिक बलशाली बन जाता है ।) ॥१॥

१४८१. ते जानत स्वमोक्यं३ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥२॥

वे गौएँ (सूर्य रश्मियाँ) अपने स्थानों को जानती हैं । जिस प्रकार बछड़े भीड़ में भी अपनी माताओं के पास चले जाते हैं, उसी प्रकार ये गौएँ (दिव्य किरणें) भी अपने बन्धुओं (सहयोगी-आवरण तत्त्वों) के पास स्वतः चली जाती हैं ॥२॥

१४८२. उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥३॥

भक्षण करने वाली ज्वालाओं से प्राप्त अन्न और सूर्य को इन्द्र और अग्निदेव यज्ञ (यज्ञीय प्रक्रिया) द्वारा आकाश में विस्तीर्ण कर देते हैं । तत्पश्चात् इन्द्र और अग्निदेव को सभी (प्रकृति के अंग-अवयव) सुख-वैभव देते हैं ॥३॥

[यहाँ यज्ञ द्वारा वायुशोधन का संकेत है]

१४८३. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥४॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाशरूप से संव्याप्त हुआ । जिससे प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त सूर्यदेव का प्राकट्य हुआ । जिनके उदय होते मात्र से (अन्धकाररूपी) शत्रु नष्ट हो जाते हैं । उन्हें देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥४॥

१७८४. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए अत्यन्त शक्तिशाली, दुष्टों के शत्रु इन्द्रदेव सभी दस्युओं (असुरों) को भयभीत करते हैं। स्थावर-जंगम (चराचर) सभी, इन्द्रदेव को सोमपान में, एक साथ स्तुति करके उनके बल को अभिनन्दित करते हैं ॥५॥

१७८५. त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६॥

हे इन्द्रदेव! सब याजकगण आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं। जब याजकगण विवाह करके दो या एक सन्तान के बाद तीन होते हैं, तो प्रिय से भी प्रिय उनकी संतान को प्रिय (धन-ऐश्वर्य) से युक्त करें। बाद में इस प्रिय संतान को मधुरता से युक्त करें ॥६॥

१७८६. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥७॥

महान् बलशाली, तृप्त हुए इन्द्रदेव तीन पात्रों में निकाले जौ के सत्तू से मिश्रित सोमरस को विष्णुदेव के साथ पान करते हैं। वे सोमदेव महान् व्यापक (तेजस्वी), उन इन्द्रदेव को महान् कार्य करने के लिए आह्लादित करते हैं। सत्यस्वरूप, दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्य और देव स्वरूप इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥७॥

१७८७. साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥८॥

हे इन्द्रदेव! आप बल के साथ प्रकट हुए हैं। अपनी सामर्थ्य से विश्व का भार उठाने की सामर्थ्य रखते हैं। हे बली, श्रेष्ठ इन्द्रदेव! महान् पराक्रमी, शत्रु संहारक, विशिष्ट ज्ञानी आप स्तोताओं को अभीष्ट ऐश्वर्य देते हैं। सत्यस्वरूप, दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्यदेव इन इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥८॥

१७८८. अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥९॥

हे इन्द्रदेव! अपनी सामर्थ्य से क्रिवि नामक असुर को मारकर ओज और तेजस्वी हुए आप आकाश एवं पृथ्वी को तेज से परिपूर्ण कर दिया। तेजस्वी हे और अधिक यशस्वी हुए आप सोम के एक भाग को अपने उदर में और दूसरे भाग को देवों के लिए बचा दिया है। हे इन्द्रदेव! सोमपान के लिए आप अन्य देवों को प्रेरित करें। सत्यस्वरूप, दीप्तिमान् दिव्यसोम, सत्यस्वरूप देदीप्यमान इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥९॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- अग्नि चाक्षुष [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । विश्वामित्र गाथिन [illegible] । मेधातिथि काण्व [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र [illegible] । उशना काव्य [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] ।

देवता- पवमान सोम [illegible] । इन्द्र [illegible] । सूर्य [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । अग्नि [illegible] । [illegible] [illegible] । अग्नि पवमान [illegible] । [illegible] [illegible] । अग्नि [illegible] । अग्नि अथवा [illegible] [illegible] ।

छन्द- गायत्री [illegible] । अनुष्टुप् [illegible] । बृहती [illegible] । जगती [illegible] । [illegible] [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible] । [illegible] गायत्री [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] ।

॥इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१४८९. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥

हे स्तोताओ ! सत्य यज्ञ के पोषक, सज्जनों के संरक्षक, गौ-पालक, इन इन्द्रदेव की सुन्दर स्तोत्रों से अर्चना करो ॥१॥

१४९०. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे ॥२॥

इन्द्रदेव के लाल रंग युक्त घुड़-वाहन उस इन्द्रदेव को अभिषिक्त करें। वहाँ प्रतिष्ठित हुए इन्द्रदेव की हम (याजकगण) स्तुति करते हैं ॥२॥

१४९१. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥३॥

जब यज्ञस्थल में समीप ही इन्द्रदेव मधुर रस का पान करते हैं, तब गौएँ वज्रधारी इन्द्रदेव के पान करने के लिए मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं ॥३॥

१४९२. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥४॥

सभी संग्रामों (जीवन-संघर्ष) में सहायतार्थ आवाहन योग्य इन्द्रदेव को हे ऋत्विजो! हमारे स्तोत्र एवं यज्ञ उन्हें सुशोभित करते हैं। हे वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ धनुर्धर, ऋजीषम इन्द्रदेव ! हमें (सवनकर्ता को) आप स्तोत्रयुक्त धन प्रदान करें ॥४॥

१४९३. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऐश्वर्यों का दाता हैं। ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। आप से हम यशस्वी एवं श्रेष्ठ सन्तान की कामना करते हैं ॥५॥

१४९४. प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥६॥

सबसे पहले यह पुरातन (सोमरस) अमृत, स्तुत्य एवं शक्तियुक्त द्युलोक से प्रकट हुआ है, तदनन्तर इन्द्रदेव के समक्ष प्रकटमान सोम की याजक स्तुति करते हैं ॥६॥

१४९५. आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥७॥

प्रातःकाल में इस सोम का दर्शन करने वाले दिव्य वसुगण, आकाश से अंधकार का निवारण करने वाले सविता के उदित होने के पूर्व (उषाकाल में ही) भाई के समान आदरणीय इस सोम की स्तुति करते हैं ॥७॥

१४९६. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥८॥

हे शोधित सोम ! गौओं के समूह में अवस्थित वृषभ के समान (आप) द्युलोक, पृथिवीलोक एवं सम्पूर्ण प्राणियों के मध्य विराजमान रहते हैं ॥८॥

१४९७. इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे (उद्गाताओं द्वारा) प्रयुक्त, गायत्री छन्दयुक्त, नूतन स्तोत्रों को देवताओं के पास जाकर भली प्रकार निवेदित करें ॥९॥

१४९८. विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥१०॥

नाना ज्वालाओं से दीप्तिमान् हे अग्निदेव ! आप धन-दायक हैं । नदी के पास आने वाली जल तरंगों के सदृश आप हविष्प्रदाता याजक को तत्काल (विपुल) कर्मफल प्रदान करते हैं ॥१०॥

१४९९. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥११॥

हे अग्निदेव ! हमें श्रेष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ अर्थात् सभी प्रकार की धन-सम्पदा आप प्रदान करें ॥११॥

१५००. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥१२॥

सत्यकर्मा तथा आदर्श इन्द्रदेव की ज्ञान-मेधा बुद्धि को हमने ग्रहण किया है । अतएव हम सूर्यवत् प्रकाशवान् हो गये हैं ॥१२॥

१५०१. अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥१३॥

कण्व के सदृश प्राचीन वेद वाणी से हमने स्तोत्र पाठ करके इन्द्रदेव को सुशोभित किया है । जिन (स्तोत्रों) के प्रभाव से इन्द्रदेव शक्ति-सम्पन्न बनते हैं ॥१३॥

१५०२. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१४॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति न करने वाले तथा आप के निमित्त स्तुति करने वाले ऋषियों के मध्य हमारे ही स्तोत्र प्रशंसनीय हैं । आप उन स्तोत्रों के प्रभाव से भलीप्रकार परिपुष्ट हों ॥१४॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः॥

१५०३. अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

हे बलशाली यज्ञाग्नि ! सभी अग्नियों के साथ आप भी हमारे स्तोत्रों का श्रवण करें । जो अग्नियाँ देवगण में प्रतिष्ठित हैं, तथा जो मानवों में सन्निहित हैं, उनके द्वारा हमारे स्तोत्रों को आप महिमा मण्डित करें ॥१॥

१५०४. प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥२॥

जिस अग्निदेव (यज्ञाग्नि) में अनेक लोग आहुतियाँ प्रदान करते हैं, वह यज्ञाग्नि अन्य अग्नियों सहित हविष्यान्न से परिपुष्ट होकर हमारे पास कल्याण करने हेतु पधारें । हमारे पुत्र-पौत्रों का भी आप कल्याण करें ॥२

१५०५. त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप अन्य सभी अग्नियों के साथ हमारे स्तोत्र एवं यज्ञ की अभिवृद्धि करें । आप मनोवांछित प्रदान करने के निमित्त (अन्य) देवों को भी प्रेरित करें ॥३॥

१५०६.त्वं सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥४॥

हे सोमदेव ! प्रथम अतिप्राचीन श्रेष्ठ यश एवं (विपुल) अन्न के निमित्त आपके विषय में श्रेष्ठ विचारयुक्त (स्तुति आदि करते) हैं । हे वीर सोमदेव ! आप हमें वीरता की प्राप्ति के लिए प्रेरित करें ॥४॥

१५०७.अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥५॥

हे सोमदेव ! (सोमरस) अन्न से युक्त होकर आपका रस कलशों से नीचे गिरता हुआ कलश पात्र को सभी प्रकार परिपूरित कर देता है, जिस प्रकार कोई बलवान् जन को सभी प्रकार हथेलियों से अनवरत (पानी के) सोत को पूरा कर देता है ॥५॥

१५०८.अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥६॥

हे अमृतमयी सोमदेव ! आपने सत्य एवं अमृतमयी जल को धारण करके अन्तरिक्ष लोक में सूर्यदेव को मानव के निमित्त आविर्भूत किया तथा देवताओं को प्रेरित करें । आप अन्न आदि हविष्य (सत्कर्मों) को देने के लिए सर्वदा प्रवहित रहते हैं ॥६॥

१५०९.एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥७॥

(हे याजको !) सोमरस इन्द्रदेव को प्रदान करो । वे मधुर सोमरस का पान करते हैं और अपनी महिमा से ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥७॥

१५१०.उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।

नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥८॥

अश्वों के अधिपति, स्तोताओं के धनदाता इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं । स्तुति करते हुए अश्व ऋषि के स्तोत्रों को (हे इन्द्र) आप निश्चयपूर्वक ही सुनें ॥८॥

१५११.न ह्यङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् । न की राया नैवथा न भन्दना ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे पहले आपके समान वीर, धन-सम्पन्न, युद्ध में शत्रुओं को पराजय करने वाला तथा स्तुति योग्य अन्य कोई देवता नहीं हुआ ॥९॥

१५१२.नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१०॥

हे याजको ! आपके लिए उषा को उत्पन्न करने वाले, नदी विचरण करने वाले और गौओं को पालने वाले इन्द्रदेव को बुलाते हैं । आप जो दुग्ध की कामना अन्न के रूप में प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, उसकी भी पूर्ति करने में इन्द्रदेव सक्षम हैं ॥१०॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

१५१३.देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

धनप्रदाता अग्निदेव पात्र से पूर्ण स्रुवाओं की कामना करते हैं। हे याजको ! उसे सोम से सिंचित करो, हविष्य को पूर्णरूप से भरो, अग्निदेव ही तुम्हारा पोषण करेंगे ॥१॥

[यहाँ पर यज्ञ को पूर्ण कौशलपूर्वक करने का निर्देश है।]

१५१४. तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥

देवों ने श्रेष्ठ ज्ञानवान् उन अग्निदेव को यज्ञ का सम्पादक बनाया है, जो हवि के वाहक हैं। वे यज्ञ करने वाले तथा दान देने वाले के लिए पराक्रम आदि श्रेष्ठतम विभूतियाँ प्रदान करते हैं ॥२॥

१५१५.अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३॥

जिस अग्नि में याजकगण यज्ञकर्म सम्पन्न करते हैं, वही मार्गदर्शकों में सर्वश्रेष्ठ अग्निदेव प्रकट होते हैं। आर्यों की उन्नति चाहने वाले भलीप्रकार प्रदीप्त अग्निदेव को हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥३॥

१५१६.यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥४॥

जिस प्रकार संग्राम में शत्रु मनुष्यों को वश में करने वाले विचलित करते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! दिव्यदाता अग्निदेव का उत्तम कर्मों द्वारा श्रद्धापूर्वक स्तवन करो ॥४॥

१५१७.प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥५॥

सुलोकवासी अग्निदेव अन्तरिक्ष में भी निवास करते हैं तथा विद्युत् जैसी सामर्थ्य के द्वारा इन जीवों को माता पृथिवी पर व्यापक कर्म करते हैं ॥५॥

१५१८.अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप हमें दीर्घायु प्रदान करें। हमें बल और अन्न प्रदान करें। दुष्टों को दूर करके, हमें सुरक्षित करें ॥६॥

१५१९.अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम् ॥७॥

पंच वर्गों (समाज के पाँचों वर्गों) का हित चाहने वाले और ज्ञान युक्त देखने वाले शुद्ध अग्निदेव जिन्हें याज्ञिकों ने यज्ञ के लिए प्रथम स्थापित किया है, उन महान् अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥७॥

१५२०. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम् ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम कर्मों को प्रेरणा देने वाले हैं। आप हमें तेज तथा पराक्रम से युक्त शक्ति प्रदान करें, हमें ऐश्वर्य और पोषक तत्त्वों से सम्पन्न बनाएँ ॥८॥

१५२१.अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥९॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! देवताओं को आनन्द प्रदान करने वाली ज्वालारूपी जिह्वा द्वारा, देवताओं को आमंत्रित करके आप उनके निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥९॥

१५२२.तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥१०॥

हे घृत से उत्पन्न होने वाले अद्भुत तेजस्वी अग्निदेव ! सबको देखने वाले आपकी हम प्रार्थना करते हैं । हवि सेवनार्थ देवों को आप यहाँ बुलाएँ ॥१०॥

१५२३.वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥११॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! यज्ञकुशल, तेजस्वी तथा महान् आपको हम यज्ञ में प्रज्वलित करते हैं ॥११॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः॥

१५२४.अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सभी यज्ञों में वन्दनीय हैं । गायत्री छन्द वाले सामगान से स्तुति करने पर प्रसन्न हुए आप अपने संरक्षणरूपी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥१॥

१५२५.आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥२॥

हे अग्निदेव ! दरिद्रता को नष्ट करने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले, वरण करने योग्य, श्रेष्ठ ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें ॥२॥

१५२६. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥

हे अग्निदेव ! श्रेष्ठ उत्तम ज्ञान के युक्त, जीवन का पोषक सामर्थ्य प्रदान करने वाला, सुखदायक धन हमें दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥३॥

१५२७.अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ॥४॥

हमारी स्तुतियाँ अग्नि (यज्ञाग्नि) को उसी प्रकार प्रेरणा दें, जिस प्रकार युद्ध में शीघ्र चलने वाले घोड़े को प्रेरित किया जाता है । जीवन-संग्राम में हम सभी ऐश्वर्यों के विजेता हों ॥४॥

१५२८.यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥५॥

हे अग्निदेव ! आपकी विघ्न-निवारण करने वाली एवं संरक्षण प्रदान करने वाली शक्ति से हमें गोधन की प्राप्ति हो । हमारे उत्तम धनादि देने के लिये (उस शक्ति को) प्रेरित करें ॥५॥

१५२९.आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पविम् ॥६॥

हे अग्निदेव ! महान् गौओं और घोड़ों से युक्त प्रचुर धन आप हमें प्रदान करें । आकाश आपके तेज से प्रकाशित है, आसुरी शक्तियों (रोग-दुर्गन्ध) को आप हमसे दूर हटायें ॥६॥

१५३०.अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥७॥

हे अग्निदेव ! सब मनुष्यों को प्रकाश देते हुए, कभी न क्षीण होने वाले और निरन्तर गतिशील सूर्यदेव को आप अन्तरिक्ष में स्थापित करें ॥७॥

१५३१. अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्। बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप प्रजाओं को ज्ञान देने वाले, प्रिय और सर्वश्रेष्ठ हैं, यज्ञशाला में स्थित आप हमारे स्तुतिगान को स्वीकार करते हुए हमें श्रेष्ठ जीवन प्रदान करें ॥८॥

१५३२. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥९॥

देवताओं में सर्वश्रेष्ठ, आकाश में उच्च स्थान पर रहने वाले, पृथ्वी को पोषण देने वाले ये अग्निदेव जल के मूल घटकों को प्राणों से प्रवाहित किये हैं ॥९॥

१५३३. ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः। स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप स्वर्गलोक के स्वामी, अन्न आदि पोषक और वरण करने योग्य धन के अधिपति हैं। आपके द्वारा सुख माँगते हुए हम सदा आपके स्तोता बने रहें ॥१०॥

१५३४. उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते। तव ज्योतींष्यर्चयः ॥११॥

हे अग्निदेव ! स्वच्छ-उज्ज्वल और प्रकाशित ज्योतियाँ आपके तेज को प्रकाशित करती रहती हैं ॥११॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- प्रियमेध आङ्गिरस १४८३-१४८६, १४९१ । नृमेध पुरुमेध आङ्गिरस १४९२, १४९४ । त्र्यरुण त्रैवृष्ण और त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य १४९५-१४९६, १५०४-१५०८ । शुनःशेप आजीगर्ति १४९७-१४९९ । वत्स काण्व १५००-१५०२ । अग्नि तापस १५०३-१५०५ । विश्वमना वैयश्व १५०९-१५१२ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १५१३-१५१४ । सोभरि काण्व १५१५-१५१७ । शतं वैखानस १५१८-१५२० । वसूयव आत्रेय १५२१-१५२३ । गोतम राहूगण १५२४-१५२६ । केतु आग्नेय १५२७-१५३० । विरूप आङ्गिरस १५३१-१५३४ ।

देवता- इन्द्र १४८३-१४९४, १५००-१५०२, १५०९-१५१२ । पवमान सोम १४९५-१४९६, १५०६-१५०८ । अग्नि १४९७-१४९९, १५१३-१५१७, १५२१-१५३४ । विश्वेदेवा १५०३-१५०५ । अग्नि पवमान १५१८-१५२० ।

छन्द- गायत्री १४८३-१४९१, १४९७-१५०२, १५१८-१५३४ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १४९२-१४९३, १५१३-१५१४ । उपरिष्टात् बृहती १४९५-१४९६, १५०६-१५०८ । अनुष्टुप् १५०३-१५०५ । उष्णिक् १५०९-१५१२ । बृहती १५१५-१५१७ ।

॥इति चतुर्दशोऽध्यायः॥

॥अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१५३५. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥१॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों में आपका बन्धु कौन है ? श्रेष्ठ दान से कौन आपका यजन करता है ? आपके स्वरूप को कौन जानता है ? आपका आश्रय स्थल कहाँ स्थित है ? ॥१॥

१५३६. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों के बन्धु-भाव रखने वाले, सखाओं के लिए प्रिय मित्र के तुल्य हैं ॥२॥

१५३७. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त मित्र और वरुण देवों का यजन (पूजन) करें । देवताओं का यजन (पूजन) करें । यज्ञ की पूजा करें तथा यज्ञशाला में पूजनीय भाव से रहें ॥३॥

१५३८. ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥४॥

स्तुत्य, नमन, अन्धकारनाशक, दर्शनीय और बलशाली हे अग्निदेव ! आप आहुतियों द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित किये जाते हैं ॥४॥

१५३९. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ॥५॥

बलशाली अश्व जैसे राजा के वाहन को खींच कर ले जाते हैं, उसी प्रकार अग्निदेव देवताओं तक हवि पहुँचाते हैं । उत्तम प्रकार से प्रदीप्त हुए, ऐसे अग्निदेव यजमान की स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥५॥

१५४०. वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥६॥

हे बलवान् अग्निदेव ! घृतादि की हवि प्रदान करने वाले हम, शक्तिशाली, तेजस्वी और महान् आपको (अग्नि को) प्राप्त करते हैं ॥६॥

१५४१. उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥७॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! भली प्रकार प्रदीप्त, महानता को प्रकट करने वाली उज्ज्वल आपकी लपटें ऊर्ध्व को प्राप्त करती हैं ॥७॥

१५४२. उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥८॥

हे पूजनीय अग्निदेव ! हमारे जुहू (स्रुचि) से घृतयुक्त हवि पात्र आपको प्राप्त हों, आप हमारी आहुतियों को स्वीकार करें ॥८॥

१५४३.मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥९ ॥

आनन्द प्रदायक, देवताओं का आवाहन करने वाले, ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाले, तेजस्विता से युक्त प्रकाशमान अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥९ ॥

१५४४.पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप एक, दो, तीन और चार वाणियों से हमारा संरक्षण करें ॥१० ॥

[इसके बाद के [illegible] में देखें]

१५४५.पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ॥
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥११ ॥

हे अग्ने ! आप हमें राक्षसी वृत्तियों और दान न देने वाले [illegible] से हमारा संरक्षण करें। संग्राम-संकट में हमारी रक्षा करें। हमारे समीपतम हितैषी आप ही हैं। हम यज्ञ की सफलता और संवर्द्धन हेतु आपका वरण करते हैं ॥११ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१५४६.इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबके स्वामी, दिव्य गुणों से युक्त, तेजस्विता, शत्रुओं के लिए भयंकर, उपासकों को [illegible] प्रदान करने वाले, [illegible] को विनष्ट करने वाले हैं, ऐसा अनुभव किया गया है। [illegible] अपने प्रकाश को [illegible] फैलाते हुए [illegible] के विविध [illegible] में जाते [illegible] हैं ॥१ ॥

१५४७.कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२ ॥

ये अग्निदेव, पिता (रूप सूर्य) से जन्म लेकर, [illegible] अँधेरी रात को अपनी ज्वालाओं से हटाते हैं (नाश करते हैं)। इस प्रकार [illegible] अग्निदेव द्युलोक में अपने तेज से सूर्य की दीप्ति को ऊपर ही रोककर उसे [illegible] प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

१५४८.भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३ ॥

कल्याणकारी अग्निदेव कल्याणकारिणी उषा द्वारा सेवित होकर प्रकट होते हैं, तब [illegible] अग्निदेव अपनी बहिन उषा के पास जाते हैं। अपनी तेजस्विता के प्रभाव से [illegible] अग्निदेव [illegible] के अँधेरे को नष्ट करके प्रतिष्ठित होते हैं ॥३ ॥

१५४९. कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
वराय देव मन्यवे ॥४ ॥

हे अंग रसरूप और बलपालक अग्निदेव ! वर्ण द्वारा स्वीकार करने योग्य और विरोधियों को पीड़ित करने वाले आपकी हम किस वाणी से स्तुति करें ? ॥४ ॥

१५५०. दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
कदु वोच इदं नमः ॥५ ॥

हे (बलभिलिषधरज) पुत्रवर्ग से रक्षक अग्निदेव ! किस प्रकार के देवस्वरूप मार्ग द्वारा हम आहुति आपके निमित्त अर्पित करें ? ये हवि अथवा ये स्तुतियाँ आपको प्राप्त हों, ऐसी प्रार्थना हम कब करें ? ॥५ ॥

१५५१. अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।
वाजद्रविणसो गिरः ॥६ ॥

हे अग्ने ! आपकी हम पर ऐसी कृपा हो, जिससे अपनी स्तुतियों के प्रभाव से हम श्रेष्ठ स्थानों के अधिकारी और श्रेष्ठ पोषक अन्न-धन से युक्त हो जाएँ ॥६ ॥

१५५२. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों को बुलाने वाले हैं, हमारी प्रार्थना सुनकर अपनी (विद्युत्रूप) अग्नियों सहित यहाँ पधारें । हे पूज्य अग्निदेव ! आपके लिए तैयार हविष्यान्न, यज्ञ वेदिका पर आसन ग्रहण करने के बाद आहुतिरूप में आपको प्राप्त हो ॥७ ॥

१५५३. अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥८ ॥

बलोत्पन्न, सर्वांग सम्पन्नशील हे अग्निदेव ! आप तक हविष्यान्न पहुँचाने के लिए ये स्रुचि पात्र सक्रिय हैं । शक्ति का क्षय रोकने वाले सर्वोच्च दाता, तेजस्वी, ज्वालायुक्त अग्निदेव को हम यज्ञ में आमंत्रित करते हैं ॥८ ॥

१५५४. अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥९ ॥

हमारी वाणियाँ भलीप्रकार प्रज्वलित ज्वालाओं से परिपूर्ण और दर्शनीय अग्निदेव के समीप सहजता से जाएँ । हमारी रक्षा के लिए, पूजनयुक्त हवियों के समान किये गये यज्ञ, बहुत धनवान् ये पूज्य और सर्वत्र प्रशंसनीय अग्निदेव को प्राप्त हों ॥९ ॥

१५५५. अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥१० ॥

जो अग्नि अमरत्व प्राप्त देवगणों में हैं, वह मनुष्यों में भी उसी प्रकार अमृतरूप हैं, अर्थात् दोनों स्थानों में वह व्याप्त रूप हैं । मनुष्यों में यज्ञ को सम्पन्न करने वाले आनन्ददायक श्रेष्ठ अग्निदेव को धन-धान्य प्रदान करने के लिए हम बुलाते हैं ॥१० ॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥तृतीयः खण्डः॥

१५५६. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम्। तूर्णी रथः सदा नवः ॥१॥

मानव मार्गदर्शक होने से अग्रणी, तत्काल क्रियाशील, रथ के समान वेगशील (गतिशील), नित्य नूतन वे अग्निदेव अदम्य हैं ॥१॥

१५५७. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।

क्षयं पावकशोचिषः ॥२॥

हविदाता मनुष्य, हवि (अन्न) प्रदान करते हुए, पावन ज्वालायुक्त, हविवाहक अग्निदेव से उत्तम आवास की प्राप्ति करते हैं ॥२॥

१५५८. साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।

अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३॥

अक्षुण्ण शत्रु-सेनाओं को परास्त करने वाले, दिव्य गुणों के संवर्धक वे अग्निदेव प्रचुर अन्न (वैभव) प्रदान करने वाले हैं ॥३॥

१५५९. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।

भद्रा उत प्रशस्तयः ॥४॥

आहुतियों से प्रवृद्ध अग्निदेव हमारे हितैषी हों। हे सौभाग्यशाली अग्निदेव! आपके कल्याणकारी अनुदान हमें मिलें। इनके द्वारा सम्पन्न यज्ञ और यश की नई स्तुतियाँ, हमारे लिए मंगलमय हों ॥४॥

१५६०. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः।

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥५॥

हे अग्निदेव! जीवन-संग्राम में हमें कल्याणकारी चिन्तन प्रदान करें, जिससे सब दुष्ट विचारों को दबाया जा सके, तथा (हे) आक्रमणकारी शत्रुओं को भी नष्ट करें। हम आपके (स्नेह) संरक्षण के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥५॥

१५६१. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।

अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥६॥

हे शक्ति सम्पन्न अग्निदेव! गवादि पशुओं के साथ उत्तम अन्न के आप स्वामी हैं। हे सर्वज्ञाता अग्निदेव! आप हमें अपरिमित ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६॥

१५६२. स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥७॥

तेजोवान, सभी को वास प्रदान करने वाले (सबका पोषक) वे अग्निदेव स्तुतियुक्त वाणी से स्तवन योग्य हैं। हे ज्वालावान अग्निदेव! आप हमें दीप्तियुक्त सम्पदा प्रदान करें ॥७॥

१५६३. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥८॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव! आप स्वयं दिन-रात्रि (प्रत्येक क्षण) में दुष्टों को पीड़ित करें और तीक्ष्ण तेजयुक्त दाढ़ों वाले हे अग्निदेव! आप असुरों को समूल नष्ट करते हैं ॥८॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१५६४.विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥

अन्न व बल की कामना से युक्त हे याजको ! आप प्रत्येक मनुष्य के गृह में अतिथि रूप में आदरणीय और प्रशंसनीय, अग्निदेव को हविष्य प्रदान करो । अग्नि को बलवर्द्धक स्तोत्रों से प्रतिष्ठित (यज्ञवेदी में स्थापित) अग्नि की हम प्रार्थना करते हैं ॥१॥

१५६५.यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥२॥

हविप्रदाता मित्र के समान घृताहुति से यज्ञ सम्पन्न करते हुए, वैदिक स्तोत्रों से हम स्तुत्य अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥२॥

१५६६.पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

अत्यधिक स्तुत्य, सर्वज्ञानयुक्त अग्निदेव की हम प्रशंसा करते हैं । अग्निदेव यज्ञ में प्रदत्त हविष्यान्न को देवलोक तक पहुँचाने में सहायक हैं ॥३॥

१५६७.समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥४॥

समिधाओं द्वारा प्रकट हुई अग्नि की हम वाणी से स्तुति करते हैं । शुद्ध, स्थिर और पावन करने वाली अग्नि को यज्ञ में अग्रिम स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं । (विप्र) विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न तथा हविप्रदाता सभी द्वारा वरण करने योग्य, द्रोहशून्य, ज्ञानवान् और सर्वज्ञाता अग्निदेव को ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हम स्तुति करते हैं ॥४॥

१५६८.त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥५॥

हे अग्निदेव ! आपको देवता और मनुष्य प्रत्येक युग (काल) में, हविवाहक रक्षक और स्तुति योग्य मानकर दूत रूप में नियुक्त करते हैं तथा अमृत, जाग्रत, सबके स्वामी, विभु और प्रजा की रक्षा में सहायक मानकर अग्निदेव को नमन करते हुए, उनकी उपासना करते हैं ॥५॥

१५६९.विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥६॥

देव एवं मनुष्य दोनों को सुशोभित करते हुए, अनुशासन प्रिय, ज्ञानवान् देवों के दूत रूप में, द्युलोक एवं इनमें हवि ले जाने वाले हे अग्निदेव ! हम आपकी स्तुतियाँ करते हैं । तत्पश्चात् तीनों स्थानों (पृथ्वी-अन्तरिक्ष-द्युलोक) में निवासकर्ता आप हमें सुख प्रदान करें ॥६॥

१५७०. उपत्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥७॥

हे अग्निदेव ! हवि प्रदान करने वालों की स्तुतियाँ, बहनों के समान आपके गुणों का बखान करती हुई वायु के सहयोग से आपको प्रज्वलित करके (प्रकाशमान) स्थित करती हैं ॥७॥

१५७१. यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥८॥

जिस अग्नि के (यज्ञकुण्ड के चारों ओर) तीन बार घुमाए हुए और कभी सूखे हुए बन्धन-रहित कुश-आसन बिछे हुए हैं, उस (अग्नि) के बल का भी अस्तित्व नहीं है ॥८॥

[अग्निहोत्र में कुश के साथ विद्युत्-रूप अग्नि भी विद्यमान रहती है।]

१५७२. पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥९॥

प्रकाशमान और तेजस्वी ... अग्निदेव के ... रक्षण साधनों से ... हैं, उनका दर्शन भी सूर्य दर्शन के समान कल्याणकारी है ॥९॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible] १५४५-१५४७, १५५३-१५५५ । विश्वामित्र गाथिन १५३८-१५४०, १५५६-१५५८ । विरूप आङ्गिरस १५५९-१५६१ । भर्ग प्रागाथ १५४२-१५४४, १५६२-१५६३ । त्रित आप्त्य १५३५-१५३७ । उशना काव्य १५४८-१५५२ । सुदीति पुरुमीढ आङ्गिरस १५६४-१५६५ । सोभरि काण्व १५६६-१५६७ । विश्वमना वैयश्व १५६८-१५६९ । प्रयोग भार्गव अथवा अग्नि पावक अथवा अग्नि गार्हपत्य अथवा सहस् पुत्र गृहपति-यविष्ठ अथवा अन्य कोई १५७०-१५७२ ।

देवता- अग्नि १५३५-१५७२ ।

छन्द- गायत्री १५३५-१५३७, १५३९-१५४१, १५४५-१५५८, १५६०-१५७२ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १५४२-१५४४, १५६२-१५६३ । त्रिष्टुप् १५४६-१५४८ । ककुभ प्रगाथ (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) १५६४-१५६५ । उष्णिक् १५६६-१५६७ । अनुष्टुप् [illegible] (अनुष्टुप् + गायत्री + गायत्री) १५६८-१५६९ । जगती १५७०-१५७१ ।

॥इति पञ्चदशोऽध्यायः॥

॥अथ षोडशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१५७३.अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सर्व प्रथम सोमपान के लिए, उपासक मनुष्य आपको वैदिक स्तोत्रों द्वारा आवाहन करते हैं। विवेक दृष्टि से युक्त ऋभुगण एवं रुद्र (मरुद्गण) भी आपकी ही स्तुति करते हैं ॥१॥

१५७४.अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२ ॥

ये इन्द्र देवता सोम का सेवन करके आनन्दित होकर, यजमान के बीज और यश को बढ़ाते हैं, अतएव स्तोतागण आज भी इन्द्रदेव की महिमा का वर्णन करते हैं ॥२॥

१५७५. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥३ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! स्तोतागण आपकी अर्चना करते हैं, यज्ञ-मार्ग-ज्ञाता आपका गुणगान करते हैं। (हम भी) अन्न प्राप्ति हेतु मन से आपकी स्तुति करते हैं ॥३॥

१५७६. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥४ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आप शत्रुओं के नब्बे (सैकड़ों) नगरों को एक बार के आक्रमण से, एक ही समय में ध्वस्त कर देते हैं ॥४॥

१५७७.इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥५ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! होतादि ऋत्विग्गण यज्ञ के मार्ग से (अनुसरण करते हुए) आपके उस पवित्र पथ से उपस्थित होते हैं ॥५॥

१५७८.इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! आपके पास बल और अन्न (पोषक पदार्थ) संयुक्तरूप से रहते हैं। आपका बल शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला है ॥६॥

१५७९.शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥७ ॥

हे शक्तिमान् इन्द्रदेव ! सभी संरक्षणकारी शक्तियों से युक्त होकर, आप सामर्थ्य-सम्पन्न एवं सर्वथा सक्षम हैं। हे बलवान् इन्द्रदेव ! सत्ययुक्त, ओजस्विन्, श्रीमान् की तरह हम आपके ही अनुगामी हैं ॥७॥

१५८०. पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप, अश्वादि पशुधन का पोषण करने वाले हैं। जिस प्रकार स्वर्ण मुद्राओं से पूरित पात्र प्रकाशमान हैं, वैसे ही आप ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। हे इन्द्रदेव ! आपके अनुदानों को विनष्ट करने की सामर्थ्य किसी में नहीं, अतः हमें वांछित फलों से परिपूर्ण करें ॥८॥

१५८१. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आप धन-सम्पदा प्रदान करने हेतु पधारें, याजकों को ऐश्वर्ययुक्त करें एवं हमारी गौओं और अश्वादि सम्बन्धी कामनाओं की पूर्ति करें ॥९॥

१५८२. त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आप हविदाता को, सैकड़ों हजारों गौओं के समूह देने की सामर्थ्य से युक्त हैं। आप शत्रुओं के नगरों को विनष्ट करने में समर्थ हैं। अपनी रक्षा के निमित्त स्तवन करने वाले, ज्ञानवान् व्यक्तियों से युक्त हम आपको बुलाते हैं ॥१०॥

१५८३. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥११॥

जो अग्निदेव देवशक्तियों को बुलाने वाले और आनन्द प्रदान करने वाले हैं, वे याजकों को सभी प्रकार की (भौतिक एवं आध्यात्मिक) विभूतियाँ देते हैं। हे अग्निदेव ! आपको हमारा स्तुतिगान और मधुरिमा युक्त किया गया सोमरस प्राप्त हो ॥११॥

१५८४. अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥१२॥

हे मनोहारी प्रजापालक अग्निदेव ! श्रेष्ठ दानदाता और देव पद के आकांक्षी याजकों द्वारा, रथ में जोते गये अश्वों के समान उत्साहवर्द्धन हेतु, स्तोत्रों के समान ही आपकी स्तुति की जाती है। आप याजकों के पुत्र-पौत्रादि को (सुरक्षा) सम्पदाओं से (ऐश्वर्य) धन प्रदान करें ॥१२॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः॥

१५८५. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥१॥

हे वरुणदेव ! आप हमारी प्रार्थना (स्तुतियों) पर ध्यान दें, हमें सुखी बनाएँ। अपनी रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१॥

१५८६. कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

हे अभीष्ट वर्षणशील इन्द्रदेव ! आपके किस साधन से रक्षा करते हुए हमें आनन्दित करते हैं? कौन सी संरक्षण सामर्थ्य से आप स्तोताओं को अभीप्सित (श्रेष्ठ) अन्न प्रदान करते हैं? ॥२॥

१५८७. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥३॥

यज्ञ के निमित्त, यज्ञ आरंभ होने पर तथा यज्ञ समाप्त करने के समय हम इन्द्रदेव का ही आवाहन करते हैं। साथ ही युद्ध में (शत्रु) [illegible] (विजय की कामना से) [illegible] करते हैं ॥३॥

१५८८. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥४॥

इन्द्रदेव ने अपने बल की सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी को विस्तृत किया, सूर्यदेव को प्रकाशित किया। सभी लोकों को आश्रय प्रदान किया- ऐसे इन्द्रदेव के लिए ही यह सोमरस समर्पित है ॥४॥

१५८९. विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वा३ स्वा हि ते।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥५॥

हे कर्मसाधक इन्द्र ! आहुति द्वारा वृद्धि को प्राप्त स्वयं आप ही [illegible] यज्ञ के निमित्त स्वयं को [illegible] करें। यह विरोधी दूसरे व्यक्ति [illegible] मोहित हों। यहाँ (यज्ञस्थल में) वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव तथा सभी ज्ञानीजन हमारे सहायक रहें ॥५॥

१५९०. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिरृक्वभिः ॥६॥

दिव्य सोम हरित वर्ण के प्रकाश से चमकते हुए मित्र रश्मियों से [illegible] को नष्ट करने के समान बैरियों का संहार करता है। [illegible] हरितवर्ण सोम आलोकित होता है तथा छलनी के ऊपर इसकी धारा भी प्रकाशित होती है। हे सोमदेव! आप सात मुख वाली तेजरश्मियों द्वारा सभी तेजयुक्त पदार्थों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं ॥६॥

१५९१. प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते
दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥७॥

दर्शनीय सोमदेव जब पूर्व दिशा में गमन करते हैं, तब दिव्य और दर्शनीय [illegible] रश्मियों के प्रकाश से और अधिक तेजस्वी दिखाई देता है। [illegible] इन्द्रदेव तक पहुँचाते हैं, जिससे [illegible] विजय के लिए उन्हें प्रसन्न करते हैं और वे (उसके प्रभाव से) [illegible] प्राप्त करते हैं। हे सोम और इन्द्रदेव ! [illegible] संग्राम की स्थिति में युद्ध में पराजित नहीं होते ॥७॥

१५९२.त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि
स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥८॥

हे सोमदेव ! आपने पणियों से धन-सम्पदा उपलब्ध की। यज्ञ के आश्रयभूत जल से यज्ञस्थल में भली प्रकार आप शोभित होते हैं। ... के समान (स्तोत्रगान) से गूँजने वाले ... सुनाई पड़ते हैं। तीनों स्थानों (द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) पर दैदीप्यमान हे सोमदेव ! आप याजकों को सुनिश्चित रूप से (पोषक) अन्न प्रदान करते हैं ॥८॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः॥

१५९३.उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ॥१॥

हे पूषा देवता ! आप गाय, घोड़े, अन्न तथा पुत्र आदि प्रदान करने वाली हमारी बुद्धि को संरक्षण के उपयुक्त बनाएँ ॥१॥

१५९४.शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
विदा कामस्य वेनतः ॥२॥

हे सत्यबल सम्पन्न मरुद्‌गणो ! स्तुति करने वाले (श्रम से) पसीने से भीगे हुए याजकों को आप अभीष्ट फल प्रदान करें ॥२॥

१५९५.उप व सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥३॥

जो अमर प्रजापति के पुत्र (मरुद्‌गण) हैं, वे हमारी स्तुतियाँ सुनें और हमें सुख प्रदान करें ॥३॥

१५९६.प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥४॥

हे पवित्र एवं तेजस्वी अन्तरिक्ष-पृथ्वीलोको ! स्तुति के लिए आपके निकट आकर, आप दोनों के लिए पर्याप्त मात्रा में स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥४॥

१५९७.पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥५॥

हे दोनों देवियो ! अपनी अतुलित शक्ति से आप द्युलोक और पृथ्वीलोक, इन दोनों को पवित्र करती हुई प्रदीप्त होती हैं और सदैव यज्ञ का निर्वाह करने वाली हैं ॥५॥

१५९८.मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं नि षेदथुः ॥६॥

हे व्यापक आकाश और भूदेवियो ! आप अपने उत्तम स्वभाव से यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करती हैं। यज्ञ की पूर्णता के लिए संरक्षण देती हुई यज्ञ को सफलतापूर्वक सम्पन्न करती हैं ॥६॥

१५९९.अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! कबूतर द्वारा कबूतरी को प्रेमपूर्वक प्राप्त होने की तरह याजक आपकी निकटता की आशा करते हैं इसलिए हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं को आप ध्यानपूर्वक सुनते हैं ॥७॥

१६००.स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥८॥

हे धनाधिपति, स्तुत्य, वीर इन्द्रदेव ! [illegible] और सत्य [illegible] वाले स्तोत्र आपके विषय में सत्य सिद्ध हों ॥८॥

१६०१.ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥९॥

हे सैकड़ों कर्मों को सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! संघर्षों (जीवन-संग्राम) में हमारे संरक्षण के लिए आप प्रयत्नशील रहें। हम आपके अन्य कार्यों के विषय में भी परस्पर विचार-विनिमय करते रहें ॥९॥

१६०२.गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥१०॥

हे गौओ ! (सूर्य रश्मियों अथवा पृथ्वी) [illegible] पर आप [illegible] हैं, शब्द करें। आप ही महान् यज्ञ का [illegible] करने वाली हैं। आपके (पृथ्वी) दोनों ही कान (छोर) सोने के (स्वर्ण सम्पत्तियों) आभूषणों से शोभायमान हैं ॥१०॥

[इसका विशेष [illegible] मंत्र संख्या १६७ में देखें]

१६०३.अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु।
अवतस्य विसर्जने ॥११॥

[illegible] अवतं यज्ञ के समीप [illegible], [illegible] मधुर सोमरस को [illegible] (महान् [illegible] इन्द्र) के [illegible] के अवसर पर [illegible] में स्थापित करते हैं ॥११॥

१६०४.सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।
नीचीनबारमक्षितम् ॥१२॥

[illegible] (अंतरिक्ष में) स्थित है। [illegible] के नीचे झुकता हुआ जिसका [illegible] हुआ क्षीण नहीं है, उस महान् को नमन करते हुए [illegible] करते हैं ॥१२॥

[[illegible] [illegible] में झुकता हुआ दिखता है, किन्तु [illegible] [illegible] नहीं है। उस महान् [illegible] [illegible] के प्रति [illegible] रखते हुए [illegible] [illegible] का [illegible] करते हैं।]

॥इति तृतीयः खण्डः॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१६०५.मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! महावीर, ऐसे आपकी मित्रता से युक्त हम किसी से भयभीत न हों, न थकें। बलशाली की कामना पूर्ति के साधन आपके कर्म प्रशंसनीय हैं। हम तुर्वश और यदु को सम्पन्नता की स्थिति में देखें ॥१ ॥

१६०६.सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२ ॥

हे शक्तिमान् देव ! आप अपने बायें कूल्हे (कटिभाग) के सहारे आश्रय देते हैं। यह मद करने वाले अन्न आपको कष्ट देने में सक्षम नहीं है। शहद की तरह मधुर दूध (मधुरता) से युक्त गौओं के समान सुख देने वाले हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्रता से समीप आकर यज्ञवेदी में पधारें और सोमपान करें ॥२ ॥

१६०७.इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥३ ॥

हे वैभववाली इन्द्रदेव ! हमारी जो ये प्रार्थनाएँ हैं, वे आपकी कीर्ति बढ़ायें। अग्नि के समान तेजस्वी शुद्ध, श्रेष्ठ ज्ञानी स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

१६०८.अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥४ ॥

ये इन्द्रदेव हजारों ऋषियों के बल को धारण करते हुए हैं, समुद्र की तरह विस्तृत हैं, इनकी सत्यनिष्ठा और शक्ति प्रसिद्ध है, यज्ञों में और ब्राह्मणों के शासन में इन्हीं के स्तुतिगान होते हैं ॥४ ॥

१६०९.यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥५ ॥

सोमाभिलाषी तथा श्रेष्ठ गुणों से युक्त ये इन्द्रदेव सेवक की तरह जिस धननिधि की रक्षा करते हैं, ऐसा यह अर्य (स्वामित्व) रुशम (तेजस्वी शक्ति) और पवि (वज्र) से युक्त होकर भी हे इन्द्रदेव ! आपके लिए ही आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥५ ॥

१६१०.तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥६ ॥

शीघ्रता से यज्ञ करने वाले ऋत्विज् मधु और घी की आहुतियों से पूजनीय इन्द्रदेव की ही अर्चना करते हैं। हमारा हविरूपी धन, सोम प्रदान करने वाला बल तथा हमारे द्वारा सिद्ध सोम इन्द्रदेव को प्राप्त करें ॥६ ॥

१६११.गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारे लिए गौ और अश्वों से युक्त धन दें। हे श्रेष्ठ शक्ति सम्पन्न सोमदेव ! रस निचोड़ने के उपरान्त गौ-दुग्ध के साथ मिलकर आप पवित्रता को धारण करें ॥७ ॥

१५१२. स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥८॥

हे हरिद्वर्ण अश्वों के स्वामी सोमदेव! देवशक्तियों के पूजक, मनुष्यों के हितकारी आप हमारे भी देवशक्तियों में अवस्थित रहें। जिस प्रकार एक मित्र दूसरे मित्र के प्रति अपना सहयोग के लिए तत्पर रहता है, ऐसा ही व्यवहार आप हमसे भी करें ॥८॥

१५१३. सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥९॥

हे सोमदेव! आप शक्तिपराक्रम से अर्जित धनों को हमारे लिए प्रदान करें। हे शत्रुनाशक सोमदेव! आप दुष्कर्मरत रिपुओं का संहार करें तथा दुहरे व्यवहार वाले दुष्टों को समाप्त करें एवं दिव्य गुणों से रहित स्वार्थी शत्रुओं का भी संहार करें ॥९॥

१५१४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१०॥

ऋत्विज् सोम रस को दूध के साथ अनेक श्रेष्ठ विधियों से मिश्रित करते हुए मधुर सोमरस का पान करते हैं। जैसे दूध के साथ मिश्रित होने वाले, जल के उच्च भाग से गिरने वाले एवं पतनशील पर्जन्य में समर्थ सोम को स्वर्ण (सदृश) शुद्ध जल से शुद्ध करके पुनः जल में मिश्रित करते हैं ॥१०॥

१५१५. विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥११॥

हे ऋत्विजो! श्रेष्ठ विवेकशील और शुद्ध सोमरस की स्तुति करो, वह सोमरस महाधारा के समान वेग से अन्न (पोषण) प्रदान करता है। सर्पतुल्य वह अपनी पुरानी त्वचा (आवरण) का त्याग करता है। शक्तिमान् और हरित वर्ण का सोमरस घोड़े की तरह खेल करता हुआ कलशपात्र में स्थापित होता है ॥११॥

१५१६. अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥१२॥

अग्रगामी राजा सोम, जल में मिश्रित होता हुआ प्रशंसित होता है। वह दिवस का मापक (निर्माण करने वाला) सोम जल में स्थापित है। हरित् वर्ण के जल मिश्रित, सुन्दर, दर्शनीय और जल में निवास करने वाला, ज्योतिरूप रथ वाला सोम धन-धान्य प्रदान करता है ॥१२॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- मेधातिथि काण्व १५७३-१५७४, १५७७-१५८८, १६०७-१६०८ । विश्वामित्र गाथिन १५७५-१५७६ । भर्ग प्रागाथ १५७९-१५८१ । सोभरि काण्व १५८२-१५८४ । शुनःशेप आजीगर्ति १५८५, १५९१, १५०१ । सुकक्ष आङ्गिरस १५८६ । विश्वकर्मा भौवन १५८९ । अवत्सार काश्यप १५९०-१५९२ । भरद्वाज बार्हस्पत्य १५९३ । गोतम राहूगण १५९४ । अग्निः पावक १५९५ । वामदेव गौतम १५९६-१५९८ । [illegible] १६०३-१६०४ । [illegible] १६०५-१६०६ । [illegible] १६०९-१६१० । [illegible] १६११-१६१२ । [illegible] १६१३-१६१६ ।

देवता- इन्द्र १५७३-१५७४, १५७७-१५८२, १५८६-१५८८, १५९३-१६०१, १६०५-१६१० । इन्द्राग्नी १५७५-१५७६ । अग्नि १५८३-१५८४ । [illegible] १५८५ । विश्वकर्मा १५८९ । [illegible] १५९०-१५९२, १६११-१६१३ । [illegible] १५९४ । [illegible] १५९५ । [illegible] १५९६ । [illegible] १५९७-१५९८ । [illegible] १६०३-१६०४ ।

छन्द- [illegible] १५८३-१५८४, १५८५-१५८८, १५८९-१५९८, १६०५-१६१० । गायत्री १५७३, १५७४, १५७५-१५७६, १५९३-१६०४ । त्रिष्टुप् १५८९ । [illegible] १५९०-१५९२ । [illegible] १६११-१६१३ । [illegible] १६१४-१६१६ ।

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥

॥अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१६१७. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१॥

हे बल के पुत्र ! (अग्ने) अग्नियों के साथ आप हमारे यज्ञ में पधारें और स्तुतियों को सुनते हुए हमें अन्न (भोज्य) प्रदान करें ॥१॥

१६१८. यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥२॥

हे अग्निदेव ! इन्द्र, वरुण आदि अन्य देवताओं के लिए प्रतिदिन विस्तृत आहुति अर्पित करने पर भी सभी हव्य आपको ही प्राप्त होते हैं ॥२॥

१६१९. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥

प्रजापालक, यज्ञ (पूर्ण करने वाले) साधक, हर्ष प्रदायक, वरण करने योग्य अग्निदेव आप हमें प्रिय हों, तथा श्रेष्ठ विधि से अग्नि के रक्षक हम, ऐसे अग्निदेव के प्रिय हों ॥३॥

१६२०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥४॥

हे ऋत्विजो ! सभी लोगों में उत्तम इन्द्रदेव को, आप सब के कल्याण के लिए हम आमन्त्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥४॥

१६२१. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥५॥

इच्छित फलदायक हे दानदाता इन्द्रदेव ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न (हव्य) को ग्रहण करें और हमारी कामनाओं का प्रतिकार न करें, अपितु सहायता भी करें ॥५॥

१६२२. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥६॥

सबके स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करने वाले, शक्तिमान् इन्द्रदेव, अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनुग्रह बाँटने के लिए मनुष्यों के पास उसी प्रकार जाते हैं जैसे बैल गौओं के समूह में जाता है ॥६॥

१६२३. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप विलक्षण रक्षण-साधन हैं, हमारी रक्षा करें और साथ ही जिस धन को आप रथ से ले जाते हैं, उस धन-सम्पदा से हमें युक्त करें । हमारे सन्तति श्रेष्ठ नीतियों से युक्त हों ॥७॥

१६२४. पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥८॥

हे अग्निदेव ! ... शक्ति से युक्त और ... न होने वाले आप अपने संरक्षण के साधनों से हमारे पुत्र-पौत्रों का पालन करें । ऐसे उपायों से हमें बचाएँ, मनुष्य-सम्बन्धी वृत्तियों से भी आप हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

१६२५. किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥९ ॥

"रश्मियों से युक्त मैं (उदित) हूँ" — इस प्रकार कहे जाने वाले आपका स्वरूप विशेष प्रख्यात है । ऐसे स्वरूप को हम से छिपाएँ न रखें, क्योंकि संग्राम में तो अन्य रूप धारण करते हुए (विष्णुरूप) भी आप हमारे संरक्षक रहते हैं ॥९ ॥

१६२६. प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥१० ॥

हे तेजस्वी विष्णो ! आपके पूज्य नाम वाले स्वरूप की, ज्ञान-सम्पन्न हम स्तुति करते हैं । अत्यधिक बलशाली ... (...), से दूर रहने वाले इस जगत् के ... के रूप में आपकी स्तुति (प्रशंसा) करते हैं ॥१० ॥

१६२७. वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११ ॥

हे विष्णो ! आप के निमित्त हम वषट्कारपूर्वक आहुति अर्पित करते हैं । हे ... देव ! आप हमारी आहुति को ग्रहण करें । श्रेष्ठ स्तुतियों से युक्त हमारी वाणियाँ आपकी महिमा को बढ़ाएँ । आप सभी कल्याणकारी साधनों सहित सदा हमारे संरक्षक सिद्ध हों ॥११ ॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥द्वितीयः खण्डः ॥

१६२८. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१ ॥

हे वायो ! दिव्य यज्ञ में हम आपके लिए सर्वोत्तम सोमरस भेंट करते हैं । हे देव ! आदर के योग्य आप नियुत (वाहक) घोड़े से सोमपान के निमित्त पधारें ॥१ ॥

१६२९. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२ ॥

हे वायु और इन्द्रदेव ! आप दोनों सोमपान की पात्रता से युक्त हैं, क्योंकि नीचे की ओर जलधारा के समान ही आप दोनों तक सोमरस का प्रवाह पहुँचता है ॥२ ॥

१६३०. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३ ॥

हे वायु और इन्द्रदेव ! आप दोनों धन के स्वामी और सामर्थ्यवान् हो । निचुड़ नामक घोड़े से युक्त आप दोनों ही हमारी रक्षा के लिए सोमरूप धन हेतु एक साथ पधारें ॥३॥

१६६१. अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥४॥

रात्रि काल में जलमिश्रित परिष्कृत हुए हे सोमदेव ! आप पौष्टिक पदार्थों को देते हैं । याजकों की अँगुलियाँ हरित वर्ण के सोम को कलश जाने की ओर प्रेरित करती हैं ॥४॥

१६६२. तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥५॥

परिष्कृत सोमरस आनन्ददायक है, इन्द्रदेव के पीने योग्य है । जिसे याजक पहले से पान करते रहे हैं और आज भी पीते हैं । (गायों से निकले) ऐसे देवत्वरूपी सोम को गौएं अन्नरूप में ग्रहण कर जाती हैं ॥५॥

१६६३. तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥६॥

पवित्र सोमरस की सनातन स्तुतियों से याजक लोग स्तुति करते हैं, यज्ञ कर्म के लिए प्रेरित अँगुलियाँ देवताओं के निमित्त सोम को हविरूप में प्रदान करती हैं ॥६॥

१६६४. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥

हे यज्ञेश अग्निदेव ! आपके लिए हम आवश्यक हवि प्रदान करके वन्दना करते हैं जिस प्रकार श्रेष्ठ घोड़ों के अवयवों को स्वच्छ करते हैं ॥७॥

१६६५. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥८॥

इन अग्निदेव की हम अनेक विधि से उपासना करते हैं । बल से सम्पन्न, शीघ्र गतिशील अग्निदेव हमें अभीष्ट सुख प्रदान करें ॥८॥

१६६६. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥९॥

हे अग्निदेव ! सब शत्रुओं के विनाशक आप दूर से और निकट से, अनिष्ट चिन्तकों से सदैव हमारी रक्षा करें ॥९॥

१६६७. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्राम में शक्तिमानों को तथा शत्रुओं को पराजित करते हैं । हे शीघ्र विजयी संहारक इन्द्रदेव ! आप निन्दितनाशक, सुखोत्पादक और शत्रुनाशक तथा हिंसकवीरों को दूर भगाने वाले हैं ॥१०॥

१६६८. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माता-पिता अपने शिशु की रक्षा में तत्पर रहते हैं, आकाश और पृथ्वी उसी प्रकार शत्रुसंहारक आपके बल के अनुगामी होते हैं । हे इन्द्रदेव ! जब आप वृत्रासुर का वध करते हैं, तब आप के क्रोध के समक्ष युद्ध के लिए तत्पर सभी शत्रुदल वाले कमजोर पड़ जाते हैं ॥९॥

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१६३९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥१॥

अन्तरिक्ष में मेघों को बरसने के लिए प्रेरित कर, भूमि की पोषणशक्ति को बढ़ाने वाले इन्द्रदेव की सामर्थ्य को यज्ञ (यज्ञकर्म) ने बढ़ाया । (विशेषरूप से बढ़ाया) ॥१॥

१६४०. व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥२॥

सोमपान से बलवान् हुए इन्द्रदेव अन्तरिक्षस्थ मंडल को विशेष दीप्ति प्रदान करते हैं तथा बादलों को छिन्न-भिन्न करते हैं ॥२॥

१६४१. उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥

इन्द्र (सूर्य) देव ने गुफा में छिपी (अवरुद्ध) किरणों (गौओं) को बाहर कर उन्हें देवशक्तियों (अंगिराओं) तक पहुँचाया । उन्हें रोककर रखने वाला असुर (बल) मुख नीचे करके पलायन कर गया ॥३॥

[यहाँ गौओं के संदर्भ में भौतिकता असम्भव सिद्ध होता है, तथा किरणों के संदर्भ में वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रतिपादन है]

१६४२. त्वमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥४॥

अनेक शत्रुओं का एक साथ संहार करने वाले तथा सभी स्तुतियों में प्रशंसित ऐसे इन्द्रदेव का अपनी रक्षा के निमित्त हम आवाहन करते हैं ॥४॥

१६४३. युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥५॥

युद्ध करते हुए भी कभी पराजित न होने वाले, शत्रुओं पर भारी पड़ने वाले और सोमरस का पान करने वाले जिनका निश्चय अपरिवर्तनीय है, ऐसे उन इन्द्रदेव का सहयोग पाने के लिए हम आवाहन करते हैं ॥५॥

१६४४. शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥६॥

हे दर्शन करने योग्य सर्वज्ञ इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए प्रचुर धन प्रदान करें । शत्रुओं के पास से भी जीत कर लाये धन को हमारे संरक्षण के निमित्त प्रदान करें ॥६॥

१६४५. तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी तीक्ष्ण बुद्धि, आपके वीर्य, सामर्थ्य, कुशलता, साहस और श्रेष्ठ वज्र को तेजस्वी बनाती है ॥७॥

१६४६. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष में आपकी शक्ति-सामर्थ्य का और पृथ्वी में आपके यशस्वी स्वरूप का विस्तार होता है। जलप्रवाह और पर्वत आपके पास आपको अपना अधिपति मानकर पहुँचते हैं ॥८ ॥

१६४७. त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! महान् आश्रयदाता मानकर के विष्णु, मित्र और वरुणादि देवता आपका स्तुतिगान करते हैं। मरुद्गणों के बल से आप हर्षित होते हैं ॥९ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१६४८. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! बल के निमित्त साधक आपको नमन कर के स्तुतिगान करते हैं। अपने सामर्थ्य से सभी शत्रुओं का संहार करें ॥१ ॥

१६४९. कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! गौओं की इच्छा करने वाले आप हमारे लिए प्रचुर धन प्रदान करें। महानता के पोषक आप से हम महानता की कामना करते हैं ॥२ ॥

१६५०. मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा। संवर्गं सं रयिं जय ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! युद्ध में आप हम से विमुख न हों, जिस प्रकार भारवाहक भार को उठा लेता है, उसी प्रकार शत्रु से छीनी हुई संग्रहित सम्पदा को लाकर हमें प्रदान करें ॥३ ॥

१६५१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥४ ॥

सभी मनुष्य इन्द्रदेव के क्रोध के समक्ष वैसे ही झुकते हैं, जैसे समुद्र की ओर नदियाँ स्वतः झुकती चली जाती हैं ॥४ ॥

१६५२. वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
वज्रेण शतपर्वणा ॥५ ॥

संसार को भयभीत करने वाले (कम्पित करने वाले) वृत्रासुर के शीश को शक्तिसम्पन्न इन्द्रदेव ने अपने सौ धारों वाले वज्र से अलग कर दिया (काट डाला) ॥५ ॥

१६५३. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥६ ॥

जिस शक्ति-सामर्थ्य से इन्द्रदेव दोनों द्युलोक और भूलोक को चमड़े (चर्म) की तरह धारण करके अपने अधीन करते हैं, ऐसी उनकी सामर्थ्य प्रकाशित है ॥६ ॥

१६५७. सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपके मनस्वी अश्व उत्तम ज्ञान-युक्त और ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। उषा के समान रमणीय और सौन्दर्यशाली भी हैं ॥७॥

१६५८. सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ॥८॥

सुन्दर रूपवाले हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ कल्याणकारी रथ में जोतने वाले दोनों अश्वों के साथ हमारे यज्ञ में पधारें । आपके ये दोनों अश्व आपकी श्रेष्ठ सेवा करते हैं ॥८॥

१६५९. नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥९॥

हे मनुष्यो ! जैसे हाथों से (दसों अँगुलियों से) आशीष प्रदान करते हुए इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में उपस्थित हैं । सिर झुकाकर उनके दर्शन करो ॥९॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- शुनःशेप आजीगर्ति १६१७-१६१९, १६४३-१६४५, १६५७-१६५९ । मधुच्छन्दा वैश्वामित्र १६२०-१६२२ । शंयु बार्हस्पत्य (तृणपाणि) १६२३-१६२४ । वसिष्ठ मैत्रावरुणि १६२५-१६२७ । वामदेव गौतम १६२८-१६३० । रेभसूनू काश्यपौ १६३१-१६३३ । पुरुहन्मा आङ्गिरस १६३४-१६३६ । गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन १६३७-१६३९ । कुत्स आङ्गिरस १६४०-१६४२ । त्रित आप्त्य १६४६-१६५० । वत्स काण्व १६५१-१६५६ ।

देवता- अग्नि १६१७-१६१९, १६२३-१६२४, १६४३-१६४५, १६५७-१६५९ । इन्द्र १६२०-१६२२, १६३४-१६३६, १६५१-१६५६ । विष्णु १६२५-१६२७ । वायु १६२८ । इन्द्रवायू १६२९-१६३० । पवमान सोम १६३१-१६३३ ।

छन्द- गायत्री १६१७-१६२२, १६४३-१६४५, १६५१-१६५६, १६५७-१६५९ । बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १६२३-१६२४, १६३४-१६३९ । त्रिष्टुप् १६२५, १६२७ । अनुष्टुप् १६२८-१६३३ । उष्णिक् १६४०-१६५०

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१६५७. पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥१ ॥

सोमरस को तैयार करने वाले हे याजको ! प्रशंसनीय और आनन्दप्रद और इन्द्रदेव के पान योग्य प्रशंसनीय सोमरस को शीघ्र भेंट करो। (सोम पीकर इन्द्र) अधिक साहस करने वाले हो जाते हैं ॥१॥

१६५८. एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२ ॥

मंत्रों को समझने वाले, आनन्दवर्द्धक इन्द्रदेव के दोनों घोड़े, मित्रता के सम्बन्ध, वाणियों द्वारा स्तुति योग्य इन्द्रदेव को यज्ञ में लेकर आएँ ॥२॥

१६५९. पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥३ ॥

सैकड़ों साधनों (हर प्रकार) से रक्षा करने वाले, वृत्रासुर का हनन करने वाले, सोमपायी हे इन्द्रदेव ! हमारे पास से आप अन्यत्र न जाएँ और शत्रुओं को हम से दूर करें ॥३॥

१६६०. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! समुद्र की ओर बहने वाली नदियों की तरह आपको सोमरस प्राप्त हो। अन्य कोई देव आप से महान नहीं है ॥४॥

१६६१. विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥५ ॥

हे शक्तिमान्, जागरणशील इन्द्रदेव ! आप सोमपान के लिए अपनी सामर्थ्य से सभी स्थानों में व्याप्त होते हैं। आपके द्वारा उदरस्थ सोम भी प्रशंसनीय है ॥५॥

१६६२. अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥६ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा प्रदत्त सोम आपके लिए पर्याप्त हो, आपके साथ-साथ (आपकी प्रेरणा से) सोमरस सभी देवताओं के लिए पर्याप्त हो ॥६॥

१६६३. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥७ ॥

स्तुतियों से प्रबोध हे अग्निदेव ! प्रत्येक मनुष्य के कल्याण के लिए आप यज्ञ मंडप में प्रकट हों। याजकगण रौद्र अग्निदेव के निमित्त सुन्दर स्तोत्रों को उच्चारित करें ॥७॥

१६६४. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥८॥

सर्वदर्शक धूम्र ध्वजा से युक्त, (उज्ज्वलित होने वाले) आनन्दप्रद, महान् अग्निदेव, हमें ज्ञान और वैभव की ओर प्रेरित करें ॥८॥

१६६५. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥९॥

विश्वपालक, अनेक तेजस्वी और महान् प्रकाश से युक्त, दूरदर्शी अग्निदेव । धन वैभवशाली राजा के समान हमारी उत्तम वाणियों को श्रवण करें ॥९॥

१६६६. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१०॥

हे स्तोताओ ! सोम रस संस्कारित करने के बाद, सर्वसंरक्षक और शक्तिमान् इन्द्रदेव के लिए संगठित होकर स्तोत्रों का गान करें । जैसे गौओं को घास सुखकर है, वैसे ही इन्द्रदेव को स्तोत्र सुखदायक हैं ॥१०॥

१६६७. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥११॥

गौओं के आश्रयदाता वे इन्द्रदेव, हमारी स्तुतियों को सुनने के बाद, हमें धन-धान्य के दान में अन्न वैभव देने से नहीं रुकते ॥११॥

१६६८. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥१२॥

दस्युनाशक इन्द्रदेव दुराचारियों द्वारा चुराई गई गौओं को छुड़ाकर उनके स्वामियों को देते हैं और हमें प्रदान करते हैं ॥१२॥

॥इति प्रथमः खण्डः ॥

* * *

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

१६६९. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥१॥

(वामनरूप में अवतरित हुए) विष्णुदेव ने अपनी शक्ति-सामर्थ्य के विस्तार के लिए अपने पैरों को तीन प्रकार से स्थापित किया, इन उनकी धूलयुक्त पद में समस्त विश्व समाहित हुआ ॥१॥

१६७०. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥

विश्वरक्षक, अविनाशी विष्णुदेव, तीनों लोकों में यज्ञादि कर्मों को पोषित करते हुए, तीन चरणों में जगत् में व्याप्त हैं । अर्थात् तीन शक्ति धाराओं द्वारा (सृजन, पोषण, परिवर्तन) विश्व का संचालन करते हैं ॥२॥

१६७१. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥

हे याजको ! सभी प्राणियों को जीवन एवं गति देने वाले, विष्णुदेव के कार्यों को देखो । वे इन्द्रदेव के उपयुक्त सहायक मित्र हैं ॥३ ॥

[विष्णुदेव की [illegible] कहा जाता है ।]

१६७२. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नेत्रों से आकाश में स्थित सूर्यदेव को सहजता से देखा जाता है, उसी प्रकार विद्वज्जन अपने ज्ञान चक्षुओं से विष्णुदेव के (विराट् के माध्यम से) श्रेष्ठ स्थान को देखते (ध्यान करते) हैं ॥४ ॥

१६७३. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५ ॥

जागरूक, स्तुति करने वाले विद्वान् [illegible] विष्णु के परम पद को उनके [illegible] (ज्ञान चक्षुओं से) प्रकाशित करते हैं ॥५ ॥

१६७४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥६ ॥

उन विष्णुरूप ईश्वर ने पृथ्वी के जिस सर्वोच्च स्थान से अपने पराक्रम को स्थापित किया है (अर्थात् सृष्टि का संचालन करते हैं), वैसे श्रेष्ठ लोक से सभी देवगण हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

१६७५. मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! दूर होते हुए भी आप हमारे यज्ञ में पधारें और हमारी [illegible] स्तुतियों को सुनें । [illegible] आपको हमसे दूर न करें ॥७ ॥

१६७६. इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी तृप्ति के लिए सोमरस तैयार करके, सभी ऋत्विज्, मधु पर बैठी हुई मक्खियों की भाँति एकत्रित होकर बैठते हैं । ऐश्वर्य की कामना से अपनी इच्छाओं को आप पर [illegible] स्थापित करते हैं, जिस प्रकार [illegible] रथ पर पैर रखता है ॥८ ॥

१६७७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९ ॥

स्तुति करने योग्य हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के लिए [illegible] स्तोत्रों का पाठ करो । पूर्व यज्ञ के बृहती-छन्द में गायन करो । इससे स्तोताओं की मेधा बुद्धि उत्पन्न होती है, अर्थात् बुद्धि परिष्कृत होती है ॥९ ॥

१६७८. समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१० ॥

[illegible], गौ-दुग्ध मिश्रित सोमरस इन्द्रदेव के लिए समर्पित है । यह (सोम) उनके आनन्द को बढ़ाने वाला हो । वे (सोमरस से तृप्त इन्द्र) हमें सूर्य और [illegible], भूमि एवं [illegible] वैभव प्रदान करें ॥१० ॥

१६७९. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥११॥

हे सोम ! वृत्र अर्थात् दुराचारियों का हनन करने वाले, दक्षिणा देने (लोकहित के लिए अपना अंश लगाने) वाले, पराक्रमी इन्द्रदेव की तृप्ति (पीने) के लिए तथा यज्ञस्थल में बैठे याजक के अभीष्ट लाभ के लिए आपको सुपात्र में सिंचित किया जाता है ॥११॥

१६८०. तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२॥

हे मित्रो ! तुम और हम सब याजकगण, दीप्तिमान्, तेजस्, सुगन्धि से युक्त, शक्ति-सामर्थ्य को बढ़ाने वाले सोमरस को ग्रहण करें ॥१२॥

१६८१. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥१३॥

देवताओं के आनन्द को बढ़ाने वाला, सुन्दर, दुःखनाशक और सबका पोषण करने वाला सोमरस छन्नी द्वारा पवित्रता प्राप्त करते हुए सिंचित होता है ॥१३॥

१६८२. कस्तमिन्द्र त्वावसो मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४॥

आपके आश्रय प्राप्त हे इन्द्रदेव ! आपका तिरस्कार कौन कर सकता है ? हे ऐश्वर्यशाली ! आपके प्रति श्रद्धा रखने वाले बलवान् याजक विजय के दिन आप से ही बल की सहायता प्राप्त करते हैं ॥१४॥

१६८३. मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हविष्यान्न समर्पित करने वाले याजकों को युद्ध-दुराचारियों से रक्षा की शक्ति प्रदान करें । हे अश्वपति ! आपकी प्रेरणा से ज्ञानीजन पापों से छुटकारा पायें ॥१५॥

॥ इति द्वितीयःखण्डः ॥

॥तृतीयः खण्डः ॥

१६८४. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥१॥

हे याजको ! मधुर सुखकारक सोमरस को इन्द्रदेव की तृप्ति हेतु प्रस्तुत करें । सामर्थ्यवान्, शक्तिसम्पन्न इन्द्रदेव ही स्तुतियोग्य हैं ॥१॥

१६८५. इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥२॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! आपकी अति प्राचीन स्तुतियों को अपनी सामर्थ्य एवं तेजस्विता से अन्य कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं । अर्थात् आपके समान बलवान् एवं तेजस्वी कोई दूसरा नहीं ॥२॥

१६८६. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥

ऐश्वर्य की कामना से हम याजक उस बलशाली इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, जो अनश्वर, सत्कर्मों के यज्ञों (सत्कर्मों) से वृद्धि को (महिमा को) प्राप्त करते हैं ॥३॥

१६८७. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥४॥

हे स्तुति करने वालो ! देवगण के प्रतिनिधि, ऐसे यज्ञ की पूजा करो, जिसको स्वर्गप्रदाता दिव्य विभूतियों को ग्रहण करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हव्यादि पदार्थों को देवताओं तक ले जाने के माध्यम हैं ॥४॥

१६८८. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥५॥

हे विद्वान् सोभरे ! प्रचुर वैभव प्रदान करने वाले, अति तेजस्वी, इस श्रेष्ठ ज्ञानयज्ञ के नियामक, चिरन्तन अग्निदेव की, यज्ञ की सफलता हेतु स्तवन करो ॥५॥

१६८९. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥६॥

हे सोमदेव ! पत्थरों की सहायता से तैयार किये गये, शोधक छन्ना पवित्र को लाँघकर आप कलश में उसी प्रकार स्थिर हो रहे हैं जैसे कोई शूरवीर बन्धुओं के साथ नगर में प्रवेश करता है ॥६॥

१६९०. स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिरृक्वभिः ॥७॥

बलवर्द्धक, पवित्र सोम, अश्व के समान बलशाली द्रुत गति से छन्ने से छनता हुआ, विद्वानों की स्तुतियों से प्रशंसित होता हुआ, सोमरस पवित्रता को प्राप्त हो रहा है ॥७॥

१६९१. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥८॥

हम इस वज्रधारी से युक्त इन्द्रदेव को पहले भी सोमरस का पान कराते रहे हैं । इस यज्ञ में इन्द्रदेव के लिए आज भी सोमरस अर्पित करो । स्तोत्रगान श्रवण हेतु निश्चित ही वे यहाँ पधारें । (उपस्थित हों) ॥८॥

१६९२. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥९॥

भेड़िया के समान क्रूर शत्रु भी इन्द्रदेव के सामने अनुकूल हो जाते हैं । ऐसे वे (इन्द्र) हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए, हमें उत्कृष्ट विलक्षण विवेक बुद्धि प्रदान करें ॥९॥

१६९३. इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१०॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! शत्रुओं से आक्रान्त अन्न संग्रामों में सफल होने पर शोभायमान होते हैं । यह आपके वीर्य की पहचान है ॥१०॥

१६९४. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥११॥

उपासकगण का अवलम्बन लेकर, साधना की सिद्धि के निमित्त को फलीभूत करते हैं ॥११॥

१६९५. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥१२॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आप दोनों की शक्तियाँ और स्तुतियाँ [illegible] करती हैं । आप अविलम्ब कार्य सम्पन्न करने में समर्थ हैं ॥१२॥

१६९६. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१३॥

यज्ञ में सबके साथ बैठकर सोमरस पीने वाले इन्द्रदेव को एवं उनकी आयु को भला कौन जान सकता है ? फिर वह कैसा अन्न धारण करते ? सोमपान से आनन्दित हे इन्द्रदेव ! शत्रु के नगरों को अपने पराक्रम से ध्वस्त करते हैं ॥१३॥

१६९७. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥१४॥

अपने ओज से विचरण करने वाले, उत्कृष्ट वीर, सम्माननीय हे इन्द्रदेव ! इस सोमयज्ञ में पधारें । शत्रु को क्रोध से कुचलने वाले मतवाले हाथी के समान, आपको रथ लेकर यज्ञ में आने से कोई रोक नहीं सकता ॥१४॥

१६९८. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥१५॥

जो इन्द्र में सुसज्जित युद्ध भूमि में स्थिर रहने वाले हैं, ऐसे अपराजेय, पराक्रमी, ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनकर दूसरी जगह न जाकर इस यज्ञ में ही उपस्थित होंगे ॥१५॥

॥इति तृतीयः खण्डः॥

॥चतुर्थः खण्डः॥

१६९९. पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

शुद्ध ज्योतिर्मय पवित्रता को प्राप्त होने वाला सोमरस, देवताओं की स्तुतियों के साथ याजकों द्वारा शोधित किया जाता है ॥१॥

१७००. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥

संस्कारित होने वाला दिव्य सोम अन्तरिक्ष से धरती के ऊँचे भाग पर्वत शिखरों में अवतरित होता है ॥२॥

१७०१. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

पवित्रता को प्राप्त होने वाला, उज्ज्वल सोमरस, रिपुओं का दमन करते हुए तीव्र गति से कलश में स्थित हो रहा है ॥३॥

१७०२. तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥

दुष्ट-दुराचारियों, शत्रुओं का हनन कर, संग्राम युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, अपराजेय, याजकों को प्रचुर वैभव प्रदान करने वाले, इन्द्र और अग्निदेव का हम वन्दन करते हैं ॥४॥

१७०३. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५॥

हे इन्द्र और अग्निदेव ! वैदिक मन्त्रों का पाठ करने वाले एवं सामगान करने वाले साधकगण आपकी अर्चना करते हैं । हम भी अन्न-धान्य की कामना से आपकी स्तुति करते हैं ॥५॥

१७०४. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६॥

हे इन्द्राग्नि ! दस्युओं द्वारा संरक्षित नब्बे नगरियों को एक आक्रमण से सभी को एक साथ कम्पायमान कर देने वाले आपका हम आवाहन करते हैं ॥६॥

१७०५. उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥७॥

बल द्वारा (मंथन से) प्रकट होने वाले, दीप्तिमान् हे अग्निदेव ! हम याजकगण अन्न-धान्य एवं आपका सान्निध्य प्राप्त करने की कामना से वन्दना करते हैं ॥७॥

१७०६. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥८॥

स्वर्ण सदृश कान्तिमान्, हे अग्निदेव ! धूप में तपने वाले शीतलता की तरह हम आपके संरक्षण में रहकर सुख प्राप्त करें ॥८॥

१७०७. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥९॥

बैल के सींग की शक्ति रखने वाले उग्रतायुक्त वीर धनुर्धर के समान पराक्रमी हे अग्निदेव ! आपने दुष्टों के आश्रय स्थलों को नष्ट किया है ॥९॥

१७०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥१०॥

हे अग्निदेव ! यज्ञीय कर्मों से युक्त, मनुष्यों के लिए कल्याणकारी, अपनी तेजस्विता से यज्ञों की रक्षा करने वाले, कान्तिमान आपकी हम उपासना करते हैं ॥१०॥

१७०९. य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतूनुत्सृजते वशी ॥११॥

जो अग्निदेव संसार के कल्याण के लिए यज्ञ में उपस्थित अवयवों को बढ़ाते हैं, स्वयं को अपने वश में रखने वाले तथा समस्त ऋतुओं के बनाने वाले हैं, वही हमको (अन्न आदि) विस्तार देने वाले हैं ॥११॥

१७१०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥१२॥

भूत और भविष्य में जन्म लेने वाले जिसकी कामना करते हैं, ऐसे एकमात्र सर्वाधिपति अग्निदेव अपने प्रिय यज्ञस्थलों में विराजमान हैं ॥१२॥

॥इति चतुर्थः खण्डः ॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- [illegible] और [illegible] आङ्गिरस १६५८-१६६१ । [illegible] आङ्गिरस १६६०-१६६२ । [illegible] काण्व [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] (आनुकृत्य) [illegible] । [illegible] और [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

देवता- [illegible] । अग्नि [illegible] । विष्णु [illegible] । [illegible] । इन्द्राग्नी [illegible] ।

छन्द- गायत्री [illegible] । [illegible] (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) [illegible] । बृहती [illegible] ।

॥इति अष्टादशोऽध्याय: ॥

॥अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१५११. अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां३ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१ ॥

अपने तेजस्वी रूप से सुशोभित होने वाले मेधावी अग्निदेव को पुरातन स्तोत्रों से ऋत्विजों द्वारा प्रज्वलित किया जाता है ॥१ ॥

१५१२. ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥२ ॥

ऊर्जा को नीचे न गिरने देने वाले, पवित्र बनाने वाले दीप्तिमान् अग्निदेव का इस उत्तम यज्ञ में हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

१५१३. स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३ ॥

हे पूज्य मित्र रूप अग्निदेव ! आप शुभ्र ज्वालाओं और तेज से पूर्ण होकर (कुशासन पर) देवों के साथ इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों ॥३ ॥

१५१४. उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥४ ॥

हे पत्थरों से कूटे शुद्ध सोम ! आपकी ऊर्जा बल शक्तियों से राक्षसों का विनाश होता है । आप हमसे स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को दूर करें ॥४ ॥

१५१५. अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से शत्रु के विध्वंसक हैं । रथों के युद्ध में शत्रुओं का ध्वंस होने पर, हम निर्भय अन्तःकरण से धन प्राप्ति के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१५१६. अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥६ ॥

इस पवमान सोम के व्रतों से दुष्ट व्यक्ति की उपस्थिति नहीं हो सकती । हे सोमदेव ! आपके विरुद्ध युद्धाभिलाषी शत्रुओं का आप विनाश करें ॥६ ॥

१५१७. तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥७ ॥

आनन्द रस बहाने वाले, बल और हर्षवर्धक इस हरिताभ सोम को, नदियों (जल) के माध्यम से इन्द्रदेव के लिए प्रेरित करते हैं ॥७ ॥

१५१८. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आनन्ददायक, मोर पंखों के समान बालों वाले घोड़ों (किरणों) सहित आप यज्ञ में पधारें । शिकारी की तरह जाल से पाश फैलाने वाले आपको रोक न पायें, उन्हें रेगिस्तान (शुष्क भूमि) की तरह छोड़कर आयें ॥८ ॥

१७१९. वृषखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥९॥

हे इन्द्रदेव! वृत्रासुर (आवरणकर्ता) का हनन करने वाले, बादलों के जल को विदीर्ण करने वाले, उनके नगरों का ध्वंस करने वाले, जल वृष्टि करने वाले, घोड़ों से संचालित रथ में विराजमान होकर बलशाली शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं ॥९॥

१७२०. गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥१०॥

हे इन्द्रदेव! गंभीर समुद्र को जल धाराओं से पुष्ट करने के समान आप याजक को इष्ट फल देकर पुष्ट करते हैं। जिस प्रकार उत्तम गोपालक अपनी गौओं को उत्तम घास आदि देकर पुष्ट करता है, जैसे नदियाँ प्रवाहित होती हैं, नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार सोम आपको पुष्ट करता है ॥१०॥

१७२१. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥११॥

जैसे प्यासा हिरन पानी से भरे जलाशय की ओर जाता है, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव! आप मित्र के समान शीघ्र हमारे पास आएँ और मेधावी पुरुषों के मध्य में बैठकर सोमपान करें ॥११॥

१७२२. मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥१२॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! सोमयज्ञ कर्त्ताओं को वैभव प्रदान करने के लिए सोमरस आपको आनन्दित करें। पात्र में रखे अभिषुत सोमरस को पीकर आप श्रेष्ठ बल से युक्त होते हैं ॥१२॥

१७२३. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः । ॥१३॥

हे शक्तिशाली तेजस्वी इन्द्रदेव! आप मनुष्यों के प्रशंसक हैं। हे धनवान इन्द्रदेव! आपके समान सुख देने वाला कोई और नहीं है, अतः हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१३॥

१७२४. मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥१४॥

हे निवास के आश्रय इन्द्रदेव! आपके द्वारा प्रदत्त धन, साधन हमारे लिए विनाशकारी न बनें। रक्षा के निमित्त आपकी दी गई शक्तियाँ विनाश न करें। हे मानव हितैषी इन्द्रदेव! हम याजक मनुष्यों को आप सब प्रकार की सम्पत्ति (लौकिक एवं दैवी) प्रदान करें ॥१४॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

॥द्वितीयः खण्डः॥

१७२५. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥

सब प्राणियों की प्रेरक, कल्याणकारी, अपनी बहिन के तुल्य रात्रि के अन्त में प्रकाश फैलाने वाली सूर्य पुत्री उषा को सब देखते हैं ॥१॥

१७२६. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥

चपला (बिजली) के समान, अद्भुत दीप्तिमान् किरणों की माता, यज्ञ आरम्भ करने वाली उषा अश्विनी कुमारों की मित्र है ॥२॥

[अश्विनी कुमार रोगों का शमन करते हैं, उषा इस कार्य में सहायक है ।]

१७२७. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

आप अश्विनीकुमारों की मित्र हैं और दीप्तिमान् रश्मियों की उत्पादक हैं इसलिये हे उषे ! आप स्तुति के योग्य हैं ॥३॥

१७२८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४॥

यह प्रिय अपूर्व उषा आकाश के तम का नाश करती है । हे अश्विनीकुमारो ! हम महान् स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥४॥

१७२९. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥५॥

ये अश्विनीकुमार शत्रुओं के नाशक, नदियों के उत्पत्तिकर्ता, विवेकपूर्वक कर्म करने वालों को सम्पत्ति देने वाले हैं ॥५॥

१७३०. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब आपका रथ पक्षियों की तरह आकाश में पहुँचता है, तब प्रशंसनीय स्वर्ग लोक में भी आपके लिए स्तोत्रों का पाठ किया जाता है ॥६॥

१७३१. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥७॥

हे हवियों को धारण करने वाली उषे ! हमें वह विलक्षण ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे हम सन्तानादि का पोषण कर सकें ॥७॥

१७३२. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥८॥

गौओं और अश्वों से युक्त, यज्ञ कर्मों की प्रेरक हे उषे ! आप आज हमें धन-धान्य से युक्त करें ॥८॥

१७३३. युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।

अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥९॥

हे हवियों को धारण करने वाली उषे ! आप अरुणाभ अश्वों (किरणों) को अपने रथ में युक्त करें और हमें विश्व के सब सौभाग्य प्रदान करें ॥९॥

१७३४. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१०॥

हे अश्विनीकुमारो ! शत्रुनाशक आप, गौओं और स्वर्णमय रथ को मनोयोगपूर्वक हमारी ओर प्रेरित करें ॥१०॥

१७३५. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥११॥

उषा के साथ जाग्रत् किरणें (अश्व) स्वर्णिम प्रकाश से विचरते दुःखनाशक एवं सुखदायी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ में सोमपान के लिए लाएँ ॥११॥

१७५६. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप द्युलोक से उत्तम योग्य प्रकाश समस्त लोगों का हित करते हैं, ऐसे आप हमें बल से युक्त करें ॥९॥

॥इति द्वितीयः खण्डः॥

* * *

॥तृतीयः खण्डः ॥

१७५७. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

हम अग्निदेव का हम स्तवन करते हैं जो सर्वव्यापक हैं । जिनके आश्रय में घोड़े जाते हैं, जिनके आश्रय में गौएं जाती हैं । नित्यकर्म करने वाले, हविदाता यजमान भी उन्हीं के आश्रय में हैं, ऐसे आप, इन स्तोताओं को प्रचुर अन्न दें ॥१॥

१७५८. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

वे अग्निदेव निरन्तर ही यजमान को अन्न देने वाले, पुत्र और धन की वृद्धि करने वाले हैं । वे प्रसन्न होकर यज्ञ में सबको ऐश्वर्य प्रदान करने में किंचित मात्र संकोच नहीं करते । हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं को पर्याप्त भोजन दें ॥२॥

१७५९. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

वे अग्निदेव सर्वव्यापक हैं, जिनके आश्रय में गौएं जाती हैं, द्रुतगामी अश्व और उत्तम, कुलीन विद्वान् जाते हैं- ऐसे वे अग्निदेव स्तुत्य हैं । हे अग्निदेव ! इन स्तोताओं को यथेष्ट अन्न दें ॥३॥

१७६०. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

हे कुलकल्याणि उषे ! पूर्व की भाँति आज हमें ज्ञानयुक्त बनाएँ, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करें । हे श्रेष्ठ कुल वाली सत्य यशस्विनी ! वय्य के पुत्र सत्यश्रवा (सच्ची कीर्ति वाले) को आप अपनी कृपा का पात्र बनाएँ ॥४॥

१७६१. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥

हे द्युलोक (आदित्य) की पुत्री उषे ! आप शुचद्रथ के पुत्र सुनीथ के लिए अन्धकार को दूर करके प्रकाशित (प्रकट) हुईं । ऐसी आप, वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह (प्रकाश) वृष्टि करें ॥५॥

१७६२. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

हे आदित्य पुत्रि उषे ! आप हमें प्रचुर धन दें और आप हमारे अन्धकार को मिटावें । हे यशस्विनी, [illegible] धनवती, सत्यवचिनी उषे ! [illegible] ॥६॥

१७४३. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।

स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके [illegible] रथ को ऋषि स्तोत्र [illegible] स्तुतियों द्वारा सुशोभित करते हैं । इसलिए हे मधुविद्या के ज्ञाता ! आप हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥७॥

१७४४. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।

दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! [illegible] हमारे निकट आएँ । हम [illegible] शत्रुओं पर विजय पाने में सफल हों । हे [illegible] स्वर्णिम रथ वाले, [illegible] नदियों को [illegible], मधुर विद्यायुक्त ! आप हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥८॥

१७४५. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।

रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! [illegible] हमारे यज्ञ में आकर उपस्थित हों । हे मधुर विद्यावान् ! आप हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥९॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१७४६. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।

यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥

याजकों की समिधा से प्रज्वलित अग्नि, [illegible] के समान चैतन्य होते हैं । उषाकाल में प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला [illegible] फैलती हुई [illegible] के समान आकाश में फैलती है ॥१॥

१७४७. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।

समिद्धस्य रुशदर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

यज्ञ के आधार अग्निदेव यजन करने के निमित्त [illegible] होते हैं । वे अग्निदेव [illegible] से ऊर्ध्वगामी होते हैं । इनका तेजस्वी रूप [illegible] है । वह महान् देव, [illegible] को [illegible] मुक्ति देते हैं ॥२॥

१७४८. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।

आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

जब वे अग्निदेव [illegible] अन्धकार को हर लेते हैं, तो शुभ किरणों से तेजस्वी बने अग्निदेव जगत् को प्रकाशित कर देते हैं । [illegible] के लिए [illegible] युक्त होती है, वे अग्निदेव [illegible] में गिरने वाली घृतधारा का पान करते हैं ॥३॥

१७४९. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥४॥

सब दीप्तिमान् पदार्थों में यह उषा सर्वाधिक तेजयुक्त है । इसका विलक्षण प्रकाश चारों ओर व्यापक होकर सब पदार्थों को प्रकाशित कर देता है । सूर्य के द्वारा (के बाद) से उत्पन्न हुई रात्रि, इस उषा के उदय के लिए अपने स्थान से स्थान देती है (रात्रि के पूर्णरूपेण समाप्त होने के पूर्व उषाकाल आ जाता है) ॥४॥

१७५०. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥५॥

उज्ज्वल प्रकाश वाली उषा सूर्यरूप पुत्र को लेकर प्रकट हुई है और रात्रि अपने स्थान को गई । उषा और रात्रि दोनों सूर्य के साथ समान सखा भाव से युक्त हैं । दोनों अविनाशी और क्रमशः एक के पीछे एक आकाश में विचरती हैं तथा एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट करने वाली हैं ॥५॥

१७५१. समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥६॥

रात्रि और उषा दोनों का बहिनों जैसा एक ही मार्ग है और वह अन्तहीन है । उस मार्ग से होकर उषा और रात्रि क्रमशः एक के पीछे एक चलती हैं । उत्तम रूपों वाली ये एक दूसरे के विपरीत रूप वाली होते हुए भी एक मनोवृत्ति की हैं । ये न कभी परस्पर विरुद्ध होतीं, न ही रुकती हैं, अपितु अपने-अपने कार्यों में दोनों निरत रहती हैं ॥६॥

१७५२. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥७॥

उषा के मुखरूप यह अग्निदेव दीप्तिमान् हो गये हैं (उषाकाल में अग्नि होत्र प्रारंभ हो गया है) । दिव्य स्तुतियाँ आरंभ हो गई हैं । हे रथ में स्थित अश्विनीकुमारो ! हमें दर्शन देकर यज्ञ में पीने योग्य सोम के समीप उपस्थित होने की कृपा करें ॥७॥

१७५३. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप संस्कारित पदार्थों को कृपापूर्वक ग्रहण करें । इस यज्ञ में उपस्थित होने वाले, आपके निमित्त स्तुति की जाती है । दिन के आरंभ होते ही (उषाकाल में) रक्षा (पोषण) लेकर आते हुए, आप हविदाता (याजक) को सुख प्रदान करें ॥८॥

१७५४. उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन में गाय दुहने (गायों के चराने) के समय, प्रातः सूर्योदय के समय, मध्याह्नकाल में, दिन-रात्रि अर्थात् (सदा) सुखकारी, रक्षा करने के साधनों सहित आप पधारें, अभी सोम पान की क्रिया (अन्य देवों द्वारा भी) प्रारंभ नहीं हुई है (अतः आप शीघ्र पधारें) ॥९॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ ३ ॥

॥ पञ्चमः खण्डः ॥

१७५५. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

(किरण रूपी) ये उषाएँ प्रकाश करती हैं। (प्रातः समय) आकाश के पूर्वार्द्ध में प्रकाश किया जाता है। जैसे वीर शस्त्रों को तेज करते हैं (चमकाते हैं), उसी प्रकार अपने प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करती हुई ये गमनशील और तेजस्वी उषाएँ प्रतिदिन उदित होती हैं ॥१॥

[किरण रूप के प्रकार को एकत्र, विशेष, तेजस्, [illegible] आदि कई रूपों में कहा जाता है। यहाँ उसे [illegible] (सोम आदि) से विभक्त किया गया है।]

१७५६. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

(प्रकाशक ये) अरुणवर्ण किरणें स्वाभाविक रूप से (सर्वत्र फैलती) उदय हो रही हैं। स्वयं जुते हुए गौओं (किरणों) के रथ से उषा ने पहले ज्ञान का (विस्तार का) भोजन किया, फिर प्रकाशमान तेजस्वी सूर्यदेव की सेवा (आश्रय) करने लगीं ॥२॥

[यहाँ प्रकाशमान का तात्पर्य (पहले हुआ) अग्निरूप, पूर्व उजाला, उषाकिरणों में विभक्त तथा सूर्योदय [illegible] आदि से संकेत है।]

१७५७. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

(नारियाँ) जैसे कर्म और श्रेष्ठ प्रयोजन हेतु दान देने वाले सोमयज्ञ को सम्पादित करने वाले यजमान को अपनी किरणों (के प्रभाव) से प्रचुर मात्रा में अन्नादि देती हुई (उषा) आकाश को तेज से परिपूर्ण करती हैं। [illegible] से शस्त्रों से सज्जित वीर के तुल्य इस आकाश को सुन्दर दीप्तिमान् बना देती हैं ॥३॥

१७५८. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥४॥

(अग्न्याधानी) वेदिका में प्रदीप्त हुए ये अग्नि (एवं सूर्य) देव प्रकाश करते हैं। महान् (प्रकाशवाली) उषा अपने तेज से लोगों को हर्षित करती हुई आती है। हे अश्विनीकुमारो! आप यज्ञ में उपस्थित होने के लिए अपने अश्वों को रथ में जोड़कर प्रस्थान करें। जगत् के प्रकाशक सूर्यदेव सब प्राणियों को अपने पृथक्-पृथक् कर्मों में प्रेरित कर रहे हैं ॥४॥

१७५९. यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो! आप अपने श्रेष्ठ रथ को जोड़कर (यज्ञ में पहुँचकर) हमारे क्षत्रियों को घृत (तेज) से पुष्ट करें। हमारी प्रजाओं में ज्ञान की वृद्धि करें, जिससे हम युद्ध में शत्रुओं को पराजित करके धन प्राप्त करने में समर्थ हो सकें ॥५॥

१७६०. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! एक मत निश्चयित होकर आप यहाँ पधारें। तीन पहियों वाला और मधुर, अमृत को धारण करने वाला, सौभाग्यशाली, अश्वों से युक्त हुआ, प्रकाशवान्, तीन बैठने के स्थानों वाला, समस्त ऐश्वर्य और सौभाग्य से भरा हुआ रथ हमारे मनुष्यों और पशुओं के लिए सुख आदि की परिस्थितियाँ देकर आए ॥६॥

१७८१. प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥७॥

हे सोमदेव ! आपकी अविरल धाराएँ प्रचुर अन्नादि देने वाली हैं, जैसे आकाश से वृष्टि होती है, वैसे ही आपकी धाराएँ पृथ्वी पर (वैभव तथा) अन्न की वृष्टि करती हैं ॥७॥

१७८२. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥८॥

सब प्रिय कर्मों पर दृष्टि रखने वाला हरितवर्ण सोम शत्रुओं पर आयुधों का प्रहार करता हुआ (हमें प्राप्त करने के) आगे बढ़ता जाता है ॥८॥

१७८३. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥९॥

सब नियम उत्तम कर्मों को सम्पन्न करने वाला सोम, ऋत्विजों द्वारा संस्कारित होता हुआ, राजा के समान निर्भीक और तेजस्वी दिखाई देता है और श्येन पक्षी के समान वेगपूर्वक जल में मिलाया जाता है ॥९॥

१७८४. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥१०॥

हे सोमदेव ! पवित्र होने वाले आप द्युलोक और पृथ्वीलोक में सम्मान रखते हुए, हमें सब प्रकार की सम्पदाएँ प्रदान करें ॥१०॥

॥इति पञ्चमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- विरूप आङ्गिरस [illegible] । अवत्सार काश्यप [illegible] । विश्वामित्र गाथिन [illegible] । देवातिथि काण्व [illegible] । गोतम राहूगण [illegible] । वामदेव गौतम [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] आत्रेय [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । बुध- गविष्ठिर आत्रेय [illegible] । कुत्स आङ्गिरस [illegible] । अत्रि भौम [illegible] । [illegible] [illegible] ।

देवता- अग्नि [illegible] । पवमान सोम [illegible] । इन्द्र [illegible] । उषा [illegible] । अश्विनीकुमार [illegible] ।

छन्द- गायत्री [illegible] । त्रिष्टुप् [illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] । पंक्ति [illegible] । जगती [illegible] ।

॥इति एकोनविंशोऽध्यायः॥

॥अथ विंशोऽध्यायः ॥

॥प्रथमः खण्डः ॥

१७६५. प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

बलवान सोम की, बल बढ़ाने वाली तथा देवों पर अपना अनुकूल प्रभाव डालने वाली, सोमरस की धाराएँ रस पूर्वक (कलश) पात्र में एकत्र होने लग गई हैं ॥१॥

१७६६. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

तेजोमय, स्तुत्य, घोड़े के समान वेगवान् (दिव्य) सोम को मेधावान् याज्ञिकगण अपनी वाणीरूप स्तुतियों द्वारा शुद्ध करते रहे हैं ॥२॥

[इस श्लोक के शब्दों में अभिप्रेरित संगति का संकेत किया जा सकता है।]

१७६७. सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥

हे सर्वाभिभावकर्ता और स्तुत्य सोमदेव! पवित्र होने वाले आप अपने अनुसार (प्रकाश) में रक्षा करने वाले हैं। समुद्र के समान (आप अपने दिव्य रसों से) इस यज्ञ को पूर्ण करें ॥३॥

१७६८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥४॥

ऋतु के अनुकूल यज्ञीय कार्यों से वृद्धि को प्राप्त हुए इन्द्रदेव के नाम से जो प्रसिद्ध हैं, उन तेजस्वी इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥४॥

१७६९. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥५॥

प्रजा लोग जिस प्रकार सामर्थ्यवान् पुरुष के पास (संरक्षण की इच्छा से) जाते हैं। हे बलशाली इन्द्रदेव! हमारी स्तुतियाँ भी उसी प्रकार से आपके पास (अपना अनुग्रह पाने की इच्छा से) जाती हैं ॥५॥

१७७०. वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥६॥

जिस प्रकार जलधाराओं से अनेक अन्य छोटे मार्ग निकलते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव! याजकों के लिए विविध विध अनुदान उपलब्ध होते रहते हैं ॥६॥

१७७१. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव! अपनी रक्षा के लिए और सुख शांति के लिए अनेक श्रेष्ठ कर्म करने वाले, शत्रुनाशक, वीरों और सज्जनों के पालक, आपको जिस प्रकार लोग (सम्मानपूर्वक) रथ को आकर्षित करते हैं, उसी प्रकार आपकी आराधना करते हैं ॥७॥

१४७२. तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥८॥

महान् बलिष्ठ, बहुत से उत्तम कर्म करने वाले, पूज्य इन्द्रदेव ! आप सब प्रकार की महिमा से युक्त होकर संसार भर में संव्याप्त रहते हैं ॥८॥

१४७३. यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! (महान् शक्तिशाली) आपके हाथ, सर्वव्यापक, गतिशील, स्वर्णयुक्त (सोने की तरह देदीप्यमान) वज्र को धारण करने वाले हैं ॥९॥

१४७४. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥१०॥

जो अग्नि मनुष्यों द्वारा निर्मित यज्ञ-वेदियों को प्रदीप्त करती है । जो द्रुतगामी घोड़े और वायु के सदृश गति वाले तथा दूरदर्शी हैं । वे अनेक रूपों में (विद्युत्, प्रकाश, ऊर्जा आदि) सुशोभित अग्निदेव सूर्य के सदृश तेजोमय हैं ॥१०॥

१४७५. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥११॥

दो अरणियों से उत्पन्न हुए यह अग्नि (त्रि-रोचनानि) तीन स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) और सब लोकों को प्रकाशित करते हुए देवों को बुलाने वाली है । यह पूज्य अग्नि जल में (बडवाग्नि के रूप में) अथवा यज्ञशाला में यज्ञाग्नि के रूप में रहने वाली है ॥११॥

[त्रि-रोचनानि-भूलोक, अन्तरिक्ष, आकाश ।]

१४७६. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥१२॥

दो अरणियों से उत्पन्न हुए, अग्निदेवों का आवाहन करने (बुलाने) वाला, सब श्रेष्ठ धन और यशस्वी कर्मों का धारक है । यह अग्नि, अपने याजकों को उत्तम सन्तान प्रदान करने वाली है ॥१२॥

१४७७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥१३॥

हे अग्ने ! इन्द्रादि देवों को हव्य देने वाले श्रेष्ठ वाहन, अश्व के सदृश हवि को उनके पहुँचाने वाले, यज्ञ के समान कल्याणकारी और हृदय स्पर्शी आपको स्तोत्रों अथवा आहुतियों से और अधिक उन्नत करते हैं ॥१३॥

१४७८. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥१४॥

हे अग्निदेव ! कल्याणकारी, बलवर्धक, अभीष्ट प्रदान करने वाले और सत्यस्वरूप आप महान् यज्ञ के पूज्य आधारकर्ता हैं ॥१४॥

१४७९. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥१५॥

हे अग्निदेव ! सूर्य के समान तेजस्वी, तेजस्वरूप, आप हमारे पूज्य इन्द्रादि देवों के साथ हमको यहां (यज्ञ में) पधारें ॥१५॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

॥ द्वितीयः खण्डः ॥

१६८०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१॥

हे अविनाशी सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप देवी उषा के आगमन के लिए अनेक प्रकार की धन सम्पदा लेकर आएँ और प्रातःकाल में जाग्रत होने वाले देवों को भी यज्ञ में लाने की कृपा करें ॥१॥

१६८१. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप सेवा के योग्य देवों तक हवि पहुँचाने वाले दूत और यज्ञ में देवों को लाने वाले रथ के समान हैं । आप अश्विनीकुमारों और देवी उषा के साथ हमें श्रेष्ठ पराक्रमी एवं यशस्वी बनाएँ ॥२॥

१६८२. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३॥

अनेक महान् कार्य कर सकने में समर्थ, संग्राम में बहुत से शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ, तरुण व्यक्ति को भी वृद्धावस्था आ जाती है । हे मनुष्यो ! देवों के अधिपति इन्द्रदेव के महत्त्व से परिपूर्ण इस काव्य को देखो । वृद्धावस्था प्राप्त को मृत्यु प्राप्त है, यह सब (नित्य) इन्द्रदेव के विधानानुसार सम्पन्न हो जाता है ॥३॥

१६८३. शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥४॥

सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य, अरुणाभ पक्षी के समान महान्, पराक्रमी और सनातन गतिशील इन्द्र (सूर्य) देव जिसे कर्तव्य के रूप में निश्चित कर लेते हैं, वही करते हैं, व्यर्थ कुछ नहीं । अभीष्ट वैभव को अपने पराक्रम से अर्जित करके वे (सूर्य देवता) लोकवासियों को सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥४॥

१६८४. ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥५॥

वज्रधारी इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ मिलकर (वृष्टि आदि) महान् पौरुषयुक्त कर्म करते हैं । वृत्रादि (शत्रुओं के रूप में) शत्रुओं को मारने के लिए जल वृष्टि करते हैं । (शत्रुओं को मारने और वृष्टि-क्रिया आदि महान् कर्मों में) मरुद्गण इन्द्रदेव के सहायक सिद्ध होते हैं ॥५॥

१६८५. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥६॥

यह सोमरस मरुद्गणों के लिए निचोड़कर तैयार किया गया है । उसके समान ही तेजस्वी बने मरुत् तथा अश्विनीकुमार इस सोमरस को (प्रीतिपूर्वक) पीते हैं ॥६॥

१६८६. पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥७॥

मित्र, अर्यमा और वरुणदेव इस शोधित हुए, तीन स्थानों में रखे हुए (तीनों लोकों में व्याप्त) प्रशंसनीय सोमरस का पान करते हैं ॥७॥

१६८७. उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! इस निचोड़े हुए, शुद्ध किये गये तथा गाय के दूध से मिश्रित हुए सोमरस को आप आनन्दपूर्वक पीने की इच्छा उसी प्रकार करते हैं, जैसे हंस-गण उस प्राचीन अग्निहोत्र में स्तुति करने की इच्छा रखते हैं ॥८॥

१७८८. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।

महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥९॥

हे सूर्यदेव ! आप महान् हैं । हे आदित्यदेव ! आप सचमुच महान् हैं । हे स्तुति योग्य ! आपकी महिमा की सब स्तुति करते हैं । आपका व्यापक महत्त्व (प्रभाव) निश्चय ही आपको महान् सिद्ध कर देता है ॥९॥

१७८९. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।

मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥१०॥

हे सूर्यदेव ! आप अपने यश के कारण महान् हैं । देवों के बीच विशेष महत्त्व के कारण आप महान् हैं । आप तमिस्र (अन्धकार) रूपी असुरों का नाश करने वाले हैं, आप पुरोहित के समान देवों का नेतृत्व करने वाले हैं । आपका तेज अदम्य, सर्वव्यापी और अविनाशी है ॥१०॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

* * *

॥ तृतीयः खण्डः ॥

१७९०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥१॥

हे सोम के स्वामी इन्द्रदेव ! आप घोड़ों के द्वारा हमारे सोमयज्ञ में सोमपान के निमित्त आनन्दपूर्वक पधारें ॥१॥

१७९१. द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥२॥

शत्रुनाशक और सैकड़ों यज्ञकर्ता इन्द्रदेव, (शत्रुओं के नाश के साथ उग्र और आर्यों के रक्षक के रूप में) इन दो रूपों वाले हैं । वे हमारे द्वारा शुद्ध हुए सोम का पान करने घोड़ों से यहाँ आएँ ॥२॥

१७९२. त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३॥

हे वृत्र-हन्ता इन्द्रदेव ! सोम को पीने के अभिलाषी आप हमारे यज्ञ में अश्वों के माध्यम से सोमपान के निमित्त पधारें ॥३॥

१७९३. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥४॥

हे याजको ! अपने धन-वृद्धि के लिए महान् इन्द्रदेव को सोम अर्पित करो । इन्द्रदेव के निमित्त उत्तम स्तोत्रों का पाठ करो । हे प्रजापोषक इन्द्रदेव ! आप इन सभी प्रजाओं के समीप आएँ ॥४॥

१७९४. उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥५॥

अत्यन्त विख्यात एवं महान् इन्द्रदेव को ब्राह्मणगण उत्तम स्तुतियाँ और हविष्यान्न अर्पित करते हैं । धीर पुरुष उन इन्द्रदेव के व्रतों को मिटाते नहीं हैं ॥५॥

१७९५. इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।

हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥६॥

उनके रथ का हम इन्द्रदेव जिनके मन्यु (क्रोध) के भय (के आगे कोई टिक नहीं सकता) के प्रति की गयी स्तुतियाँ उनके शत्रु के पराभव का कारण बनती हैं। अतः हे स्तोताओ! अपने यजमानों को इन्द्रदेव की स्तुति की प्रेरणा दें ।।६ ॥

१७९६. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव! आपके समान धन के अधिपति हम भी बनें। हम स्तोताओं (आराधकों) को पोषण के योग्य धन देंगे। पापियों को (दुष्कर्म के लिए) धन नहीं देंगे। (अर्थात् धन की मर्यादा का पालन करेंगे) ।।७ ॥

१७९७. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥८ ॥

कहीं भी रहकर हम आपके यजन के लिए धन जुटाते हैं। हे इन्द्रदेव! हमारा तो आपके सिवाय और कोई भाई नहीं, कोई पिता तुल्य रक्षक भी नहीं है ।।८ ॥

१७९८. श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥९ ॥

हे सोमरस पीने वाले इन्द्रदेव! आप हमारे आवाहन पर ध्यान दें, अर्चना करने वाले ऋत्विजों की प्रार्थना सुनें। हमारी सेवाओं को अपने समान मित्र की सेवाएँ मानकर स्वयं ग्रहण करें ।।९ ॥

१७९९. न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव! आपके असाधारण बल को जानने वाले हम आपकी स्तुति को छोड़ नहीं सकते। यश को बढ़ाने वाले आपके नाम का पाठ हम करते हैं ।।१० ॥

१८००. भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥११ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव! मनुष्यों द्वारा आपके निमित्त सोम-यज्ञ होते रहे हैं। आपके निमित्त हवन भी सम्पादित होते हैं, अतः हमसे दूर वास कभी न करें ।।११ ॥

॥इति तृतीयः खण्डः ॥

* * *

॥चतुर्थः खण्डः ॥

१८०१. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१ ॥

हे स्तोताओ! इन इन्द्रदेव के रथ के सम्मुख रहने वाले बल की उपासना करो। शत्रु की सेना के आक्रमण पर यह लोकपालक और शत्रुनाशक इन्द्रदेव ही रक्षा के आधार हैं, यह निश्चित मानो। अन्य शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूटे, ऐसी कामना करें ।।१ ॥

१८०२. त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप नदियों के प्रवाहों में बाधक अवरोधों को तोड़ते हैं । मेघों को फोड़ते हैं । शत्रु विहीन हुए आप सब श्रेष्ठतम पदार्थों के पोषक हैं । हम आपको हविष्यान्न देकर हर्षित करते हैं । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूटे, ऐसी कामना है ॥२॥

१८०३. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु विनष्ट हो जाएँ । हे इन्द्रदेव ! हम पर घात करने वाले [illegible] को आप अपने शस्त्रों से मारते हैं । हमारी बुद्धि आपकी ओर प्रेरित हो । आपके धन आदि के दान हमें प्राप्त हों । हमारे शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूट जाए, ऐसी कामना है ॥३॥

१८०४. रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥४॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति करने वाला निश्चय ही धन प्राप्त करता है । आपका उपासक सदा ऐश्वर्यों से युक्त होता है ॥४॥

१८०५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप कर्मों से न बोल सकने वाले अज्ञानी के स्तुति वचन को भी जानते हैं तथा बोले जाने वाले स्तोत्र को भी जानते हैं और गेय 'गायत्र-साम' को भी जानते ही हैं ॥५॥

१८०६. मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! हिंसक शत्रुओं और [illegible] करने वालों के [illegible] पर आप हमें मत छोड़ें । अपने [illegible] से हमें [illegible] ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६॥

१८०७. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप घोड़ों से पहुँचकर कण्वपुत्र की स्तुतियों को ग्रहण करें । हे द्युलोक निवासी इन्द्रदेव ! हम आपके इस दिव्य शासन में सुखपूर्वक रहते हैं ॥७॥

१८०८. अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥८॥

भेड़िये के भय से काँपती हुई भेड़ के समान, पत्थरों की मार से कूटे जाने वाले सोम को [illegible] हैं । हे द्युलोक निवासी इन्द्रदेव ! हम आपके दिव्य शासन में सुख पूर्वक रहते हैं ॥८॥

१८०९. आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥९॥

हे इन्द्र ! इस यज्ञ में सोम कूटने का शब्द करते हुए पाषाण द्वारा आपको प्राप्त कराने वाला सोम रस है। हे सुशोभन निवासक इन्द्र ! हम आपके लिए प्रसन्न मन से [illegible] रहे हैं, आप उसे सोम को [illegible] ॥९॥

१६१०. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१०॥

हे सोम ! अत्यन्त मधुर रस से भरे हुए आप हर्ष उत्पन्न करते हुए इन्द्रदेव के निमित्त शोधित हों ॥१०॥

१६११. ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥११॥

यह मेधावर्द्धक सोम शोधित होकर वायु देवता के निमित्त प्रकट होता है ॥११॥

१६१२. असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥१२॥

यह सोमरस अन्न प्राप्ति के अभिलाषु याजकों द्वारा देवों के लिए तैयार किया जाता है। [illegible] करने के समान सोमरस को तैयार किया जाता है ॥१२॥

॥इति चतुर्थः खण्डः॥

* * *

॥पंचमः खण्डः॥

१६१३. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न
जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

सर्वज्ञाता, [illegible], [illegible], ज्ञानसम्पन्न, पुत्र, [illegible], दीप्तिमान, [illegible], घृत आदि के [illegible] अग्निदेव को हम यज्ञ सिद्ध करने वाला, देवों को बुलाने वाला मानते हैं ॥१॥

१६१४. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र
मन्मभिः। परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

हे ज्ञानी और तेजस्वी अग्निदेव ! हम यजमान श्रेष्ठ अंगिराओं के मननीय मंत्रों द्वारा यज्ञ में आपका आवाहन करते हैं। ये प्रजाएँ अपनी रक्षा के लिए [illegible] तेजस्वी सूर्यदेव के समान [illegible], बल वर्षक, [illegible] किरणों से युक्त अग्नि की रक्षा करती हैं ॥२॥

१६१५. स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।
निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

वह अग्नि तेजोमयी सामर्थ्य से [illegible] दीप्तिमान् [illegible] करने वाले [illegible] के समान द्रोहियों का नाश करने वाले हैं। जिनके [illegible] से बलवान् शत्रु भी पराजित हो जाते हैं एवं अनुशासन स्वीकार करते हैं। [illegible] वह अग्नि [illegible] शत्रुओं का भी [illegible] कर देते हैं ॥३॥

१६१६. अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।

बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥४॥

हे अग्निदेव! आपका हविष्यान्न प्रशंसनीय है। हे तेजस्वी अग्ने! आपकी ज्वालाएँ अति सुशोभित होती हैं। हे अति तेजस्वी ज्ञानी देव! आप अपनी सामर्थ्य से हविदाता को प्रशंसनीय अन्न देने वाले हैं ॥४॥

१८१७. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥५॥

हे अग्निदेव! पवित्र किरणों और निर्मल तेज से युक्त आप सूर्य के तुल्य उदित होते और बाद में पूर्ण तेजस्विता प्राप्त करते हैं। मातारूपी दो अरणियों से प्रकट होने पर आप यजमानों के समीप पहुँचकर उनके रक्षक होते हैं। हविष्यान्न से द्युलोक को और फिर वृष्टि से पृथ्वी को सुसम्पन्न बनाते हैं ॥५॥

१८१८. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥६॥

हे बलिष्ठ अग्निदेव! सर्वज्ञाता आप हमारी उत्तम स्तुतियों से हर्षित हों। हमारे यज्ञादि कर्मों द्वारा आप संतुष्ट हों। आश्चर्यजनक, विलक्षण रक्षा करने वाले यजमान श्रेष्ठ हविष्यान्न की आहुति आप में समर्पित करें ॥६॥

१८१९. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥७॥

हे अविनाशी अग्निदेव! आप अपने तेज से प्रदीप्त होकर हमारे धन में वृद्धि करें। आप हमारे यजन कर्म में अपने तेज से प्रदीप्त होकर हमारे धन में वृद्धि करें। आप हमारे याजक कर्म में अपने तेजस्वीरूप में सुशोभित होते हैं और हमारे यज्ञादि कर्मों का फल प्रदान करते हैं ॥७॥

१८२०. इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥८॥

यज्ञ संपादक प्रज्ञावान्, ज्ञानसम्पन्न, प्रचुर धन के स्वामी, अग्निदेव की हम आराधना करते हैं। आप हमें सेवनीय धन और सौभाग्ययुक्त प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥८॥

१८२१. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥९॥

यजमानगण यज्ञ के पालक, महान्, सर्वदर्शनीय अग्निदेव को सुख की आकांक्षा से अपने समक्ष स्थापित करते हैं। हमारी स्तुति श्रवण करने वाले, अति विख्यात, दिव्यगुण सम्पन्न हे अग्निदेव! यजमान दम्पती अपनी वाणी से आपकी स्तुति करते हैं ॥९॥

॥इति पंचमः खण्डः॥

॥षष्ठः खण्डः॥

१८२२. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥

हे अग्निदेव ! आपका जिसके साथ मैत्री भाव जुड़ता है, वह बलवान अन्न और सन्तानादि से युक्त, तेजस्वी कर्मों से युक्त होकर आपके संरक्षण में जीवन यापन करने वाला होता है ॥१॥

१८२३. तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२॥

हे सोम सिंचित अग्निदेव ! धूम्रवान, सिंचन करने वाले, ऋतु के अनुसार योग्य, प्रज्वलित तेजस्वी सोम आपके निमित्त प्राप्त किया जाता है। महान् उषाओं के प्रिय रूप आप रात्रि में अधिक प्रकाशित होते हैं ॥२॥

१८२४. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥३॥

ऋतु के अनुकूल उत्पन्न उन अग्निदेव (ऊर्जा) को ओषधियाँ गर्भ में धारण करती हैं। जल धाराएँ माता की तरह उसे पैदा करती हैं। वनस्पतियाँ और ओषधियाँ उसे गर्भ रूप में धारण करके प्रकट करती हैं ॥३॥

[यहाँ अग्नि के ऊर्जा रूप का वर्णन है।]

१८२५. अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥४॥

अग्नि इन्द्रदेव के निमित्त पवित्र होकर द्युलोक/आकाश में प्रकाशित होती है। उस अवस्था में वह रानी के तुल्य विशेष शोभायमान होती है ॥४॥

१८२६. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥५॥

जो जाग्रत् हैं उन्हीं से ऋचाएँ अपेक्षा रखती हैं। जाग्रत् को ही सामगान का लाभ मिलता है। जाग्रत् से ही सोम कहता है कि "मैं तुम्हारे मित्र भाव में ही रहता हूँ" ॥५॥

१८२७. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥६॥

अग्नि जाग्रत् रहते हैं, इसलिए वह ऋचाओं द्वारा चाही जाती है। अग्नि चैतन्य भाव है अतः साम उसका गान करते हैं। चैतन्य अग्नि से ही सोम कहता है— "मैं सदा आपके मित्र भाव में आश्रय स्थान प्राप्त करूँ" ॥६॥

१८२८. नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥७॥

(याजकगण) ने पूर्व ही प्रतिष्ठित देवों को हमारा नमन है। साथ (कालक्रम से) में मिलित देवों को हमारा नमन। अनेकों प्रकार की स्तुति रूप में वाणी को प्रयुक्त करें ॥७॥

१८२९. युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥८॥

असीम शक्ति से स्तुतियों को देवार्थ प्रयुक्त करते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती नामक छन्दों से युक्त वाणी का सहस्रों प्रकार से गायन करते हैं ॥८॥

१८३०. गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥९॥

गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती नामक छन्दों से युक्त मन्त्रों को अग्नि आदि देवों के उत्तम स्तोत्रों उच्चारणों में प्रयुक्त करते हैं ॥९॥

१८३१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१०॥

अग्नि ज्योति है, और ज्योति ही अग्नि है। इन्द्र ज्योति है, और ज्योति ही इन्द्र है। सूर्य ज्योति है, और ज्योति ही सूर्य है ॥१०॥

१८३२. पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥११॥

हे अग्ने! ऊर्जा रूप (बल रूप) में हमारे पास आएँ। अन्न और आयु प्रदान करने वाले हों। पापों से हमारी बार-बार रक्षा करें ॥११॥

१८३३. सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥१२॥

हे अग्ने! धन ऐश्वर्यों को साथ लेकर आएँ। दिव्य और सांसारिक ऐश्वर्यों के उपभोग में प्रेरित आनन्द धारा से हमें सिंचित करें ॥१२॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

* * *

॥ सप्तमः खण्डः ॥

१८३४. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥

हे इन्द्रदेव! आप धन के एकमात्र अधिपति हैं। यदि हम भी आपके समान ऐश्वर्यवान बनें, तो गौओं के प्रिय गौओं के साथ हमारे स्तोता होंगे। (फिर अभाव किस बात का रहता!) ॥१॥

१८३५. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव! यदि हम (गौओं के स्वामी) ऐश्वर्यवान बनें, तो अपने बुद्धिमान स्तोताओं को धन देने की इच्छा करें और उन्हें धन प्रदान भी करें ॥२॥

१८३६. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

हे इन्द्रदेव! आपकी स्तुतियाँ गौ रूप धारण करती हैं और सोम यज्ञ करने वाले यजमान को पोषित करती हुई उनकी इच्छित कामनाएँ (गौ-अश्व आदि) को उपलब्ध कराती हैं ॥३॥

१८३७. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥४॥

हे जल समूह! आप सुख के उत्पत्तिस्थान हैं। हमारे लिए बल, वैभव एवं दिव्य दृष्टि का ज्ञान प्रदान करने वाले बनें ॥४॥

१८३८. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥५॥

हे जल समूह! आपमें अत्यन्त सुखकारी रस रूप का हमें सेवन कराते हैं। जैसे माताएँ अपने दुग्ध रूप रस से पोषण देती हैं, वैसे ही हमें पोषित करें ॥५॥

१८३९. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥६॥

हे वात समूह ! जिस ऐश्वर्य (रोग निवारक शक्ति) को धारण करने की आप प्रेरणा देते हैं, शुभ नीति के साथ हम उसे प्राप्त करें ॥६॥

[प्रकृति मंत्र में वात चिकित्सा के मूल-संकेत विद्यमान हैं ।]

१८८०. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥७॥

हे वायुदेव ! आप हमारे हृदय को उल्लसित करते हुए, अपने औषधि रूपी (प्राण) प्रवाह से हमें दीर्घायु प्रदान करें ॥७॥

१८८१. उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥८॥

हे वायो ! आप हमारे पिता के तुल्य पालनकर्ता, भाई के तुल्य मित्र और मित्र के तुल्य हितकारी हैं । आप हमें जीवन पथ में समर्थ बनाएँ ॥८॥

१८८२. यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ॥९॥

हे वायो ! आपके घर गुहा रूप में जो अमृत तत्त्व (प्राण रूपी जीवन तत्त्व) स्थित है । दीर्घ एवं तेजस्वी जीवन के लिए वह हमें प्रदान करें ॥९॥

[वायु में निहित अमृत की धारणा वायु चिकित्सा की ओर संकेत है ।]

१८८३. अभि वायो विश्वरूपो जनित्रं हिरण्मयं बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१०॥

गरुड़ के तुल्य वेगवान्, शोभन रूपों में विद्यमान, उत्पत्ति स्थान को स्वर्णिम तेजस्विता से व्याप्त करने वाले अग्निदेव, ऋतु के अनुकूल सूर्यदेव के तेज को धारण कर, यज्ञकर्म सम्पादन करते हैं ॥१०॥

१८८४. अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥११॥

(अग्नि का) विश्वरूपी जो तेज वीर्य अर्थात् प्राण पर्जन्य के रूप में जल में आश्रित है, औषधि शक्ति के रूप में पृथ्वी पर विद्यमान है तथा दिव्य शक्ति प्रवाह के रूप में अनन्त अन्तरिक्ष में अपनी महिमा का विस्तार किये हुए है, वह वृष्टि की धारणा वाला (मेघ निर्माण) की व्यवस्था को सिद्ध करता है ॥११॥

१८८५. अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥१२॥

पृथ्वी और द्युलोकों के पालक, अन्न-दाता, सहस्रों को अन्न, वैभव प्रदान करने वाले अग्निदेव हैं असंख्य किरणों को विस्तारित कर सूर्यदेव के तेज को धारण करते हैं ॥१२॥

१८८६. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१३॥

हे वेन ! आपको मन को हृदय से कामना करते हुए साधक जब उत्तम देखते हैं, तब वरुण के दूत, यम के पोषक आधार, विश्व को नियामक तत्त्व, विद्युत् रूपी अग्नि के साथ अन्तरिक्ष में पाते हैं ॥१३॥

१८८७. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥१४॥

(सोम के रूप में) जल को धारण करने वाले वेन (देवता) उच्च अन्तरिक्ष में स्थित रहते हैं। वे अपने अद्भुत शस्त्रों (विद्युत् आदि) को धारण कर सुन्दर रूप में शोभायमान होते हैं। सूर्य की भाँति (सोम पर्जन्य के रूप में) जल की वर्षा करते हैं ॥८॥

१८३८. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥९॥

सोम-पर्जन्य रूपी जिस प्रकार एवं दृष्टि की तेजस्विता से युक्त, वेन देवता जब जल से परिपूरित मेघों के समीप पहुँचते हैं, तब तीसरे दिव्य लोक में सूर्य तेज से विद्युत् के रूप में चमकते हुए जल (सोम-पर्जन्य) की वर्षा करते हैं ॥९॥

॥इति सप्तमः खण्डः॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द-विवरण

ऋषि- नृमेध आङ्गिरस १७४५-१७४७, नृमेध अथवा यमदेव १७४८-१७५०। हिरण्यस्तूप आङ्गिरस १७५१-१७५३। दीर्घतमा औचथ्य १७५४-१७५६। वामदेव गौतम १७५७-१७५९। [illegible] १७६०-१७६२। बृहदुक्थ वामदेव्य १७६३-१७६४। बिन्दु अथवा पूतदक्ष आङ्गिरस १७६५-१७६७। जमदग्नि भार्गव १७६८-१७६९, १७७०-१७७२। नृमेध आङ्गिरस १७७३-१७७५। [illegible] वैश्वामित्र १७७६-१८००। सुतम्भर आत्रेय १८०१-१८०३। मेधातिथि काण्व १८०४-१८०६। नोधातिथि काण्व १८०७-१८०९। सत्यश्रवा [illegible] १८१३-१८१५। अग्नि पावक १८१६-१८१८। सोभरि काण्व १८२२, १८२३। [illegible] १८२४। अग्नि [illegible] १८२५। [illegible] १८२६-१८२७, १८२९-१८३१। [illegible] १८२८-१८३०। गोषूक्ति अश्वसूक्ति काण्वायन १८३१-१८३३। [illegible] अथवा त्रिशिरा त्वाष्ट्र १८३४-१८३६। [illegible] १८३७-१८३८। सूर्या १८३४-१८३५। वेन भार्गव १८३६-१८३८।

देवता- पवमान सोम १७४५-१७४७, १८१५-१८१७। इन्द्र १७४८-१७५०, १७८२-१७८४, १७९२-१८०२, १८०३-१८०५। अग्नि १७७०-१७८२, १८१४-१८२५, १८२८-१८३३, १८३७-१८३०। मरुद्गण १७८५-१७८७। सूर्य १७८८-१७९०। विश्वेदेवा १८०५-१८०७। आपः १८१०-१८१२। वायु १८३०-१८३२। वेन १८३६-१८३८।

छन्द- गायत्री १७४५-१७४७, १७५१-१७५३, १७६४-१७६७, १७९१-१७९३, १८०७-१८०९, १८१५, १८१८-१८२०। द्विपदा गायत्री १७६८-१७७०, १८१०-१८१२। अनुष्टुप् १७७१। विराट् १७७४-१७७६, १७८३-१७८६, १७९८-१८००। पङ्क्ति १७७७-१७७९। बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १७८०-१७८२, १७८८-१७९०, १७९४-१७९७। त्रिष्टुप् १८०२-१८०४, १८२१-१८२३, १८३६-१८३८। जगती १८०१-१८०३। उष्णिक् १८१३-१८१५। विराट् पंक्ति १८१६-१८१७। सतोबृहती १८१८-१८२०। ज्योतिर्ज्योति १८२१। ककुप् प्रगाथ (विषमा ककुप्, समासतो बृहती) १८२२-१८२४। जगती १८२५।

॥इति विंशोऽध्यायः॥

॥अथ एकविंशोऽध्यायः॥

१८४९. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

स्फूर्तिमान्, तिक्ष्णतायुक्त, वृषभ की तरह शत्रु को भय देने वाले, दुष्टों के नाशक, वीरों को बढ़ाने वाले, [illegible] करने वालों को क्षुब्ध करने वाले, आलस्य-हीन और इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं को जीतकर वश लेते हैं ॥१॥

१८५०. सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

हे योद्धाओ ! शत्रुओं को रुलाने वाले, आलस्य रहित, विजयी, निपुण, अविचल, बलशाली इन्द्रदेव की सहायता से युद्ध जीतकर शत्रुओं को भगाओ ॥२॥

१८५१. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

वे इन्द्रदेव बाण और तलवार धारी योद्धाओं के सहयोग से शत्रुओं को वश में रखते हैं। वे युद्ध में अति कुशल, विजेता, सोम पीने वाले, बाहु-बल सम्पन्न, धनुर्धारी, शत्रु-संहारक हैं ॥३॥

१८५२. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥

हे सर्व-पालक इन्द्रदेव ! राक्षसों को मारते हुए, शत्रुओं को बाधायें देकर, उनकी सेना का नाश करते हुए, रथ के द्वारा आयें। युद्ध में विजयी होकर हमारे रथों की रक्षा करते हुए आगे बढ़ें ॥४॥

१८५३. बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल के ज्ञाता, उत्तम वीर, शत्रु के आक्रमण को सहने वाले, बलवान्, शत्रु-विजेता, [illegible], शक्तिशाली होकर ही उत्पन्न होने वाले, गो-पालक, आप विजयी रथ में प्रतिष्ठित हों ॥५॥

१८५४. गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६॥

हे योद्धाओ ! शत्रु के किलों के भेदक, गो-पालक, वज्र जैसी भुजा वाले, बल से शत्रु का विनाश करने वाले, विजेता इन्द्र के नेतृत्व में रहकर पराक्रम दिखाओ । हे मित्रो ! इन्द्र के कार्य करने पर आप भी युद्ध का कार्य करें।

१८५५. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

बल से शत्रु किलों को भेदने वाले, पराक्रमी, शत्रु पर दया न करने वाले, वीर, अनीति के प्रति क्रोध करने वाले, अविचल, शत्रु-विजेता, अद्वितीय योद्धा, ऐसे इन्द्रदेव हमारी सेना का संरक्षण करें ॥७॥

१८५६. इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥

हमारी सेनाओं के नेतृत्वकर्ता इन्द्रदेव हों । बृहस्पतिदेव उनके आगे चलें । दक्षिणा, यज्ञ एवं सोमदेव भी आगे चलें । शत्रु-नाशक मरुद्गण विजयी देवों की सेना के आगे हों ॥८॥

१८५७. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥९॥

बलशाली इन्द्रदेव, राजा वरुणदेव, आदित्यों और मरुतों के तीक्ष्ण बल हमारे सहायक हों । शत्रु-गणों के नाशक, विशालमना और विजयी देवों का जयघोष गुंजायमान हो ॥९॥

१८५८. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! आप हमारे सहायक योद्धाओं का हर्ष बढ़ाएँ, हमारे अश्वों को वेग प्रदान करें तथा वीरों के मन में उत्साह भरें । हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! विजयी होकर आने वाले हमारे रथों के शब्द गुंजित हों ॥१०॥

१८५९. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥११॥

हमारी सेनाओं की युद्ध में इन्द्रदेव रक्षा करें । हमारे बाण शत्रुओं पर विजय पाने वाले हों । हमारे वीर विजयी हों । हे देवो ! युद्ध में हमें रक्षण प्रदान करें ॥११॥

१८६०. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥१२॥

हे मरुतो ! अपनी सामर्थ्य से स्पर्धा करती शत्रु की सेना जब हमारे ऊपर आक्रमण करने को उद्यत हो तो उस सेना को गहन अन्धकार से आच्छादित कर दो, जिससे वे एक दूसरे को न पहचान सकें और परस्पर आपस में ही लड़ मरें ॥१२॥

१८६१. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१३॥

हे पाप-व्याधिके ! हमसे दूर रहो । इन शत्रुओं के चित्त को विमोहित करो । उनके अंगों को जकड़ लो । उन शत्रुओं पर आक्रमण कर उनके हृदय में शोक-ज्वाला प्रदीप्त करो । हमारे शत्रुओं को गहन अन्धकार में डाल अंधा करो ॥१३॥

१८६२. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१४॥

हे वीरो ! शत्रु पर आक्रमण करके विजयी बनो । इन्द्रदेव आपको सुख और शक्ति प्रदान करें । आपकी भुजाएँ उग्र सामर्थ्य से युक्त हों, जिससे शत्रु आपको अपने अधिकार में न ले सकें ॥१४॥

१८६३. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥१५॥

हे मेधावियों से प्रेरित बाण ! हमारे द्वारा छोड़े जाने पर तुरन्त शत्रुओं के समक्ष जाकर गिरो । उन शत्रुओं में कोई शेष न रहे ॥१५॥

१८५४.ककुभः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१६॥

बाज पक्षी की तरह बाण इन शत्रुओं का पीछा करें। शत्रु सेना गिद्धों का भोजन बने। शत्रुओं में से कोई बचने न पाये। हे इन्द्रदेव! जो अभी मार्ग में उपस्थित हुए हों वे भी न बचें। इन सबके पीछे मांस भक्षी पक्षी लगें॥१६॥

१८५५.अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि । उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥

हे ऐश्वर्यवान् शत्रु-हन्ता इन्द्र! आप और अग्नि दोनों हमसे शत्रुता करने वाले शत्रुओं की सेना को भस्म करें।

१८५६.यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१८॥

जहाँ शिखा रहित बालकों (मुंडित बालकों) के समान बाण गिरते हों, वहाँ ब्रह्मणस्पति तथा अदिति हमें सुख प्रदान करें और हमारा सदा कल्याण करें॥१८॥

१८५७. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१९॥

हे इन्द्रदेव! राक्षसों का विनाश करें। हिंसक दुष्टों को नष्ट करें। वृत्रासुर का जबड़ा तोड़ दें। हे शत्रु-नाशक इन्द्रदेव! हमारे संहारक शत्रुओं के क्रोध एवं दर्प को नष्ट करें॥१९॥

१८५८. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२०॥

हे इन्द्रदेव! हमारे शत्रुओं का नाश करें। हमारी सेनाओं द्वारा पराजित शत्रुओं को मुंह लटकाकर भगायें। हमें दास बनाने के अभिलाषी शत्रुओं को गर्त में डालें॥२०॥

१८५९. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥२१॥

राक्षसों के सम्पूर्ण बल को जीतने वाले, अविचल और तरुण इन्द्रदेव, जिन पर किसी का वश नहीं हो सकता, ऐसे हाथी की सूँड़ के समान अजस्र भुजाओं को युद्ध में सबसे पहले प्रेरित करें॥२१॥

१८६०.मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥२२॥

हे यजमान! आपके मर्मस्थलों को कवच से ढक देते हैं। राजा सोम आपको अमृत से युक्त करें। वरुणदेव आपको सुख प्रदान करें॥२२॥

१८६१.अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२३॥

शत्रु सिर विहीन सर्पों के समान अन्धे हों। अग्नि की ज्वाला से जले श्रेष्ठ शत्रुओं का मर्दन इन्द्र स्वयं करें॥

१८६२.यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥२४॥

जो हमसे [illegible] द्वेष करते हैं, [illegible] उनको [illegible] करें ॥२४॥

१८७३. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥२५॥

हे इन्द्रदेव! आप पर्वत के हिंसक सिंह के समान भयंकर हैं। आप सुदूर क्षेत्र से यहाँ आकर [illegible] करने वाले वज्र को तीक्ष्ण कर शत्रुओं का विनाश करें। संग्राम की इच्छा वाले शत्रुओं को दूर करें ॥२५॥

१८७४. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२६॥

हे देवो! कानों से हम कल्याणकारी वचनों को ही श्रवण करें। नेत्रों से कल्याणकारी दृश्यों को ही देखें। सुदृढ़ अंगों वाले शरीर से आपकी स्तुति करें। देवों के द्वारा निश्चित आयु को प्राप्त कर उसका हम श्रेष्ठ प्रकार उपभोग करें ॥२६॥

१८७५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

अति यशस्वी इन्द्रदेव हमारा कल्याण करने वाले हों। सर्व-ज्ञाता पूषादेव हमारा मंगल करें। अरिष्टनेमि आयुध वाले गरुड़ हमारे हितकारक हों। ज्ञान के स्वामी बृहस्पति देव हमारा कल्याण करें ॥२७॥

* * *

ऋषि, देवता, छन्द- विवरण

ऋषि- [illegible]

देवता - [illegible]

छन्द- त्रिष्टुप् [illegible]

॥इति एकविंशोऽध्यायः ॥

* *

॥इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः ॥

* * *

॥इति सामवेद-संहिता समाप्ता ॥

परिशिष्ट—१

सामवेदीय ऋषियों का संक्षिप्त परिचय

१. **अंहोमुग्वामदेव्य (४४४)** — [illegible] ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल में किया गया है। [illegible] 'अंहोमुक्' [illegible] ऋग्वेद में [illegible] [illegible]।

२. **अगस्त्य मैत्रावरुण (१४३२-३४)** - [illegible] ऋग्वेद [illegible] में [illegible] [illegible] 'मैत्रावरुण' [illegible] सामवेद में [illegible] 'मैत्रावरुणि' [illegible] अगस्त्य के [illegible] है।

३. **अग्नि-धिष्ण्य-ऐश्वर (१२६७—१२६९)** — ऋग्वेद के [illegible] 'ऐश्वर' [illegible] [illegible] 'ऐश्वर' [illegible] [illegible]।

४. **अग्नि चाक्षुष (५६६, ५७१, ५७४)** - [illegible] [illegible]।

५. **अग्नि तापस (९९)** — [illegible] [illegible]।

६. **अग्नि पावक (१८१६-२१)** - [illegible] अग्नि [illegible] है। [illegible] यजुर्वेद तथा सामवेद में भी [illegible] स्वीकार किया गया है।

७. **अत्रि भौम (३६६)** - ऋग्वेद का पंचम मण्डल [illegible] ऋग्वेद के पंचम मण्डल [illegible] अत्रि [illegible]।

[illegible] अनेक मंत्रों में ऋषि के रूप में इनका उल्लेख हुआ है—[illegible]

८. **अनानत पारुच्छेपि** ([illegible]) – [illegible] पारुच्छेपि [illegible] नाम [illegible] के साथ भी [illegible] है—[illegible] [illegible] के कारण [illegible] [illegible] अनानत पद [illegible] [illegible] ।

९. **अन्धीगु श्यावाश्वि** ([illegible]) – [illegible] ।

१०. **अप्रतिरथ ऐन्द्र** ([illegible]) – [illegible] के लिए प्रयुक्त हुआ है । [illegible] 'इन्द्र का [illegible]' [illegible] ।

११. **अभीपाद् उदल** ([illegible]) – [illegible] ।

१२. **अमहीयु आङ्गिरस** ([illegible] आदि) – [illegible] ।

१३. **अम्बरीष वार्षागिर** ([illegible]) – [illegible] ।

१४. **अयास्य आङ्गिरस** ([illegible]) – [illegible] ।

१५. **अरिष्टनेमि तार्क्ष्य** ([illegible]) – अरिष्टनेमि [illegible] । तार्क्ष्य [illegible] ।

१६.[illegible] (९८१-९८४) – [illegible]

१७.अवत्सार काश्यप (५७०) – ऋग्वेद ([illegible]) में अवत्सार को एक ऋषि कहा गया है। [illegible] **[illegible]** ([illegible])।

१८.अवस्यु आत्रेय (४२८) – [illegible] के ऋषि के रूप में अवस्यु आत्रेय का नाम [illegible]। [illegible] **अवस्युरात्रेय ऋषिः** [illegible]।

१९.अश्विनीकुमार वैवस्वत (३०५) – यजुर्वेद तथा सामवेद में अश्विनीकुमार को ऋषि माना गया है। [illegible] **अश्विनोर्बाहुभ्याम्** [illegible] ([illegible])। [illegible] सामवेद में अश्विनीकुमार [illegible] ([illegible])।

२०.असित देवल (४६५, ४७७, ४८०, ५०६ आदि) – असित देवल और असित काश्यप दो ऋषि [illegible] **[illegible]** ([illegible])।

२१.आकृष्टा माषा (५५६-५८, ९५५) – [illegible] **[illegible]** ([illegible])।

२२.आत्मा (५९१) – सामवेद ५९१ में आत्मा को ऋषि माना गया है। [illegible] **[illegible]** ([illegible])

२३.[illegible] (४५५) – [illegible] उपनिषद् ([illegible]) में [illegible]। [illegible] **[illegible]**।

२४.[illegible] (११) – [illegible] सामवेद में ही उपलब्ध होता है। इस मंत्र के [illegible]। इसके अतिरिक्त इनका कहीं उल्लेख नहीं होता।

२५. [illegible] (१.२८४) - [illegible] पुत्र थे। इन्होंने ऋग्वेद के [illegible] का दर्शन किया था। सायण ने इनका [illegible] लिखा है—[illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

२६. [illegible] (५३५) - वैदिक [illegible] की विशेषताओं से सम्पन्न [illegible] है। ऋग्वेद [illegible] से ज्ञात होता है कि [illegible] लोग भी ऐसे पुरोहित थे, जो [illegible]। ऋग्वेद [illegible] के सूक्त में [illegible] है—[illegible]। [illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

२७. [illegible] काण्व (१०९, ११४, १५९, १९९ आदि) - [illegible] हैं। इनके द्वारा [illegible] सूक्त ऋग्वेद के [illegible] मण्डल में संकलित हैं, जिनमें इन्द्र की स्तुति की गयी है—[illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

२८. [illegible] आङ्गिरस (४९४, ४९९ आदि) - [illegible] ऋग्वेद के [illegible] सूक्तों के [illegible] हुआ है। [illegible] ने लिखा है—[illegible]। तथा [illegible] इति। आगे [illegible] ने लिखा है—[illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

२९. [illegible] काण्व (६०) - [illegible] किया गया है, इसके [illegible] है। [illegible] है, [illegible] किया है—[illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

३०. उपमन्युर्वासिष्ठ (८०६-८) - [illegible] होता है। [illegible] किया था—[illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

३१. उपस्तुत वार्ष्टिहव्य (९३४) - [illegible] मिलता है। [illegible] है, [illegible]। ऋग्वेद [illegible] में [illegible] गया है—इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन्। ऋग्वेद [illegible] में [illegible] है—[illegible]।

३२. [illegible] आत्रेय (९८५-८८) - [illegible] है। ऋग्वेद और सामवेद में इनका उल्लेख "[illegible]" के [illegible] किया गया है—'[illegible] ऋषि' (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

३३. [illegible] (९८४) - [illegible] किया गया है। [illegible] थे। [illegible] थे—[illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०)।

३४. **उशना काव्य** (५२३, ५६१) – [illegible]

३५. **ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरस** (५७९) – [illegible]

३६. **[illegible]** (५८४) – [illegible]

३७. **ऋजिश्वा भारद्वाज** (१७५, ५६०, ५६५) – [illegible]

३८. **ऋणञ्चय राजर्षि** (५८२, १०३४) – [illegible]

३९. **[illegible]** ([illegible] आदि) – [illegible]

४०. **एवयामरुत् आत्रेय** (४६२) – [illegible]

४१. **कण्व घौर** (५४, ५६, १२७, आदि) – [illegible]

८२.कर्णश्रुत् वासिष्ठ (५३७) – [illegible]

८३.कील प्रागाथ (१२४, ९४२) – [illegible]

८४.कवष ऐलूष (७५३) – [illegible]

८५.[illegible] – [illegible]

८६.कश्यप मारीच (३८२, ५८१, ५८२) – [illegible]

८७.कुत्स आंगिरस (९९, ३८०, ५८१, ६२९) – [illegible]

८८.कुरुस्तुति काण्व (९८८, ९८९, ९९०) – [illegible]

८९.कुसीदी काण्व (९३८, ९६९, ९७०) – [illegible]

५०.कुलयशा आंगिरस (५८९) – आंगिरस् ऋषि के वंशज को आंगिरस कहा जाता है। [illegible] के ऋषि हैं। [illegible] हुआ है। इनका विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। [illegible] सूक्त के [illegible] आंगिरस [illegible]।

५१.कृष्ण आंगिरस (३७५) – ऋग्वेद के सूक्त [illegible] ऋषि के रूप में इनका नाम आया है। [illegible] "कृष्णिय" [illegible] ऋग्वेद के [illegible] सूक्तों में आया है- (ऋ० [illegible]) [illegible]—[illegible] कृष्ण [illegible]। [illegible] आंगिरसः कृष्ण [illegible] (ऋ० [illegible])

५२.केतुराग्नेय (१५,२७ -३१) – केतु ऋषि [illegible] अग्नि हैं। [illegible] "अग्ने केतुर्विशामसि" [illegible] केतु [illegible] अग्नि [illegible] है। [illegible] अग्निपुत्र होने के कारण भी इन्हें आग्नेय कहा जाता है— [illegible] केतुराग्नेय [illegible]—(ऋ० १०.१५६ [illegible])।

५३.गय आत्रेय (८९) – गय आत्रेय ऋग्वेद के [illegible] है। अत्रि वंश में [illegible] होने के कारण ये आत्रेय [illegible] (ऋ० ५.९ [illegible])।

५४.गातुरात्रेय (२१५) – गातुरात्रेय ऋग्वेद और सामवेद के ऋषि हैं। ये अत्रि गोत्र के [illegible] हैं— [illegible] (ऋ० ५.३२ [illegible])।

५५.गृत्समद शौनक (२००, ३५७, ४१६, ५६७, ६००, ६०७) – गृत्समद एक ऋषि का नाम है। ये ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के ऋषि हैं। [illegible] ऋग्वेद के [illegible] गया है—[illegible] (ऋ० २.१ [illegible])।

५६.गोतम राहूगण (९१, १४७, १७९, २९८, ३१८ आदि) – ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में गोतम ऋषि का नाम आया है। ऋग्वेद [illegible] से विदित होता है कि 'राहूगण' उनकी उपाधि है, जो [illegible] है। [illegible] वैदिक-संस्कृति [illegible] है— [illegible] गोतमो राहूगणः। [illegible] (शत० ब्रा० १.४.१.१०)। [illegible]— [illegible] गोतमो राहूगणो [illegible] (ऋ० १.७८ [illegible])।

५७.गोधा ऋषिका (९७८) – गोधा [illegible] ऋषिका हैं। [illegible] ऋषिका [illegible] गया है। ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट [illegible] गया है— [illegible] गोधा [illegible] (ऋ० १०.१३४ [illegible])।

५८. गोपवन आत्रेय (२९, ८८, ८९) – [illegible] गोपवन के वंशज [illegible] (ऋ० ८.७४ [illegible])।

५९. गोषूक्ति-अश्वसूक्ति काण्वायन (१२२, १२३, १९९, ३८२ आदि) – इन ऋषियों को [illegible] कहा गया है। [illegible] (ऋ० ८.१४ [illegible])। [illegible] का उल्लेख है।

६०. गौरांगिरस (४५८) – आंगिरस [illegible] ऋषि हैं। इनके [illegible] है। [illegible]।

६१. गौरिवीति शाक्त्य (३१९, ३३१, ५८८) – गौरिवीति ऋषि शक्ति के पुत्र होने के कारण शाक्त्य कहा जाता है। [illegible] (ऋ० ५.२९ [illegible])।

६२. चक्षुर्मानव (५६७) – [illegible] मनु का पुत्र होने से इन्हें मानव कहा जाता है। [illegible] (ऋ० ९.१०६ [illegible])।

६३. जमदग्नि भार्गव (२५५, २५६, १०७६, १८९ आदि) – ऋग्वेद के एक ऐतिहासिक ऋषि जमदग्नि हैं, जहाँ उनका अनेक बार नामोल्लेख हुआ है। [illegible] (ऋ० ३.६२.१८) [illegible]।

६४. जय ऐन्द्र (१८७३) – [illegible] ऐन्द्र ऋषि के रूप में [illegible] है। [illegible] (ऋ० १०.१८० [illegible])।

६५. जेता माधुच्छन्दस (३७३, ३५९) – मधुच्छन्दस् का पुत्र होने के कारण इन्हें माधुच्छन्दस कहा गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में इन्हें ११वें सूक्त का ऋषि कहा गया है, [illegible] 'इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः' [illegible] (ऋ० १.११ [illegible])।

६६. तिरश्ची आंगिरस (३४८, ३४९, ३५०) – अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के एक सूक्त ८.९५ के द्रष्टा एक ऋषि का नाम तिरश्ची है। [illegible] का उल्लेख है। [illegible] उल्लेख किया गया है— श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति [illegible] (ऋ० ८.९५.४) [illegible] (ऋ० ८.९५ [illegible])।

६७.त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य (१३६४-६६) – पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु को ऋग्वेद [illegible] में पृथ्वी का राजा कहा गया है। [illegible] **[illegible]**। [illegible] (ऋग्वे० [illegible])।

६८.त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण (१३६४, १३६५) – [illegible] के पुत्र थे। ऋग्वेद [illegible] वें सूक्त के [illegible] हैं। इस सूक्त के प्रथम एवं द्वितीय मंत्र में [illegible] है— **[illegible]** (ऋ० [illegible])।

६९.त्रित आप्त्य (१०६, ३६८, ४१७, ४७१ आदि) – [illegible] में [illegible] कूप— **[illegible]** ... **[illegible]** ... [illegible] (ऋ० [illegible])। ऋग्वेद में इनके [illegible] का उल्लेख किया गया है— **[illegible]** ...... **[illegible]** (ऋ० [illegible])।

७०.त्रिशिरा त्वाष्ट्र (७१) – इन्हें त्वष्टा का पुत्र कहा गया है। ऋग्वेद [illegible] त्रिशिरा को [illegible] है— **[illegible]** (ऋ० [illegible])।

७१.त्रिशोक काण्व (१२२, १२३, १२४) – ये एक प्राचीन [illegible] ऋषि हैं, जिनका उल्लेख ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में मिलता है। [illegible]— **[illegible] त्रिशोक [illegible]**। **[illegible]** (ऋ० [illegible])।

७२.[illegible] (१२७८) – [illegible] किया गया है। [illegible] **[illegible]** ([illegible])। **[illegible]** ([illegible])। [illegible] द्वारा इनके [illegible] का उल्लेख [illegible] है।

७३.दीर्घतमा औचथ्य (१८, १२५८-१२६०) – इन्हें ममता और उचथ्य का पुत्र माना गया है। ऋग्वेद [illegible] में इनका एक [illegible] ऋषि के रूप में उल्लेख है, [illegible] है। [illegible] में इन्हें [illegible] पुरोहित [illegible] गया है। ऋग्वेद में [illegible] है— **[illegible] दीर्घतमा [illegible]** (ऋ० [illegible])।

७४. दुर्मित्र अथवा सुमित्र कौत्स (२२८) – दुर्मित्र को कुत्सगोत्रीय माना गया है, वे अपने गुणों के कारण सुमित्र कहे गये थे। ऋग्वेद इस तथ्य के प्रति संकेत है तथा इसका कथन भी स्पष्ट किया है— [illegible] सुमित्र इत्थास्तौद् दुर्मित्र इत्थास्तौत्—(ऋ० १०.१०५.११)। सायण ने इस तथ्य का पूर्ण उद्घाटन कर दिया है कि दुर्मित्र गुणों के कारण सुमित्र कहे गये थे— [illegible] दुर्मित्रो [illegible] 'आस्तौत्'। तथा दुर्मित्रो गुणतः [illegible] [illegible]। सुमित्रो नाम्ना दुर्मित्रो गुणतः इति [illegible] (ऋ० १०.१०५.११ सा० भा०)। सर्वानुक्रमणी में ऋषि के [illegible] एवं दुर्गुण के आधार पर नाम परिवर्तन की बात स्वीकार की गयी है— कौत्सो दुर्मित्रो नाम्ना सुमित्रो गुणतः सुमित्रो वा नाम्ना दुर्मित्रो गुणतः (ऋ० सर्वा०)।

७५. दृढच्युत आगस्त्य (१०२८) – ये अगस्त्य के पुत्र थे। [illegible] ९.२५ में [illegible] के रूप में दृढच्युत आगस्त्य के [illegible] होने का उल्लेख है। अनुक्रमणी में, जहाँ वैदिक नाम आगस्त्य है, उन्हें ऋग्वेद के सूक्त ९.२५ का ऋषि माना है—अथ सूक्तं दृढच्युत[illegible] (ऋ० ९.२५ सा० भा०)।

७६. देवजामय इन्द्रमातरः ऋषिकाः (१२७, १९५) – देवजामयः पद के साथ इन्द्रमातरः पद प्रयुक्त होता है, जिससे ये इन्द्र की माता कही गयी हैं। [illegible] इस मंत्र में कुछ ऋषिकाओं का [illegible] होता है, जो [illegible] है—देवानां जामयः इन्द्रमातरो [illegible]। तथा अनुक्रमणी – [illegible] (ऋ० १०.१५३ सा० भा०)। बृहद्देवता में भी इन ऋषिकाओं का विवेचन प्राप्त होता है—[illegible] माता देवजामयो ... (बृह० २.८४)।

७७. देवातिथि काण्व (२०७, २०९, ३०८) – ये कण्व के वंशज थे। [illegible] ८.४.१९ में [illegible] के द्वारा एक ऋषि का नाम देवातिथि बताया है। वे ऋग्वेद के एक सूक्त ८.४ के [illegible] हैं। [illegible] [illegible] के रूप में [illegible] किया था, जिससे वे अपने पुत्र के साथ [illegible] में [illegible] पा सके थे, क्योंकि [illegible] ने उन्हें त्याग दिया था। वे ऋग्वेद एवं सामवेद के प्रतिष्ठित ऋषि हैं— ... [illegible] [illegible] देवातिथिरार्षम् —(ऋ० ८.४ सा० भा०)।

७८. द्वित आप्त्य (४७३, ४७४) – द्वित आप्त्य ऋषि को सर्वानुक्रमणी त्रितो में से हैं, किन्तु इन्हें [illegible] के [illegible] का [illegible] जाना है। [illegible] ४७३ तथा ४७४ पर अंकित मन्त्र ऋग्वेद के नवम मण्डल के १०३ वें सूक्त के [illegible] तथा [illegible] है, जिनके द्रष्टा के रूप में द्वित आप्त्य का नामोल्लेख है—[illegible] [illegible] [illegible] द्वितमार्षम् ... द्वितो नामर्षि आप्त्यस्य [illegible] (ऋ० ९.१०३ सा० भा०)।

७९. द्वितमृक्तवाहा आत्रेय (८५) – एकत, द्वित तथा त्रित तीन भाइयों का उल्लेख वेदों में [illegible] होता है। ऋग्वेद के पंचम मण्डल के वे द्रष्टा हैं। [illegible] ५.१८ [illegible] है—[illegible]। [illegible] द्वित ऋषि। [illegible] इति [illegible] आत्रेयो द्वित ऋषिः (ऋ० ५.१८ सा० भा०)।

८०. धूतान मारुत (३२३, ३२४, ३२६) – तैत्तिरीय संहिता ५.५.१.४ और काठक संहिता ५.८ के अनुसार एक देवी पुत्र का नाम धूतान मारुत है। शतपथ ब्राह्मण ३.५.१.१६ में इन्हें असुर कहा गया है। जबकि पञ्चविंश ब्राह्मण १७.१.७ में इन्हें एक [illegible] माना गया है। अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के एक सूक्त ८.९६ के द्रष्टा ऋषि हैं—अर्थ [illegible] धूतानो वा [illegible] ...धूतानस्तो [illegible] ऋषिः ...(ऋ० ८.९६ सा० भा०)। [illegible] 'धूतानो वा मारुतः' कहकर इनका वैकल्पिक स्वीकार किया गया है।

८१. नकुल (३४४) — अथर्ववेद ([illegible]), सामवेद ([illegible]) तथा यजुर्वेद ([illegible]) में नकुल का उल्लेख किया गया है, इनके विषय में रूप में [illegible] ऋषि का उल्लेख किया गया है। इनके सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता।

८२. नहुष मानव (५७६) — मनु का पुत्र होने के कारण इन्हें मानव कहा जाता है। नहुष की गणना एक राजर्षि के रूप में की गयी है। इनको [illegible] सूक्त का ऋषि कहा गया है—[illegible] पुत्रो नहुषो नाम राजर्षिः। [illegible] पुत्रो मनुः (ऋ० ९.१०१ सा० भा०)।

८३. नारद काण्व (३८१) — अथर्ववेद में अनेक बार एक देवतावादीन ऋषि के रूप में 'नारद काण्व' का नाम आया है। मैत्रायणी संहिता के [illegible] में इन्हें एक आचार्य के रूप में तथा [illegible] की [illegible] सूची में इन्हें [illegible] का शिष्य कहा गया है। [illegible] (८.१२) में इनका उल्लेख [illegible] के साथ हुआ है। [illegible] के अनुसार इन्हें [illegible] के साथ [illegible] का पुरोहित माना जाता है। [illegible] की [illegible] होता है—'[illegible]' (ऋ० ८.१३ सा० भा०)।

८४. नारायण (६१७–६२१) — प्रसिद्ध पुरुष सूक्त के ऋषि नारायण है। इनको [illegible] सूक्त के [illegible] भी प्राप्त है। पुरुष सूक्त [illegible] में [illegible] होता है। नारायण को ही [illegible] ऋषि के रूप में [illegible] किया गया है — [illegible] (ऋ० १०.९० सा० भा०)।

८५. निध्रुवि काश्यप (२८३, ३१२, ३९३, ५०१) — निध्रुवि काश्यप को ऋग्वेद [illegible] के ९३ वें सूक्त का ऋषि कहा गया है। आचार्य सायण ने इस सूक्त के भाष्य में लिखा है—'[illegible]' [illegible] (ऋ० ९.६३ सा० भा०)। इसके अतिरिक्त सामवेद के मंत्र [illegible] आदि के द्रष्टा ऋषि के रूप में भी निध्रुवि काश्यप का नाम उल्लिखित है।

८६. नीपातिथि काण्व (३४४, १८०७–१८०९) — नीपातिथि द्वारा दृष्ट [illegible] का उल्लेख [illegible] ब्राह्मण में किया गया है तथा ऋग्वेद में भी इनका उल्लेख किया है—[illegible] नीपातिथि [illegible] (ऋ० ८.४९.९)। नीपातिथि [illegible] के रूप में भी [illegible] के—[illegible] (ऋ० ८.४.१)

८७. नृमेध आङ्गिरस (२६४, २८३, ३११, ५४८ आदि) — ऋग्वेद के [illegible] के ९८ वें सूक्त में नृमेध के साथ पुरुमेध का भी उल्लेख पाया जाता है। [illegible] के अनुसार ये एक साम ([illegible] आदि) [illegible] ऋषि थे। ऋग्वेद के १०.८०.३ में अग्नि के [illegible] रूप में नृमेध आङ्गिरस का नाम [illegible] हुआ है— [illegible] (ऋ० १०.८०.३ सा० भा०)।

८८. नोधा गौतम (२३४, २९६, ३९२, ५३८) — गौतम गोत्रीय के रूप में नोधस् ऋषि का [illegible] है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के द्रष्टा के रूप में इनका उल्लेख है— [illegible] (ऋ० १.६१ सा० भा०)।

८९. पवित्र वैश्वामित्र (२८७, ३४९, ३६१, ३९५) — [illegible] का [illegible] होने के कारण [illegible] कहा जाता है। पुराणों में [illegible] के पुत्र तथा [illegible] के शिष्य का नाम [illegible] है। [illegible] है—[illegible] (निरु० [illegible])। [illegible] (निरु० [illegible])।

ऋग्वेद [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible])।

९०.[illegible] ([illegible]) – ऋग्वेद [illegible] के साथ [illegible] का भी उल्लेख है। [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible]। [illegible] (ऋ० [illegible])।

९१.पर्वत काण्व (३८४, ३९४) – [illegible] — [illegible] (ऋ० ८. [illegible])

९२.पर्वत और नारद काण्व (५६८-५६९, ५७४-५७५) – [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]) [illegible] (ऋ० [illegible])।

९३.पवित्र आंगिरस (५९५, ५९६) – पवित्र आंगिरस [illegible] ऋग्वेद के [illegible] पवित्र आंगिरस का उल्लेख [illegible] (ऋ० [illegible])। [illegible] पवित्र आंगिरस का उल्लेख है— [illegible] (ऋ० [illegible])।

९४.पायुर्भारद्वाज (८०, ९५) – [illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]) [illegible] पायु भारद्वाज द्वारा [illegible] हुए हैं।

९५.पावक या बार्हस्पत्याग्नि या सहस् पुत्र गृहपति और यविष्ठ या दोनों (९८१, ९५०) – [illegible] गृहपति और यविष्ठ [illegible] का उल्लेख है। ऋग्वेद ८. [illegible] [illegible] — [illegible] (ऋ० ८. [illegible])

९६.पुरुमेध आंगिरस (२४८, २५७-५८, ६०१) – [illegible] आंगिरस [illegible] है— [illegible] आंगिरसो [illegible]

[illegible] (ऋ० ८. [illegible]) । [illegible] गया है । [illegible]

९७.पुरुहन्मा आंगिरस (२४३, २५८, २६३, २९८) – ऋग्वेद के ८.७०. [illegible] [illegible] (ऋ० ८.७० [illegible]) ।

९८.पृथुवैन्य (३२६) – [illegible] [illegible] (ऋ० १०.१४८ [illegible]) ।

९९.पृश्नि-अजा (४२६) – ऋग्वेद के [illegible] [illegible] (ऋ० ९.८६ [illegible]) ।

१००.पृषध्र काण्व (२०७) – ऋग्वेद के [illegible] (ऋ० ८.५२.२) । [illegible] (ऋ० ८.५६) । [illegible] ऋग्वेद के [illegible] हुआ है ।

१०१.प्रगाथ काण्व (१४२, ३५५) – [illegible] ।

१०२.प्रगाथ घौर काण्व (१४२, ३११) – ऋग्वेद के [illegible] [illegible] (ऋ० ८.१ [illegible]) ।

१०३.प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य (५५३) – ऋग्वेद [illegible] (ऋ० ३.३८ [illegible]) । [illegible] नहीं है ।

१०४.प्रतर्दन दैवोदासि (५२७, ५३२, ५३३) – [illegible] ऋग्वेद के [illegible] ५.२७, ५.३२, ५.३३ [illegible] आदि में भी संगृहीत हैं । ऋग्वेद के उक्त सूक्त की भूमिका में [illegible] ने लिखा है—...

...[illegible]...। .... 'प्र मे...' ...[illegible]... इति। (ऋ० ९.९६ सा० भा०)।

१०५. प्रथ वासिष्ठ (५९९) – ...[illegible]... ऋग्वेद के दशम मण्डल के सू० १८१ के प्रथम मन्त्र का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है— ...[illegible]... वासिष्ठः ...[illegible]... वासिष्ठः (ऋ० १०.१८१ सा० भा०)।

१०६. प्रभूवसु आंगिरस (४१०) – प्रभूवसु आंगिरस का ऋग्वेद के पंचम मंडल तथा नवम मण्डल के अन्तर्गत ऋषित्व प्रतिपादित है। ऋग्वेद के नवम मण्डल के ३५-३६ वें सूक्त के द्रष्टा होने के सम्बन्ध में आचार्य सायण ने लिखा है कि 'आ न' इत्यादि षड् ऋचाओं के मन्त्रद्रष्टा ऋषि आंगिरस प्रभूवसु हैं— 'आ न इति षडृचं ...[illegible]... सूक्तं आंगिरसस्य प्रभूवसोः आर्षं गायत्रं पवमानसोमदेवताकम्' (ऋ० ९.३५ सा० भा०)।

१०७. प्रयोग भार्गव (१३, १८, १९, २१, १०७) – प्रयोग भार्गव ऋषि का नाम ऋग्वेद के एक सूक्त (८.१०२) के द्रष्टा ऋषि के रूप में उल्लिखित है, क्योंकि इस मन्त्र के द्रष्टा ऋषि के रूप में अन्य चार ऋषियों के भी बताये गये हैं— ....[illegible]... प्रयोगो भार्गवः ।... ...[illegible]... (ऋ० ८.१०२ सा० भा०)।

१०८. प्रस्कण्व काण्व (३१, ४७, ५०, ९६, १५८, २११ आदि) – अनुक्रमणी के अनुसार प्रस्कण्व काण्व ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ४४ से ५० सूक्तों के द्रष्टा सिद्ध होते हैं— ...[illegible]... प्रस्कण्वः काण्वः आग्नेयं तु ...[illegible]... । ...[illegible]... (ऋ० १.४४ सा० भा०)।

१०९. बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु गौपायन या लौपायन (४४८-४५०) – ...[illegible]... ऋ० ५.२४ के चारों मन्त्रों के लिए चार ऋषियों का ऋषित्व स्वीकार किया है। ...[illegible]... एक-एक ऋचा के ऋषि क्रमशः बन्धु, सुबन्धु आदि होंगे। इसी कारण इन ऋषियों को 'एकर्च' कहा गया है। ऋग्वेद में यह प्रसंग इस प्रकार निर्दिष्ट है— ...अग्ने त्वं ...[illegible]... बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चैकर्चाः ...[illegible]... (ऋ० ५.२४ सा० भा०)।

११०. बालखिल्य* (वालखिल्य) (२३५, २६१, ३००) – पुराणों में वालखिल्य ऋषियों की संख्या ६० हजार मानी गयी है तथा इन्हें ब्रह्मा के रोम से उत्पन्न माना गया है। इन ऋषियों का आकार बहुत ही छोटा है। प्रत्येक ऋषि की लम्बाई एक अंगूठे के बराबर मानी गई है। इन्हें वालखिल्य (ऋग्वेद) सूक्तों का द्रष्टा कहा गया है। *वैदिक वाङ्मय, ऋग्वेद में ...[illegible]...।

१११. बिन्दु अथवा पूतदक्ष आंगिरस (१२७, १५८) – बिन्दु आंगिरस अथवा पूतदक्ष आंगिरस को ऋ० ८.९४ का ऋषित्व प्राप्त है। इस पूरे सूक्त में बिन्दु का नाम तो कहीं नहीं मिलता है, ऋ० ९.३० में बिन्दु का ...[illegible]... मिलता है— 'प्र धारा' इति षड्ऋचं षष्ठं सूक्तं बिन्दुनाम आंगिरसस्यार्षं... 'उपास्य बिन्दु' ...[illegible]... (ऋ० ९.३० सा० भा०)। पूतदक्ष के सम्बन्ध में ...[illegible]... है कि यहाँ (८.९४.१०) 'पूतदक्षसः' शब्द प्रयुक्त हुआ है, परन्तु यह शब्द 'पूतदक्ष' न होकर 'पूतदक्षस्' का द्वितीया बहुवचनान्त रूप है, जिसे सायण ने ऋषिवाचक नहीं माना है। आचार्य सायण ने लिखा है— 'पूतदक्षसः शोधितबलान्...'।

११२. बुध-गविष्ठिर आत्रेय (७३) – आत्रेय बुध और गविष्ठिर का ऋषित्व ऋग्वेद के पंचम मंडल के प्रथम सूक्त का है। इन दोनों ऋषियों को, इस मण्डल में गोत्र नाम अत्रि-सम्बन्धित होने के कारण 'आत्रेय' नाम दिया गया

है—[illegible] "[illegible]" इति । [illegible] (ऋ० [illegible] सा० भा०) । ऋग्वेद [illegible] में [illegible] ही नाम मिलता है ।

११३.बृहद्दिव आथर्वण (१४८३-८५) – [illegible] (ऋ० १०. १२०. ९) [illegible] (ऋ० १०. १२०. ९ सा० भा०) । [illegible] (१०. १) के अनुसार बृहद्दिव को [illegible] है ।

११४.बृहदुक्थ वामदेव्य (६५, ३२५) – [illegible] ([illegible] सा० भा०) । [illegible] (ऋ० १०. ५४. ६) [illegible] है — [illegible] (ऋ० १०. ५४. ६ सा० भा०) ।

११५.बृहन्मति आंगिरस (४८८) – ऋग्वेद के [illegible] के रूप में बृहन्मति आंगिरस का उल्लेख प्राप्त होता है । [illegible] के [illegible] सूक्त के आरम्भ में लिखा है— [illegible] । [illegible] ([illegible] सा० भा०) । [illegible] का ऋषित्व भी प्राप्त है ।

११६.बृहस्पति (३२१) – [illegible] है, जैसा कि [illegible] ने लिखा है— [illegible] (ऋ० १०. [illegible] सा० भा०) ।

११७.ब्रह्मातिथि काण्व (११९) – ब्रह्मातिथि [illegible] है । [illegible] ऋग्वेद ८. ५ सूक्त के ऋषि के रूप में इनका वर्णन प्राप्त होता है । ऋग्वेद में [illegible] है— [illegible] ब्रह्मातिथिनामर्षि ... [illegible] (ऋ० ८. ५ सा० भा०) ।

११८.भरद्वाज बार्हस्पत्य (१, २, ४, ७, ९, २२, २६ आदि) – ऋग्वेद के छठे मण्डल तथा सामवेद के [illegible] के रूप में इनका नाम प्रख्यात है । [illegible] बृहस्पति का पुत्र [illegible] है । [illegible] । [illegible] है— [illegible] ([illegible]) । भरद्वाज [illegible] के पुरोहित थे । [illegible] था ।

११९.भर्ग प्रागाथ (३६, ४६, १४७, १५३, २७४, २९७) – [illegible] । ऋग्वेद में [illegible] है । [illegible] के ऋषि भी प्रगाथ कहे जाते हैं । भर्ग प्रागाथ [illegible] के ऋषि हैं- [illegible] ... [illegible] (ऋ० ८. ६० सा० भा०) ।

२२०. भुवन आप्त्य साधन (८५२) – भृगु के १२ पुत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। भुवन इन्हीं १२ पुत्रों में से एक है। [illegible]

२२१. भृगु वारुणि (३६१, ३८०, ४९८, ५०३) – [illegible]

२२२. (विश्वकर्मा) भौवन (१५८२) – भुवन के वंशज को भौवन कहते हैं। [illegible]

२२३. मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (१४, १२५, १३०, १६०, १६४ आदि) – मधुच्छन्दा की गणना प्रमुख ऋषियों में की गयी है। [illegible]

२२४. मनुराप्सव (५४२) – [illegible]

२२५. मनु वैवस्वत (७८) – [illegible]

२२६. मनु सांवरण (५,८८) – [illegible]

२२७. मन्यु वासिष्ठ (५,४०) – [illegible]

१२८.मान्धाता यौवनाश्व (१०१३४, ९२) – [illegible] ... युवनाश्वपुत्रस्य मान्धातुरार्षम् ... (ऋ० १०. १३४ सा० भा०)।

१२९.मेधातिथि काण्व (२, १६, ३१, १३१ आदि) – मेधातिथि काण्व को ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के [illegible] ... मेधातिथि काण्व [illegible] ...

१३०.मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आंगिरस (१९३, १९४, १५७ आदि) – ऋग्वेद के [illegible] ... मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आंगिरस [illegible] ...

१३१.मेध्य काण्व (१६९) – [illegible] ...

१३२.मेध्यातिथि काण्व (१०९, १५१ आदि) – [illegible] ... मेधातिथि ... मेध्यातिथि ...

१३३.यजत आत्रेय (११९३-२०५) – [illegible] ...

१३४.ययाति नाहुष (५७७७) – 'नाहुष' नाम [illegible] ... ययाति नहुष के [illegible] ... आचार्य सायण ने लिखा

है— [illegible] (ऋ० ९. १०१ [illegible]) ।

१३५. [illegible] आङ्गिरस (१.१७४-७९) – [illegible] ऋग्वेद के दो सूक्तों [illegible] में [illegible] है । [illegible] 'अङ्गिरस' [illegible] है । [illegible] (ऋ० १. [illegible]) ।

१३६. रेणु वैश्वामित्र (३.३५, ९.७०) – विश्वामित्र की सन्तति के कारण रेणु को वैश्वामित्र कहा गया है । विश्वामित्र की [illegible] रेणु का [illegible] था । [illegible]—(ऐ० ब्रा० ७. १७) ।

१३७. रेभ काश्यप (२५४, २६०, २६५, ३००, ३६० आदि) – रेभ को [illegible] कहा गया है । [illegible] है— [illegible] (ऋ० ८.९७ [illegible]) [illegible] (ऋ० १.११२.५ [illegible]) [illegible] (ऋ० १.११६.२४) [illegible] रेभस्य [illegible] (ऋ० १.११९.६) । [illegible] है ।

१३८. रेभसूनू काश्यप (९.९९, ९.१००) – रेभ के दो पुत्र [illegible] हैं । [illegible] रेभसूनू [illegible] (ऋ० ९.९९) । [illegible] (ऋ० १.११२.५) [illegible] (ऋ० १.११६.२४ [illegible]) ।

१३९. वत्स काण्व (८.११, १६०, १९६ आदि) – वत्स के [illegible] है । ऋग्वेद में [illegible] है— [illegible] (ऋ० ८.६.१) । [illegible] है— [illegible] (ऋ० ८.६ [illegible]) [illegible] (ऋ० ८.८.८) [illegible] (ऋ० ८.९.१) । [illegible] की [illegible] सिद्ध की थी ।

१४०. वत्सप्रि भालन्दन (९.६८, १०.४५, ४६) – [illegible] के कारण इसे [illegible] कहा जाता है [illegible] होने के कारण इसे [illegible] कहा जाता है । [illegible] ने इसके [illegible] किया है— [illegible] ...... [illegible] (ऋ० ९.६८ [illegible]) ।

१४१. वसिष्ठ मैत्रावरुणि (२४, २५, ३८, ७४, ७५ आदि) – [illegible] को [illegible] कहा गया है— [illegible]—(ऋ० ७.३३. ११) । [illegible] है । वसिष्ठ मैत्रावरुणि [illegible] कहा जाता है । [illegible]

का पुत्र माना जाता है । इन्हें अनेक सूक्तों का [illegible] कहा गया है (ऋग्वेद [illegible] [illegible]
[illegible] २९, ३९, ६८, ७५ आदि) ।

१४२. वसुश्रुत-वासुक्र (३३४) – [illegible] ऋग्वेद में [illegible] इन्हें [illegible] का पुत्र कहा गया है— [illegible] (ऋ० १०, २९ [illegible]) । [illegible] (ऋ० १०, २० [illegible]) ।

१४३. वसुश्रुत आत्रेय (८२१, ८२५) – [illegible] गोत्र का नाम है । [illegible] ऋषि [illegible] के द्वारा [illegible] है— [illegible] । [illegible] वसुश्रुत [illegible]
(ऋ० ५, ३ [illegible]) ।

१४४. वसूयव आत्रेय (८६) – वेदों में वसूयु नाम वाले अनेक ऋषियों का वर्णन प्राप्त होता है, जिन्हें [illegible] में अनुक्रम गोत्रीय होने के कारण आत्रेय कहा जाता है— [illegible] (ऋ० ५, [illegible]) । कुछ स्थलों पर इन ऋषियों को [illegible] कहा गया है- [illegible] — (ऋ० ५, २०, ३ [illegible]) । यजुर्वेद में भी कुछ मंत्रों के द्रष्टा इन्हें ही माना गया है ।

१४५. वामदेव गौतम (१०, ११, १३, १७, ६१ आदि) – ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के ऋषि के रूप में वामदेव का नाम आता है— [illegible] (ऋ० ४ [illegible]) गौतम ऋषि के वामदेव का [illegible] कहा गया है— [illegible] — (ऋ० ४, १८, ११) । वामदेव को जन्म के पूर्व से ही ज्ञानी होना बताया गया है ।

१४६. विभ्राट् सौर्य (५९८) – ऋग्वेद के १०, १७० सूक्त के देवता सूर्य हैं तथा इसके ऋषि विभ्राट् सौर्य हैं । सायण ने इनके अस्तित्व का संकेत किया है- विभ्राट् [illegible] सूर्यः । विभ्राट् [illegible] ... [illegible] (ऋ० १०, १७०, १ [illegible]) ऋग्वेद में इसी सूक्त के तीन मन्त्र संकलित हैं, जिनके ऋषि यही विभ्राट् सौर्य हैं ।

१४७. विमद ऐन्द्र (८१०, ८१२) – विमद को ऋग्वेदीय मंत्रों का द्रष्टा कहा गया है— [illegible] (ऋ० [illegible]) । विमद ऋषि द्वारा एक [illegible] [illegible]— [illegible] — (ऐत० ब्रा० [illegible]) । [illegible] (ऐत० ब्रा० [illegible]) । [illegible] में ही विमद ऐन्द्र नामक [illegible] ऋषि हुए । विमद को इन्द्र अथवा प्रजापति का पुत्र माना गया है- [illegible] —(ऋ० १०, २०, १०) [illegible] —(ऋ० [illegible]) ।

१४८. विरूप आंगिरस (९७) – विरूप की गणना अंगिरसों में की जाती है । ऋग्वेद में विरूप का वर्णन [illegible] होता है- [illegible] (ऋ० १, ४५, ३) [illegible] (ऋ० ८, ७५, ६) [illegible] ... (ऋ० ८, ७५, [illegible]) । ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ४३ और ४४ सूक्त विरूप आंगिरस द्वारा दृष्ट हैं ।

१४९. विश्वमना वैयश्व (१०३, १०४, १०५, १५८९ आदि) – विश्वमनस् का [illegible] [illegible] है । इनका [illegible] निम्नांकित [illegible] से प्रकट हो जाता है— [illegible] (ऋ० ८ [illegible]

[illegible]

१५०. विश्वामित्र गाथिन (५३, ६२, ६४, ७९, ९८ आदि) – [illegible]

१५१. वृषगण वासिष्ठ (५२४, ११२९-१८) – [illegible]

१५२. वेन भार्गव (३२०, ५६१, १८७५ आदि) – [illegible]

१५३. शंयु बार्हस्पत्य (३५, ६७, ११५, ५५१) – [illegible]

१५४. शक्ति वासिष्ठ (५८३) – [illegible]

१५५. शतं वैखानसाः (१२४) – [illegible]

[illegible] — [illegible] (ऋ० [illegible]) । [illegible]

१५६. शाकपूत (३५३) — [illegible]

१५७. शास भारद्वाज (१८५७-५८) — [illegible]

१५८. शुनःशेप आजीगर्ति (देवरात) (२५, २६, २८, १५३ आदि) — [illegible]

१५९. श्यावाश्व आत्रेय (१६१, ३५६, [illegible]) — [illegible]

१६०. [illegible] आंगिरस (११६, ११८ आदि) — [illegible]

१६१. [illegible] (३००) — [illegible]

१६२.संवर्त आंगिरस (३४६, ३५१) – [illegible]

१६३.सत्यधृति वारुणि (१९२) – [illegible]

१६४.सत्यश्रवा आत्रेय (४९१) – [illegible]

१६५.सप्तगु आंगिरस (११७) – [illegible]

१६६.सप्तर्षि (५११-५१२) – [illegible]

१६७.सव्य आंगिरस (३७६, ३७८, ३८०) – [illegible]

१६८.साधन भौवन (७५२) – [illegible]

१६९.सार्पराज्ञी (६२०-६२१) – [illegible]

९८०. सिकता-निवावरी (५५७, ५५९, ८२९ आदि) – [illegible] **[illegible]** [illegible]

९८१. सिन्धुद्वीप आम्बरीष (३३) – [illegible] **[illegible]** [illegible]

९८२. सुकक्ष आंगिरस (१४६६-९४) – [illegible] **[illegible]** [illegible]

९८३. सुतम्भर आत्रेय (९०८-९) – [illegible] **[illegible]** [illegible]

९८४. सुदास पैजवन (९८०१-३) – [illegible] **[illegible]** [illegible]

९८५. सुदीति-पुरुमीळ्ह आंगिरस (६, ४१, १५५४-५५) – [illegible] **[illegible]** [illegible]

९८६. सुपर्ण (९८७३-७८) – [illegible] **[illegible]** [illegible] भी माना गया है।

१७७.सुवेदा शैलूषि (७४१) – शैलूषि [illegible] है । [illegible] सुवेदा शैलूषि का [illegible] है । [illegible] में 'शैलूषि' के [illegible] 'शैरीषि' [illegible] है, [illegible] के निम्नानुसार है—**[illegible] सुवेदा [illegible] ... सुवेदा शैरीषि ..** ([illegible]) ।

१७८.सुहोत्र भारद्वाज (३२२) – वैदिक [illegible] में सुहोत्र [illegible] का विशेष [illegible] नहीं होता । ऋग्वेद के केवल छठे मण्डल के [illegible] से सूक्त में इनका [illegible] है, जिसका [illegible] सायण ने अपने भाष्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—**[illegible] सुहोत्रस्यार्षम्** ([illegible]) ।

१७९.सोमाहुति भार्गव (१८) – [illegible] को भार्गव कहा जाता है । [illegible] को [illegible] जाता है । [illegible] में [illegible] के रूप में [illegible] है । [illegible] सोम की आहुति देने के कारण इन्हें सोमाहुति भार्गव के नाम से भी जाना जाता है । आचार्य सायण ने लिखा है— **भार्गवः सोमाहुति [illegible] ऋषिः** ([illegible]) ।

१८०.सौचीकि [illegible] (७४, ५९, ५८, १०८ आदि) – [illegible] होने के कारण इन्हें [illegible] कहा जाता है । संहिता एवं [illegible] में इनका उल्लेख किया गया है । जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है— **[illegible]** ([illegible]) । [illegible] होने के कारण इन्हें [illegible] की पदवी प्राप्त हुई थी ।

१८१.हर्यत प्रागाथ (११७, १४६०-६२) – ऋग्वेद के [illegible] प्रगाथ [illegible] के ऋषियों को प्रागाथ कहा जाता है । इस नामकरण का कारण यह है कि इन्हें [illegible] का दर्शन हुआ था । [illegible] एवं [illegible] मंत्रों के [illegible] को प्रगाथ कहा जाता है, इसलिए [illegible] के [illegible] हुए । हर्यत नाम के ऋषि जिन्होंने [illegible] का दर्शन किया है [illegible] हैं, अतएव इन्हें हर्यत प्रागाथ कहा जाता है । आचार्य सायण ने [illegible] में लिखा है—**[illegible] हर्यतः प्रागाथो [illegible] । [illegible] हर्यत ऋषिः** ([illegible]) ।

१८२.हिरण्यस्तूप आंगिरस (६१२) – अंगिरस् [illegible] होने के कारण इन्हें आंगिरस कहा जाता है— **.... [illegible] पुत्रो हिरण्यस्तूपो......** ([illegible]) । ऋग्वेद [illegible] सूक्त के [illegible] के रूप में हिरण्यस्तूप ऋषि का वर्णन प्राप्त होता है— **आंगिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि ... हिरण्यस्तूप [illegible] ...** ([illegible]) ।

परिशिष्ट —२

सामवेदीय देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. अंगिरा (१२) – [illegible]

२. अग्नि (१-४६, ५३, ५४, ५५ आदि) – [illegible]

३. अग्नि—पवमान (६२७) – [illegible]

४. अदिति (१०२) – [illegible]
"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः" ।

५. अन्न (५९४) – [illegible]

६. अपांनपात् (६०७) – [illegible]

७. अश्विनीकुमार (१७४३-४५, १७५६ आदि) – [illegible]

८. अम्बा देवी (१८६१) – [illegible]

९. आत्मा (६१३, ६२०) – [illegible]

१०. आदित्यगण (३९५, ३९७) – [illegible] अंशुमान् तथा विष्णु ।

११.इन्द्र (५१, ११५-१३८ आदि) – इन्द्र वैदिक युग के सर्वाधिक ओजस्वी देवता हैं। ऋग्वेद के प्रायः २५० सूक्तों में इन्द्र का वर्णन है। इन्द्र को अग्नि का जुड़वा भाई कहा गया है। वे अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं। वृत्रहन्ता, वर्षा, विजय-प्राप्ति, दैहिक बल-सम्पत्ति, नदियों को प्रवाहित करने वाला एवं वृष्टिकर्त्ता आदि इनके विशेषण हैं।

१२.इन्द्राग्नी (६६९-६७१) – इन्द्र और अग्नि युग्म के दोनों देवताओं में घना सम्बन्ध है। इन्द्र एवं अग्नि के बीच में अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक सूक्तों में स्तवन किया गया है। [illegible] दोनों [illegible] के लिए [illegible] को पुरोहित भी कहा गया है।

१३.[illegible] (१८९७) – [illegible] और [illegible] की [illegible] के लिए विशेष [illegible] है। [illegible] है। [illegible] का [illegible] है। [illegible] पूर्ण [illegible] है। [illegible] को भी [illegible] किया गया है। [illegible] का [illegible] किया गया है। ऋग्वेद [illegible] में [illegible] को [illegible] किया गया है— [illegible]।

१४.उषा (२०३, ३९७, ४२२, ४४६, ४५१) – वैदिक सूक्तों के अन्तर्गत उषा का [illegible] रूप के रूप में [illegible] है। उषः कालीन आलोक ने प्राकृतिक सुषमा के आधार पर उषा का उल्लेख सौन्दर्य की देवी के रूप में हुआ है। उषा का रूप, उसका [illegible] आकर्षक ही अवश्य दिया गया है। वेदों में २१ सूक्तों में उसका उल्लेख हुआ है।

१५.गौ (६,९६) – वैदिक काल में गौ को प्रधान सम्पत्ति के रूप में माना गया। उस समय रोहित, शुक्ला, पृश्नि, कृष्ण आदि रंगों के नाम से इन्हें पुकारा जाता था। गौ को माता की तरह पूजित तथा [illegible] के रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया है। ऋग्वेद में गौ को लगभग ९८ बार अघ्न्या (न मारने योग्य) कहा गया है।

१६.ताक्ष्र्य (८८२) – ताक्ष्र्य की निष्पत्ति 'तृक्ष' से हुई प्रतीत होती है। निरुक्त (१०.२८) ने ताक्ष्र्य को अश्व का पर्यायवाची माना है। कुछ वैदिक अंशों में इन्हें पक्षी के रूप में माना गया है। [illegible] के लिए [illegible] कहा गया है कि ताक्ष्र्य ने अपनी शक्ति से पञ्चजनों को अपने प्रकाश से व्याप्त कर रखा है, जैसे सूर्य अपने प्रकाश से [illegible] को व्याप्त किये रहता है।

१७.त्वष्टा (९९९) – त्वष्टा [illegible] वैदिक देवों की श्रेणी में माने गये हैं। ऋग्वेद में लगभग ६५ बार इनका नामोल्लेख हुआ है। इनके [illegible] और [illegible] को छोड़कर किसी अन्य [illegible] का वर्णन नहीं मिलता है। [illegible] है। [illegible] का प्रदर्शन करते हुए ये विविध वस्तुओं को रचते हैं।

१८.त्रैलोक्यात्मा (६४६-६५०) – भारतीय मान्यता में [illegible] की विशेष [illegible] है। [illegible] है— '[illegible] प्रत्यक्षाणि'। ([illegible]) [illegible] तीनों लोकों के [illegible] देवता को 'त्रैलोक्यात्मा' कहा जाता है, जो [illegible] प्रकाशित करते हैं— '[illegible] ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्' ([illegible])।

१९.दधिक्रा (३५८) – ऋग्वेद में दैवी अश्व के रूप में दधिक्रा का [illegible] उल्लेख मिलता है। इनको [illegible] कहा गया है। [illegible] में भी [illegible] है। कहीं-कहीं '[illegible]' शब्द से विद्युत् की ओर भी संकेत है।

२०. द्यावा-पृथिवी (३६८, ५२२) – ये दोनों पिता-माता के रूप में प्राणियों की रक्षा करते हैं। [illegible] निर्जीव (जड़) से उन्हें बचाते हैं। [illegible] के रूप में माना गया। [illegible]

का उल्लेख हुआ है । स्वर्ग और पृथ्वी को रोदसी कहा गया है । इन्हें कहीं-कहीं पिता, माता, अदिति कहकर भी याद किया गया है ।

२१. पर्जन्य (१९९) – पर्जन्य एक वैदिक देवता का नाम है । ऋग्वेदीय देवताओं को तीन भागों में बाँटा गया है (१) पार्थिव (२) आन्तरिक्ष (३) द्युस्थानीय । आन्तरिक्ष देवों में पर्जन्य की गणना होती है । पर्जन्य को [illegible] के रूप में [illegible] है । [illegible] वर्षा करने वाले बादलों के रूप में पर्जन्य को एक गरजने वाला वृषभ कहा है, जो औषधियों में गर्भ का निक्षेप करता है । ऋ० में कहा गया है कि पृथ्वी माता और पर्जन्य पिता हैं । वे वनस्पतियों के उत्पादक पोषक हैं, उन्हें अंकुरित और पल्लवित करते हैं । पर्जन्य देव की देख-रेख में पृथ्वी पर [illegible] फल लगते हैं ।

२२. पवमान सोम (१०१, ४२७-४३२, ४३४, ४६३ आदि) – ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग सोम के लिए हुआ है, जो पवित्र छलनी के माध्यम से छानकर शुद्ध होता है । अन्य संहिताओं के [illegible] में इसका अर्थ वायु लिया जाता है । इसका शाब्दिक अर्थ 'पवमान' (शुद्ध होने वाला या करने वाला) है । [illegible] पर [illegible] करने वाले के [illegible] को पवमान कहा गया है । [illegible] के अनुसार इसके तीन भेद हैं— (१) बहिष्पवमान (२) माध्यन्दिन पवमान (३) आर्भव पवमान । कुछ स्थलों पर अग्नि के लिए भी पवमान शब्द आया है । कुछ स्थलों पर पवमान शब्द वायु के लिए आया है ।

२३. पुरुष (६१७-६२१) – पुरि शेते इति पुरुषः — [पुर अर्थात् शरीर में शयन करना] इस निर्वचन के अनुसार शरीरधारी व्यक्ति पुरुष है, किन्तु ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (१०.९०) में आदि पुरुष को विराट् पुरुष अथवा विश्व पुरुष के रूप में व्याख्यायित किया गया है । सृष्टि के मूल में स्थित मूल तत्त्व के अन्तर्यामी और [illegible] स्वरूप का [illegible] 'पुरुष' है । इस सिद्धान्त को [illegible] करते हैं । सांख्य दर्शन के अनुसार दो तत्त्व मूल हैं— (१) प्रकृति (२) पुरुष । प्रकृति और पुरुष के सम्पर्क से सृष्टि का विकास होता है । पुरुष का अपने स्वरूप को भूल जाना ही बन्धन है और ज्ञान द्वारा उसके कैवल्य की प्राप्ति होना 'मुक्ति' । अतः पुरुष के लिए प्रकृति संकुचित होकर अपनी लीला का संवरण कर लेती है और पुरुष मुक्त हो जाता है ।

२४. पूषा (७८) – ऋग्वेद के एक प्रमुख देवता पूषन् हैं । वे [illegible] से सम्बद्ध हैं । वे सभी लोगों को देखने वाले हैं । उनके रथ को अज खींचते हैं । उनका सूर्य से निकट सम्बन्ध है । ऋग्वेद में पूषन् के नाम का उल्लेख लगभग १२० बार हुआ है । एक सूक्त में इन्द्र के साथ और एक अन्य सूक्त में सोम के साथ उनकी देवता-युग्म के रूप में भी स्तुति हुई है । [illegible] के अनुसार उनका स्थान विष्णु से कुछ नीचा ही रहता है ।

२५. प्रजापति (६०२) – वैदिक ग्रंथों में वर्णित एक प्रभावशाली देवता का नाम प्रजापति है, जो सम्पूर्ण लोकपालियों के स्वामी हैं । [illegible] में एक ही शक्ति के तीन रूप [ब्रह्मा, विष्णु, महेश] हैं । कुछ स्थलों पर प्रजापति शब्द [illegible] सविता, अग्नि आदि देवों के लिए भी आया है । [illegible] के अर्थ में भी प्रजापति का प्रयोग [illegible] हुआ है । ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार, [illegible] सृष्टि के साथ उत्पन्न बतलाये गये हैं और वहीं पर इन्हें ब्रह्मा का [illegible] देव बतलाया गया है ।

२६. ब्रह्मणस्पति (५६, १३५३) – बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति का ऐक्य माना गया है । [illegible] का [illegible] कथन है— 'बृहस्पते ब्रह्मणस्पते' ([illegible] ५.१२.४.२) बृहस्पति ही ब्रह्मणस्पति हैं । [illegible] ब्रह्म को ब्रह्मणस्पति माना गया है— ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः ([illegible] ८.५.१.५) ब्रह्मणस्पति को तीक्ष्ण शृंग, तीक्ष्ण शस्त्र तथा अग्नि की ज्योति से संयुक्त बताया गया है— [illegible] ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृंगो वृषायित (ऋ० १०.१५५.२) ।

२७.मरुद्गण (२४६, ३५६, ४०१, ४०४, ४३३, ४५२ आदि) – ऋग्वेद में वायु एवं आँधी के देवता के रूप में मरुतों का अनेकशः वर्णन आया है। मरुतों की माता पृश्नि हैं। ऋग्वेद में मरुद्गण की स्तुति सम्बन्धी कुल ३३ ऋचाएँ हैं। मरुद्गण [illegible] के देवता हैं। इनके स्वरूप का विद्युत्, विद्युद्रथ, आँधी तथा वर्षा के रूप में वर्णन किया गया है। [illegible] मरुद्गण ही इन्द्र के सहायक थे। इन्द्र ने अपने स्थान से बाहर जाकर [illegible] में अपने मित्र एवं सहायक [illegible], क्योंकि वह के पुत्र (रुद्र) होने के कारण मरुत् [illegible] कहलाते हैं। मरुत् देवता विद्युत् के अट्टहास से उत्पन्न होते हैं। [illegible] के पुत्र हैं, [illegible] हैं, भाई हैं। बिजली-आँधी तूफान से पहाड़ों को भी हिला देते हैं। बादलों के साथ [illegible] की पुष्टि करते हैं।

२८.यूप (५७४) – ऋग्वेद पशुओं के बाँधने के खूँटे को 'यूप' कहा जाता है। यह शब्द [illegible] हुआ है— 'आदित्यो यूपो भवति' [illegible]। वैदिक [illegible] में [illegible] का [illegible] उल्लेख है— यज्ञ-यूप, [illegible] ऋग्वेद के तीसरे मंडल के आठवें सूक्त में [illegible] या यूप के रूप में वर्णित [illegible] है। यूप का [illegible] [illegible] के [illegible] एवं [illegible] पुरोहितों द्वारा निर्मित [illegible] [illegible] की गई है कि वे [illegible] को [illegible] [illegible] तक पहुँचा दें। [illegible] यूपों के विषय में कहा गया है कि वे देवता हैं और [illegible] हंसों की श्रेणियों (पंक्तियों) की तरह [illegible] हैं— [illegible] (ऋ० ३.८.९)। यह [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] का सुन्दर [illegible] है।

२९.रात्रि (६०८) – ऋग्वेद में एक स्वतन्त्र सूक्त के लिये 'रात्रि' [illegible] आये हैं (ऋग्वेद १.३५.१, १०.१२७) [illegible] की रात्रि एवं उषा को [illegible] का रूप कहा गया है। ये एक युगल देवता की रचना करते हैं। [illegible] (रात्रि) को [illegible] कहा गया है। रात्रि के लिए [illegible] एक [illegible] है। [illegible] के अनुसार [illegible] को [illegible] "[illegible]" कहा गया है। [illegible] रात्रि की [illegible] के [illegible] में [illegible] होती है।

३०.लिंगोक्त (८११) – लिंगोक्त पद द्वारा दो प्रकार की [illegible] का निर्देश हुआ है— (I) [illegible] [illegible] में [illegible] सूक्तों में [illegible] विशिष्ट [illegible] के आधार पर उनके विशेष देवता को ही मुख्य देवता माना जाता है। वे देवता [illegible] भी हो सकते हैं। (II) वेदों में अनेक सूक्त ऐसे भी हैं जिनमें एक देवता को ही विविध रूपों में [illegible] किया गया है तथा उन्हें के द्वारा विविध कार्यों का [illegible] भी किया जाता है। ऐसे देवता को लिंगोक्त देवता की श्रेणी में रखा गया है।

३१.वरुण (५८९) – वरुण एक प्रमुख वैदिक देवता है। वे सम्पूर्ण भुवनों के राजा हैं (ऋ० ५.८५.३)। वे देवों और मनुष्यों [illegible] के राजा हैं [illegible] की सबसे बड़ी विशेषता है— [illegible] [illegible] [illegible] के अर्थ में [illegible] है [illegible]। वे प्रमुख [illegible] हैं। उनका [illegible] मित्र के साथ [illegible] आया है। मित्र को दिन का और वरुण को रात्रि का देवता कहा गया है। [illegible] [illegible] तथा [illegible] देने के लिये [illegible] [illegible] कर देते हैं। [illegible] की इच्छा ही सर्वोपरि है। वेदों में वरुण को प्रसन्न करने के लिए अनेक स्तुतियाँ हैं।

३२.वर्म सोमयजन (१८००, ०२) – [illegible] को कहते हैं। युद्ध के [illegible] [illegible] की रक्षा करता है। [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] से यह [illegible] करते हैं। इसलिए उस '[illegible]' को भी देवता मान लिया जाता है। [illegible] इसी [illegible] के देवता हैं। ऋग्वेद [illegible] १.८०० में [illegible] है— [illegible] [illegible]। [illegible] को वर्म (कवच) से [illegible] करते हैं।

९३. वाजिन् (४३५) – [illegible]

९४. वायु (६००) – [illegible]

९५. विष्णु (१११, १६२५-२८) – [illegible]

९६. विश्वेदेवा (११, ३६८) – [illegible]

९७. वेन (३३७, १८४६-४८) – [illegible]

९८. संग्रामाशिष (१८६६) – [illegible]

सकती है। [illegible] गया है— [illegible] (ऋ० [illegible])।

३९. [illegible] (१५०९) - [illegible] है। [illegible] हैं।

४०. सरस्वती (१३६१) - ऋग्वेद में सरस्वती 'देवी' के रूप में वर्णित की गयी है। [illegible] गया है। [illegible] है। [illegible] हैं।

४१. सरस्वान् (१७६०) - [illegible] है। [illegible] है— [illegible] (ऋ० [illegible])।

४२. सविता (४६४, १७६२) - सविता [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है।

४३. सूर्य (४५८, ६१८-६३०) - ऋग्वेद [illegible] में सूर्य देवताओं में प्रमुख देवता है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है— सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (ऋ० १.११५.१)।

४४. सोम (४२२) - [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] गया है।

४५. हवींषि (१३८०-८२, १६०२-३) - [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] (शत० ब्रा० [illegible])।

परिशिष्ट — ३

सामवेद में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

छन्द-नाम	पाद-विवरण	वर्ण-योग	उदाहरण
१. अतिजगती	१२ + १२ + १२ + ८ + ८	५२	३७०
२. अतिशक्वरी	क. १६ + १६ + १२ + ८ + ८	६०	१६८०, ९
	ख. ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + १२ + ८	६०	४६४
३. अत्यष्टि	१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १२ + ८	६८	४६२
४. अनुष्टुप्	८ + ८ + ८ + ८	३२	८८
५. अष्टि	१६ + १६ + १६ + ८ + ८	६४	४६४
६. उपरिष्टाज्ज्योति[1] (त्रिष्टुप्)	१२ + ८ + ८ + ८ + ८	४४	१८२२
७. उपरिष्टाद् बृहती	८ + ८ + ८ + १२	३६	१२२
८. उष्णिक्[2]	८ + ८ + १२	२८	९४
९. ऊर्ध्वा बृहती[3]	१२ + १२ + १२	३६	१४५४
१०. एकपदा गायत्री[4]	८	८	४६६
११. ककुप् (उष्णिक्)	८ + १२ + ८	२८	४६९
१२. गायत्री	८ + ८ + ८	२४	१-२४

1. यह छन्द पिङ्गलाचार्य के अनुसार ४४ [illegible] ८ वर्णों के [illegible] 'अनुष्टुप्' में [illegible] ८ + ८ + ८ + ८ + १२ = ४४ वर्णों वाला भी होता है।
2. उष्णिक् छन्द का एक भेद ककुप् उष्णिक् का भी यही लक्षण है।
3. यह छन्द "ऊर्ध्वा बृहती" तथा "[illegible] बृहती" के नाम से भी जाना जाता है।
4. गायत्री आदि छन्दों के एक 'पाद' में जितने वर्ण होते हैं, उतने ही वर्णों का यदि कोई छन्द होता है, तो वह एकपदा या एकपदा छन्द कहा जाता है। यथा — ८ वर्ण एकपदा गायत्री, १० वर्ण एकपदा विराट्, ११ वर्ण एकपदा त्रिष्टुप् तथा १२ वर्ण एकपदा जगती छन्द।

१६. जगती	१२ + १२ + १२ + १२	४८	[illegible]
१७. विराड् अनुष्टुप्[५]	११ + ११ + ११	३३	[illegible]
१८. त्रिष्टुप्	११ + ११ + ११ + ११	४४	[illegible]
१९. द्विपदा विराट्[६]	१० + १०	२०	[illegible]
२०. पंक्ति[७]	१२ + १२ + ८ + ८	४०	[illegible]
२१. पदपंक्ति[८]	५ + ५ + ५ + ५ + ५	२५	[illegible]
२२. पादनिचृत्[९]	७ + ७ + ७	२१	[illegible]
२३. विराड्रूपा ककुबनुष्टुप्[१०]	१२ + ८ + १२	३२	[illegible]
२४. पुर उष्णिक्	१२ + ८ + ८	२८	[illegible]
२५. प्रगाथ[११] (विषमा बृहती, समा सतो बृहती)	[illegible]	[illegible]	[illegible]

---

५. [illegible]

६. [illegible]

७. [illegible]

८. [illegible]

९. [illegible]

१०. [illegible]

११. [illegible]

२५. झूलणा	१२ + ८ + ८ + ८	३६	४५
२६. मदनहर[११]	८ + ८ + ८ + ८ + ६ + ६	४८	[illegible]
२७. [illegible] सवाई[१३]	७ + १० + ७	२४	[illegible]
२८. कलिका सवाई[१४]	६ + ७ + ८	२१	[illegible]
२९. विजय (ठिट्ठ)	१२ + १२ + १२ + ८	४४	[illegible]
३०. सिंहविलोकन	८ + ७ + ११	२६	[illegible]
३१. विद्युत [illegible]	८ + १२ + १२ + ८	४०	[illegible]
३२. जकड़ी[१५] (जोगड़ी)	८ + ६ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८	५६	[illegible]
३३. [illegible] झूलणा[१६]	८ + १२ + ८ + ८	३६	[illegible]

११. [illegible]

१२. [illegible]

१३. [illegible]

१४. [illegible]

१५. [illegible]

१६. [illegible]

१७. [illegible]

ॐ

वेद है ज्ञान, साम है गान। जब वेद के पद्यबद्ध मन्त्रों को गान विद्या से अनुप्राणित किया गया, तो 'सामवेद' बन गया। गान का सीधा सम्बन्ध भाव-संवेदना से है। अनुभूति की अभिव्यक्ति में शब्दों की सामर्थ्य छोटी पड़ जाती है। वेद अनुभूतिजन्य ज्ञान है, उसे व्यक्त करने में शब्द शक्ति अपर्याप्त है। ऋषि ने अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया, किन्तु जब देखा कि पूरे प्रयास के बाद भी अभिव्यक्ति अनुभूति के स्तर की नहीं बन सकी, तो उसने ईमानदारी से कह दिया 'नेति-नेति'- 'यह बात पूरी नहीं हो सकी'।

* * *

परिशिष्ट-४

सामवेदमन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]